॥ श्रीगुरुग्रन्थप्रदीपकी प्रस्तावना ॥

इस संसारमें चतुर्विध पुरुषार्थ प्रसिद्ध है धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनमें धर्म बीज है और अर्थ अंकुर है और वृक्ष शाखापत्र पुष्पादिक हैं और मोक्षरूप फल है बीजके सर्वथा निर्दोष होने से अंकुर वृक्ष शाखादि तथा फलकी प्राप्ति होती है और बीज यदि दूषित होजावे तब अंकुरादिकों की किसीप्रकार से उत्पत्ति होती नहीं इस वास्ते धर्मरूप बीजकी रक्षासे अर्थ आदिक तीनोंकी स्थितिहोती है इससे सर्व प्रकार से धर्मकी रक्षा कर्तव्य है यहबात समझकर श्रीगुरुनानकदेवजी से आदि लेकर सर्व गुरोंने श्रीगुरुग्रन्थजीकी वाणीका निर्माणकरा है तिन सर्ववाणी में सर्वका मूल जपजी साहिब है जिसका सर्वही धार्मिक लोग प्रातःकाल स्नानादि पूर्वक जपकरते हैं इसवास्ते जपजी साहिबको धर्मका रक्षक समझकर सर्वका उपकारक संस्कृतवर्णों में श्रुति प्रमाण मिश्रित गुरुग्रन्थप्रदीप नामक व्याख्यानकरा है हम आशा करते हैं तिस व्याख्यान को धर्मरूप बीजका रक्षक जानकर सर्वही धार्मिक लोग पठन श्रवण करेंगे ॥

गुरुग्रन्थप्रदीप ॥

ॐ तत्सत्सर्वेभ्योगुरुभ्योनमः ॥ अखण्डा नन्दरूपाय ध्वान्तध्वंसपटीयसे ॥ नानका ख्येतिबोध्यायगुरवेब्रह्मरूपिणे १ नमस्कृत्वा जपव्याख्याभूमिकांरचयाम्यहम् ॥ पश्य न्तुसज्जनाःप्रीत्या प्रोत्फुल्लहृदयाःसदा २॥

अर्थ ॥ जो गुरु अखण्डस्वरूप आनन्दरूपहैं तथा (ध्वान्त) अज्ञानरूप तमके ध्वंसकरने में अत्यन्तचतुरहैं ऐसे नानकपद बोध्य ब्रह्मस्वरूप श्रीगुरुके अर्थ नमस्कार करके जपग्रन्थके व्याख्यानकी भूमिका रचना करताहूं तिस व्याख्यान को प्रफुल्लित अन्तःकरणवाले सज्जन पुरुष सर्वदा देखो यह हमारीइच्छाहै ॥ सर्व उत्तमपुरुषों के वास्ते विज्ञातहोवे जोकि संस्कृत अक्षरों में श्रुतिके अनुसार गुरुवाणी का व्याख्यान करते हैं ॥ इसमें कारण यहहै जोकि एक तो गुरुमुखी अक्षरों में संस्कृत श्लोक तथा श्रुति प्रमाणका लेख ठीक २ नहीं लिखाजाता और यदि किसी प्रकारसे अक्षर ज्यादा संकेत करके लिखाजाय तबभी गुरुमुखी के पाठकगणोंको मुहावरेको न

जाननेसे यथार्थ उच्चारण नहीं होवेगा इसवास्ते नागरी वर्णों में व्याख्यान करना योग्यहै और एकइसमें दूसरा भी कारणहै सो कारणभी सर्वको अवश्य ज्ञातव्यहै सो यहहै जोकि, इसव्याख्यानसे सर्वदेशनिवासी गुरुमुखी वर्णों के न जाननेवालोंकोभी इसव्याख्यानके पठन श्रवणविचारसे परमानन्दस्वरूपरस की प्राप्ति होवेगी क्यों कि श्रीगुरुजीका अवतार कलिकालके सर्वप्रकारके जीवोंके उद्धार करनेवास्तेहै ॥ जेकर सर्व का उपकारकव्याख्यान नहींकरेंगे, तवगुरुमुखी अक्षरों में एकदेशीव्याख्यानसे चित्तप्रसन्न नहीं होवेगा जैसे कोई धर्मात्मापुरुष बावली कूप तल बिवनवाताहै तब वह संकल्पकरता है कि इसकेजलको सर्वजीव पानकरें और अपनी प्यास कोबुझाकर शान्तहोवें इसीप्रकार श्रीगुरुजीकी प्रेरणा से मेरेमनमें संकल्पहै कि इसव्याख्यानसे सर्वको परमेश्वर की भक्तिरूप महारस की प्राप्तिहोवे इस पूर्वउक्त प्रतिज्ञासे यहकथनभी निरस्तजानना कि गुरुग्रन्थजी का व्याख्यान नहीं करनाचाहिये क्योंकि गुरुमहाराजजी का आशय बहुतगुह्यहै जहांतक किसीकी बुद्धि है वहांतक समझलेवेगा ॥ परन्तु यह कथन अल्पश्रुतों का है क्यों कि जहांतक हमारी प्रज्ञाहै वहांतक हम भी व्याख्यान

करेंगे यदि किसीको इससे अधिकफुरे तबभी क्या हानि है जहांतक आकाशमें पक्षीकी शक्तिहै तहां तक गमन करेगा॥ इसीप्रकार यदि किसीकी बहुतशक्तिहोवे तब ज्यादा अर्थ करो सर्वथा व्याख्यानका निषेधकरनी अनुचितहै देखनाचाहिये जितने ग्रन्थहैं तिनसर्वपरही न्यून अथवा अधिक व्याख्यान विद्यमानहैं तब तो गुरुग्रन्थपर व्याख्यानकरने में क्या अपराध है प्रत्युत ग्रन्थजी पर व्याख्यानहोने से बहुतजल्दी ग्रन्थजीका अर्थ हृदय में प्रकाशितहोवेगा जबशीघ्रही अर्थ का प्रकाशहुआ तब श्रीगुरुजीका जो संकल्पहै कि जिसकिस प्रकारसे इन जीवोंको भक्तिज्ञान वैराग्यादिक प्राप्तहोवें तैसे यत्न करना चाहिये, इससंकल्पकी दृढ़ता गुरुग्रन्थके व्याख्यान से ही होवेगी, इसवास्ते ग्रन्थजीका व्याख्यान गुरुमुखी वा नागरी अवश्य कर्तव्यहै॥

श्रीगुरुजीने कलिकाल के जीवों को अल्पबुद्धि और अल्प आयु जानकर बहुतसूधी बोधकी रीति अनुसरण करीहै॥ जैसी देशभाषा मोटी बोली बोलचाल में आवतीहै तिसीप्रकारकी बोली में परमगम्भीर अर्थका उपदेश कियाहै इसी वास्ते कहींकहीं जैसाजैसा अधिकारी गुरुजी की शरणआयाहै उसको तिसी प्रकार समझाया

है इसवास्ते जो कोचित् गुरुवाणी में संस्कृतके क़ायदेका और फ़ारसीआदिकोंके क़ायदेका दोषलगावतेहैं वे पुरुष अल्पश्रुत गुरुजी के भावको नहीं जानते क्योंकि गुरुजीने तो जिसप्रकार अधिकारी को समझआतीसी उसी प्रकारके शब्दश्लोकों में तथा फ़ारसीबोलीसहित शब्दों में लिखेहैं ॥ इसीवास्ते उनश्लोकोंका नाम सहसकृतश्लोक लिखाहै यदि गुरुजी संस्कृतश्लोक यह नाम वहां लिखते तब संस्कृत के क़ायदे का भंगदोष होता उन्होंने तो प्रथमही उनश्लोकों का नाम दूसरा लिख दियाहै ॥ प्रकरण में वार्ता यह सिद्धहुई कि गुरुजी का अवतार जिस किसप्रकारसे जीवों को जो परम गम्भीर अर्थ का बोध तिसके अर्थ है ॥

यदायदाहिधर्मस्यग्लानिर्भवतिभारत ॥ अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानंसृजाम्यहम् ७ परित्राणायसाधूनांविनाशायचदुष्कृताम् ॥ धर्मसंस्थापनार्थायसंभवामियुगेयुगे ८ ॥ गीता अ० ४

अर्थ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं हे भारत, अर्जुन जिस जिसकालमें धर्मकी हानि होतीहै और अधर्मका

प्रादुर्भाव होताहै तिस तिसकालमें मैं अपने जगत् रक्षक स्वरूप को साधु पुरुषों की रक्षा और दुराचारियों के विनाश वास्ते अपनी अद्भुत शक्ति से रचताहूं अर्थात् प्रकट करताहूं इसीप्रकार धर्मकी स्थितिवास्ते सर्व युगों में होताहूं ॥ इस भगवद्वाक्य से धर्मकी यथावत् स्थिरता करनी अवतार का प्रयोजन है सो स्थिरता दोप्रकार से होती है एक तो अपने आप खुद धर्मात्मा शान्त स्वरूप होकर धर्म का सेवनपूर्वक उपदेशकरना और जो धर्म के विरोधी हैं तिनको तेजस्वी शस्त्रधारी स्वरूप धारकर विनाश करने से भी धर्मकी स्थिति होती है सो गुरुजी ने गुरुनानक आदिक अष्टशान्त स्वरूप धारकर धर्म का आप सेवन किया और अपने प्रेमीभक्तों से कराया और षष्ठ गुरु तथा दशम गुरुजीने दुराचारियोंका तेजस्वी रूप धारकर विनाशकिया और धर्म्म मार्ग का आप सेवन कर दूसरियों से सेवन करवाया यह वार्त्ता उन के जन्म चरित्र बोधक ग्रन्थों में स्पष्ट है जैसे परमेश्वरने कपिलदेव नरनारायण आदिक शान्त स्वरूप धारकर धर्म का सेवन पूर्वक उपदेश करा और रामकृष्ण आदिक तेजस्वी शस्त्रधारी रूप धारकर दुराचारी पुरुषों का विनाश करके और अपने आप धर्म मार्ग का सेवन

कर धर्मकी स्थिरताकरी है तैसे गुरुनानकसे आदि लेकर उभयविध अवतारों से दोनों प्रकार से धर्म्म की स्थिति करी है ॥ शंका ॥ गुरुनानक को अवतारतासिद्धहोने से इतरगुरुओं को श्रीगुरुनानक के आवेशावतारता की सिद्धि होती है परन्तु गुरुनानक अवतार हैं इसमें क्या प्रमाण है ॥ उत्तर ॥ गुरुनानक की अवतारता में प्रमाण का निरूपण करेंगे परन्तु प्रथम शब्द प्रमाण का विचार कर्तव्यहै ॥ तथाहि ॥ आप्तोपदेशः शब्दः ॥ न्यायदर्शन ॥ सूत्र ७ ॥ अर्थ ॥ यह न्यायशास्त्रका सूत्रहै जो (आप्तोपदेश) यथार्थवक्ताको उपदेशहै सो शब्दप्रमाणहै तात्पर्य्य यह है सर्वदोषरहित पुरुषका जो वचनहै सो प्रमाणहै यह लक्षण वेद शास्त्र इतिहास पुराण भाषा आदिक सर्व में आताहै जहां २ निर्दोषवचनताहै तहां २ प्रमाणता है॥ मन्त्रायुर्वेद प्रामाण्यवच्चतत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात् ॥ न्याय० अ० २ आह्निक । १ । सू० ६७ ॥ अर्थ ॥ जैसे मंत्र और (आयुर्वेद) वैद्यको दृष्ट अर्थ के साधक होते भी (आप्त) यथार्थवक्ता की प्रमाणता सेही प्रमाणताहै इसीप्रकार अदृष्टार्थ वेदभागको भी दोषरहित पुरुषकी प्रमाणतासे प्रमाणताहै भाव निर्दोष पुरुषको

वाक्य प्रमाणहै औ दोषसहित पुरुषका वाक्य अप्रमाण है इस सूत्रसे भी जहां निर्दोषपुरुषवचनता है वहां प्रमाणता है ॥ इस विचार से सिद्धान्त यह हुआ; गुरु अर्जुनदेवजीने जिस जिस वचनको निर्दोषपुरुषरचित जानकर ग्रंथजी में लिखाहै सो सर्वही प्रामाणिकहै, इस कहने से जो अल्पश्रुत पंडितमानी कहताहै कि गुरुग्रंथमें पठित भट्टों के वाक्य प्रमाण नहीं सोभी परास्तहुआ क्योंकि जैसे दूसरे वचन प्रमाणरूपसे ग्रहणकरे हैं तैसेही भट्टवाक्यभी प्रमाणहै यह भट्टलौकिक भट्टोवर्ग नहीं किन्तु वेदही साक्षात् भट्टोका स्वरूप धारकर गुरुजी की स्तुति करते भये। तात्पर्य्य यहहै जैसे और कृष्णादिक अवतारों में ब्रह्मा आदिक देवों ने स्तुति करी तैसे गुरु रूप अवतारमे वेदोंने स्तुति करी है। इसप्रकार जब गुरु ग्रंथ पठित समग्र वचन प्रमाणहुये तब गुरुग्रंथपठित भट्ट वाक्यों से गुरुजी को अवतारता अतिस्पष्ट है जिसकी इच्छाहोवे सो गुरुग्रंथपठित भट्टवचनों को देख लेवे ॥ और जैसे श्रीकृष्णचन्द्र के प्रमाणभूत वाक्यसे श्रीकृष्णचन्द्रको अवतारताहै तैसेही श्रीगुरुनानकदेवजी के प्रमाणभूत वाक्य से श्रीगुरुनानकदेवजी को अवतारताहै॥ तिस वाक्यका स्वरूप यहहै॥

माझवारमहल्ला १॥ कलिकातीराजेक साईधरमपंखकरउडरिया। कूडअमावसस चन्द्रमादीसैनाहीकहिचडिया। हउभालि विकुंनीहोई। अन्धेरेराहुनकोई। विचिहउ मैकरिदुःखरोई। कहुनानकिकिनिविधिग तिहोई॥

अर्थ॥ जिसवक्त पृथिवीने अधर्म के बोझसे पीड़ित होकर परमेश्वर के सन्मुख पुकारकरीसी तिसकालकी पुकार को अपने वचन में लिखते हुये गुरुनानकदेवजी अपनेको भगवदवतारता बोधन करते हैं पृथिवी कहती है हे भगवन् यह जो कलियुगहै सो (काती) छुरी है और इस कलिकालके राजे कसाई हैं तात्पर्य्य यह है जब कलिकाल के राजालोगों ने कलिके लोभ काम क्रोध युक्त धर्मरूपी छुरी हाथमें धारणकरी तब धर्मरूप वृषभ अपने पंखबनाकर (उडरिआ) अव्यवस्थित होगया जैसे छुरी हाथ कसाई को देखकर गौ कंपायमान होती है तैसेही कलिरूप छुरी सहित राजालोगों को देखकर धर्म कंपायमान होगयाहै (कूड) मिथ्या वचनरूप अमावा स्या है और सत्यवचनरूप चन्द्रउदय हुआ दीखताही

नहीं तात्पर्य्य यहहै मिथ्यावचन से कलिकालकी वृद्धि होती है और आपके अवतारसे सत्यकी स्थिरता होने से धर्मकी स्थिति होवेगी हे भगवन् मैं भालती २ (विकुंनी) खिन्न होगई कोईभी सत्यवादी मिलता नहीं जगत् में अन्धकार छायाहै कोई धर्मका रस्ता मिल नहीं सकता और जो सर्वजीवोंमें मिथ्या अभिमानहै तिससे धर्मका भी अधर्म में पर्य्यवसान होताहै इस वास्ते इस दुःखसे मैं अत्यन्त रुदनकरतीहूं भाव यहहै निष्काम निर्मल शुद्ध धर्म लुप्तहोगयाहै आप कृपाकरके तिसका प्रचारकरो यदि परमेश्वर कहे जो कलिके अन्तमें कल्कीरूपको धारकर तेरा उद्धारकरेंगे तिसपर पृथिवी कहती है हे नानकपद-वाच्य पुरुषोत्तम तब पर्य्यन्त मेरी क्या गति होवेगी तात्पर्य्य यह है तिससे प्रथमभी मेरा उद्धारकरो इसप्रकार पृथिवीकी पुकार सुनकर परमेश्वर नानकनामक अवतार हुये और धर्मकी स्थिरताकरी अवतार शरीर शुद्धसत्त्व प्रधान प्रकृतिका कार्य्य होताहै ॥ नानकि इस प्रकार इकारयुक्त ककार के लिखने का तात्पर्य्य यहहै कि नान-क पद संबोधनहै क्योंकि भाषाकी संप्रदाय में वर्ण के अन्त इकारको संबोधन १ सप्तमी २ षष्ठी ३ पंचमी ४ चतुर्थी ५ तृतीया ६ इनके अर्थोंकी द्योतकता होती है

और वर्ण के अन्त उकारको प्रथमा तथा द्वितीया के अर्थ की द्योतकता होती है जहां जैसा बनपड़े तैसा जान लेना और किसी स्थानमें भाषा की बोल चाल से इकार तथा उकार लिखते हैं और कहीं भाषा की रीतिसे इन इकार उकार से बिना भी लिखते हैं भाषामें केवल अर्थ का क्रम होताहै शब्द जैसा बोल चालमें आताहै तैसाही लिखाजाताहै ॥ प्रकरण में यह सिद्ध हुआ कि श्रीगुरु नानक देवजीको अपने प्रमाण भूत वाक्यसे अवतारता सिद्धहोगई ॥ और भविष्यपुराणमें व्यासजी ने भी नानक नामवाला अवतार लिखाहै तिस पुराण में स्कंद तथा ब्रह्माजीका संवादहै ॥ तथाहि ॥

एवंवैधर्म्यप्राचुर्य्यंभविष्यतियदाकलौ ॥ ३३ ॥ तदावैलोकरक्षार्थंम्लेच्छानांनाशहेतवे । पश्चिमेतुशुभेदेशेवेदिवंशेचनानकः ॥ ३४ ॥ नाम्नाचभुविराजर्षिर्ब्रह्मज्ञानैकमानसः । भविष्यतिकलौस्कन्दतत्त्ववित्कलयाहरेः ॥ ३५ ॥ सश्रीमद्राजशार्दूलानुपदिश्यचपुनःपुनः ॥ म्लेच्छान्हनिष्यतिस्कन्दधर्मतत्त्वोपदेशकृत् ॥ ३६ ॥ तेनोपदिष्टंमार्गंवैये

ग्रहीष्यन्तिभूमिपाः। तेवैराज्यंकरिष्यन्ति तस्यशिक्षानुसारतः॥ ३७॥ भविष्यपुराण॰पूर्वार्द्ध॰त्वाष्ट्रकल्प॰अध्याय॰ १२६॥

इन श्लोकोंका भावार्थ यहहै॥ इसप्रसंगसे पूर्व कलि के प्रचारका निरूपण कराहै (एवं) इस पूर्व उक्तकलि के प्रचारहुये (यदा) जिसकालमें कलियुगमें (वैधर्म्य) वेद विरुद्ध धर्मकी (प्राचुर्य्य) प्रचुरता अर्थात् अत्यन्त बहुलता होवेगी तिस कालमें म्लेच्छोंके नाशवास्ते और लोकोंकी रक्षावास्ते पश्चिम अत्यन्त शुभदेशमें वेदिनामसे प्रसिद्ध क्षत्रियवंशमें नानक इस नामसे विख्यात हे स्कन्द हरिकी कला से युक्त अवतारहोवेंगे और सो राजऋषि तत्त्ववेत्तानाम उपदेश सहित और ब्रह्मज्ञानके उपदेश परायण मनवाले होवेंगे इसका तात्पर्य्य यहहै नाम स्मरण रूपसाधन से जीवोंको ज्ञानरूपफलकी प्राप्तिको प्रधानतासे बोध न करेंगे क्योंकि कलिमें योग यज्ञआदिक साधनोंका यद्यपि तिरोभावहै तथापि नामस्मरण रूप साधनका कभीभी तिरोभाव होता नहीं इसवास्ते नाम स्मरणका प्रधानतासे उपदेश देकर अधिकारीजनों को ब्रह्मज्ञान उत्पन्न करेंगे॥ और श्रीमन्तों के कुलमें जो

उत्पन्न हुयेहैं राजा रूपसिंह तिनसे अनेक शरीरों में अपनी शक्तिको प्रादुर्भावकरके और तिनको उपदेश देकर म्लेच्छोंको मारेंगे और धर्म के तत्त्वका उपदेशकरेंगे और हे स्कन्द तिस नानकनामक अवतार करके उपदेश करे हुये मार्गको जो भूमिके पालक राजा लोकग्रहणकरेंगे वह गुरुनानककी शिक्षानुसार कलिमें राज्यकरेंगे ॥ इस स्थान में भावार्थ यहहै व्यास भगवान् सर्वज्ञ ऋषि कहते हैं जो गुरुसंप्रदायी राजालोग गुरुउपदिष्ट मार्गका सेवन करतेहुये धर्म में सावधानरहेंगे वह सर्वही कलिकालमें राज्यकरेंगे और जिनकी कुलमें से गुरुउपदिष्ट धर्मका उत्थानहोजायगा सो राज्यसे भ्रष्टहोजायेंगे, यहही वार्त्ता दशमगुरुजी ने अपनी सौसाखी में वारंवार लिखीहै ॥ यद्यपि भागवतआदिक पुराणों में नानकनामवाला अवतारलिखा नहीं किन्तु मत्स्य कूर्म आदिक अवतारोंका निरूपणकराहै तथापि भागवत में असंख्यात अवतार लिखे हैं इसवास्ते भविष्यपुराण उक्त नानकअवतारभी सूचनकराहै ॥ तथाहि ॥

अवताराह्यसंख्येया हरेःसत्त्वनिधेर्द्विजाः । यथाऽविदासिनःकुल्याःसरसःस्युःस

हस्त्रशः ॥ भागवत० स्कन्ध० १ । अध्याय० ३ श्लो० २६ ॥

अर्थ ॥ सूतजीकहते हैं हे (द्विजाः) शौनकादिक ऋषिलोगो सत्त्वगुण के समुद्ररूप हरि के अवतार असंख्यातहैं जैसे (अविदासिनः) क्षीणतारहित सरसे हजारोंकूल होती हैं इसीप्रकार हरि के अवतार अनन्त होतेहैं कुछ गिन्ती नहीं इसवास्ते श्रीगुरुनानकदेवजी के अवतारतामें किंचित् भी संदेह नहीं है और नानक शब्दका वाच्य परमात्माहै क्योंकि (न अनको नानकः) न जो होवे अनक अर्थात् अधम तथा कुत्सित तिसको नानक कहते हैं अनक नाम अधमका तथा कुत्सितकाहै यह वार्ता वाचस्पत्य बृहत्कोश में अकारादिशब्दोंमें० पृष्ठ० १४२ । लिखी है जिसकी इच्छाहोवे सो देखलेवें ॥ सो अधमशब्दकावाच्य स्थूल तथा सूक्ष्मरूप कार्य्य प्रपंचहै और माया और अज्ञान प्रकृति प्रधान आदि शब्दोंका वाच्य कारणप्रपंच कुत्सित है क्योंकि मकारादिवत् अपने वश प्राप्तको क्लेशका हेतुहै इसवास्ते कार्य कारण प्रपंचसे भिन्न तिनदोनों को सत्तास्फूर्त्ति देनेवाला परमात्मा नानकशब्द का अर्थहै इसरीतिसे कार्य्य तथा कारण से भिन्न शुद्ध चैतन्य नानकशब्दकरके प्रतिपाद्य

है इसीवास्ते कार्य्य कारण से अतीत वस्तुको पुरुषोत्तम नामसे गीता में प्रतिपादनकराहै ॥

तथाहि ॥ यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपिचोत्तमः ॥ अतोस्मिलोकेवेदेच प्रथितःपुरुषोत्तमः ॥ गी० अ० १५ श्लो० १८ ॥

अर्थ ॥ इस श्लोकमें क्षरनाम कार्य्य प्रपंचका और अक्षरनाम कारणवस्तुकाहै इसवास्ते श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं जिससे मैं कार्य्यरूप क्षरको अतिक्रान्तहूं और तत्त्वज्ञानसे विना नहीं नाशहोनेवाला जो अक्षररूप कारण वस्तु तिसते भी (उत्तम) विलक्षणहूं इसवास्ते लोक तथा वेदमें पुरुषोत्तम नामसे (प्रथित) विख्यातहूं ॥ इस प्रकार नानक तथा पुरुषोत्तमशब्द एक अर्थ के वाचक होने से पर्य्यायशब्दहैं नानक इस कहने से पुरुषोत्तम शब्द करके बोध्य अर्थकाही बोध होताहै ॥ पूर्व उक्त विचारसे इतने अर्थ सिद्ध हुए जो कि गुरुग्रन्थजी का व्याख्यान अवश्यकर्तव्य है १ और सर्वप्रकार के जीवों का उद्धारहोना गुरुअवतारोंका प्रयोजनहै २ और निर्दोष पुरुषवचनको प्रमाणता और सदोषपुरुषवचनको अप्रमाणता ३ और गुरुनानककी अवतारतामें प्रमाणका निरूपण ४ और नानकशब्दके अर्थका निरूपण ५ इतने

पदार्थ संक्षेपसे निर्णीतहुए अथ गुरुनानकदेवजीके गुरु का निरूपण करते हैं। इसमें यह शंकाहोती है यदि गुरु नानक ईश्वरका अवतार पूर्वउक्त प्रमाणोंसे सिद्ध हुये तब साक्षात् ईश्वरका स्वरूपहैं जब ईश्वररूप हुए तब तिनको गुरुकी अपेक्षा नहीं क्योंकि ईश्वरमें अविद्याकृत आवरण होता नहीं इसीवास्ते योगसूत्रमें ईश्वरको स्वयं गुरुता लिखाहै तथाहि ॥ **स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ योग० पाद १। सू० २६॥** अर्थ॥ सो यह परमेश्वर सृष्टिके आदिकालमें होनेवाले ब्रह्माआदिकोंका गुरुहै क्योंकि कालकरके अनवच्छिन्न होनेसे अर्थात् कालकृतभेदसे रहितहोने से भाव यहहै जो किसी कालमें होवे और किसी कालमें न होवे सो कालकरके भेद सहित होता है और परमेश्वर सर्वकाल में है इससे कालकृत भेदसे रहितहै इस वर्षमें हुआ और इतने वर्षरहा और अमुक वर्ष में नष्ट होगया जो इस प्रकारका पदार्थ होताहै सो कालकृत भेदयुक्त होताहै परमात्मा सर्वकाल में है इस वास्ते कालकृत भेद रहितहै। प्रकरणमें यह सिद्ध हुआ जोकि ईश्वर स्वयंगुरुरूप ब्रह्माआदिकोंका उपदेशकहै इसीवास्ते गुरुमतमें ईश्वरको वाहगुरुनामसे बोलते हैं ॥ **वाहयन्तिकारयन्तिजगदुत्पत्त्यादिका**

र्य्यमितिवाहाब्रह्मादयस्तेषांगुरुर्वाहगुरुः ॥
जो जगतकेउत्पत्तिआदि कार्य्यको प्रजापतिआदिकों से
करातेहैं वह ब्रह्माआदि वाहहैं तिनकोउपदेशकरनेवाला
ईश्वर वाहगुरुहै इसप्रकारका अर्थ वाहगुरुशब्दका पतंज-
लिऋषिकेसूत्रसे मिलताहै इसवास्ते जो केचित् शास्त्रान-
भिज्ञ वाहगुरुशब्दका अन्यथा खैंचका व्याख्यान करते
हैं सो निष्प्रमाणक होनेसे असंगतहै ॥ पूर्व उक्त प्रकारसे
गुरुजी को ईश्वरका अवताररूप स्वयंगुरु होनेसेही गुरु
नानक देवजी को जहां बाबाकालू श्रीगुरुजी के पिता
पढ़ानें वास्ते लैजाते से उन पाधे लोगोंको उपदेश करतें
से यह वार्ता गुरुजीने अपनी वाणी में सूचनकरी है
और जिस प्रकारका उपदेश विनापढ़ै सुनें कराथा उसी
प्रकार उपदेश सदा करतेरहे प्रकरणमें वार्ता यह निर्णय
हुई कि गुरुनानकदेव स्वयं गुरुहैं तिनको गुरुकी अपेक्षा
नहीं ॥ तथापि लोक मर्य्यादाकी रक्षावास्ते गुरुनानक
देवजी को भी अवश्य गुरु कर्तव्य है जैसे रामावतार में
वशिष्ठ को और कृष्णावतार में सांदीपिनिजी को गुरु
करा है तैसे गुरुरूप अवतार में भी लोकमर्य्यादा की
स्थिति वास्ते गुरु कर्तव्यहै सो गुरु तीन प्रकारकी होतेन
हैं जो व्यवहारिक विद्याका उपदेश करताहै सो व्याव-

हारिक गुरु होताहै और जो गायत्र्यादि मंत्रका तथा यज्ञादिकर्म विद्या का उपदेशक होताहै सो वैदिक गुरु होता है और जो आत्मा का ब्रह्मरूप से साक्षात् करावे सो आध्यात्मिक गुरु होताहै सो गुरुजी के पिता और हरिद्यालपंडित व्यावहारिक तथा वैदिक गुरुहैं और विष्णु भगवान् आध्यात्मिक गुरु हैं जैसे नचकेता योग बलसे संयमनी पुरी में यमराज के पास गयाथा तैसे गुरु नानकदेव योगबलसे विष्णु भगवान् के पास सत्यलोक में गयेसे परन्तु इसमें यहशङ्का होती है यदि गुरुनानक देवजी के विष्णु गुरु होते तब अपनी वाणी में तिनकी न्यूनता न लिखते और न्यूनता गुरुवचन में स्पष्ट है॥ तथाहि॥

भैरउ अष्टपदी महल्ला १ रोगी ब्रह्मा विष्णु सरुद्रा रोगी सकल संसारा॥ सूही महल्ला ४ ब्रह्मा विष्णु महादेव त्रैगुण रोगी विचहउमैकारकमाई॥

इनसे आदि लेकर अनन्त वचन विष्णु की न्यूनता के बोधक गुरुवाणी में हैं इसका समाधान यह है विष्णु आदिक शब्दों से प्रतिपादन करे जो परमेश्वर के अं-

शावतार तिनकी न्यूनता लिखी है और गुरुजीके गुरु कारण ब्रह्महैं तिनकी पारब्रह्म भगवती आदिक शब्दों से बोधनकर स्तुती करी है तथाहि॥ एक समय में गुरु अर्जुन देवजी से वहुतसे प्रेमी भक्तों ने पूछा हे भगवन् हमने यह सुना है कि गुरुनानकदेवजी पारब्रह्मके पास उपदेश लेनें वास्ते गये थे सो पारब्रह्म आप कैसा है और तिसकी सभा कैसी है. जब इसप्रकार प्रेमीजनों नें पूछा तब गुरु अर्जुन देवजी ने एक शब्द उचारण करा तिस शब्द को लिखकर तिसका अर्थभी लिखते हैं॥

सारंग अष्टपदी महल्ला ५॥ अगम अगाध सुनहु जन कथा। पारब्रह्मकी अचरज सभा १ रहाउ॥

अर्थ॥ हे प्रेमीजनो (अगम) जो परब्रह्म प्रत्यक्ष प्रमाण से नहीं प्रतीत होता और (अगाध) अत्यन्त गुह्य है तिसकी कथा सुनो सो परब्रह्म आप आश्चर्य है और तिसकी सभाभी अद्भुत आश्चर्य्यरूपहै॥

सदासदा सतिगुरि नमस्कार। गुरुकृपा तेगुनगायअपार॥ मनभीतरिहोवैपरगास। ज्ञानअञ्जनअज्ञानविनास १॥

अर्थ ॥ सर्वकाल में सतगुरु परब्रह्म को नमस्कार होवे तिस परमगुरुकी कृपा से (अपार) अथाह गुण गायन करे हैं और आगे करेंगे क्यों कि उनकी कृपा से मनके अन्तर प्रकाश होवेगा और ज्ञानरूप (अञ्जन) औषधि से अज्ञान का विनाश होताहै १॥

मितिनाहीजाकाबिस्थार। सोभाताकी अपरअपार॥ अनिकरङ्गजाकेगनेनजाहि। शोगहरषदुहहूंमहिनाहि २॥

अर्थ॥ जिस के विस्तारका (मिति) तोल नहीं और उसकी शोभाका कुछ पारावार नहीं और जिसके अनन्त रङ्गहैं और हर्ष शोकसे रहित है २॥

अनिकब्रह्मेजाके वेदधुनिकरहि। अनिकमहेशबैसिध्यानधरहि॥ अनिकपुरुषअंशाअवतार। अनिकइन्द्रऊभेदरबारि ३॥

अर्थ॥ अनेक ब्रह्मा उसके वेदध्वनि करते हैं और अनेक शिव स्थित होकर ध्यानकरते हैं और अनेक पुरुष तिसके अंशावतार हैं और अनन्त इन्द्र उसके दरबार में खड़े हैं ३॥

अनिकपवनपावकअरनीर। अनिकरत

नसागरदधिखीर ॥ अनिकसूरससीअरन
ख्याति। अनिकदेवीदेवाबहुभांति ४॥

अर्थ॥ अनेक पवन तथा अग्नि और जल हैं और अनन्तही रतन समुद्र हैं और अनन्तही दधि तथा दूधके समुद्रहैं भाव इनपवन आदिक के अधिष्ठातृ देवता उससभामें खड़े हैं और अनेक सूर्य्य चन्द्र नक्षत्र तथा बहुत प्रकारके देवी देवता भी उस स्थानमें विद्यमान हैं ४॥

अनिकवसुधा अनिककामधेनु। अनिक
पारिजात अनिकमुखबेनु॥ अनिकआकाश
अनिकपाताल। अनिकमुखी जपीयैगो
पाल ५॥

अर्थ॥ तिससभामें (वसुधा) पृथिवी देवता और कामधेनु कल्पवृक्ष (मुखवेनु) कृष्ण और आकाश तथा पातालके अधिष्ठातृ देवते यह पूर्व उक्त पृथिवी देवता आदिक सर्वही उस सभामें अनन्त हैं और सो परब्रह्मरूप गोपाल अनन्त मुखोंवाला जपा जाताहै ५॥

अनिकशास्त्रस्मृति पुरान। अनिकयुक्ति
होवत वख्यान॥ अनिकसरोतेसुनहिंनिधा
न। सर्वजीयपूरनभगवान ६॥

अर्थ॥ अनेक शास्त्र तथा स्मृति और पुराणका अनन्तयुक्ति करके उससभा में व्याख्यानहोता है और तिस निधानसर्व के अधिष्ठान परमात्माको अनन्त श्रोता सुनते हैं और सो (भगवान्) सर्व ऐश्वर्य्यसम्पन्न परमेश्वर सर्व जीवों में पूरण है तात्पर्य्य यह है जैसे खांड़के खलौने खांड़से भिन्न नहीं तैसे उस परब्रह्म के लोकमें सर्ववस्तु परब्रह्मका स्वरूपहैं ६॥

ऋनिकधर्मऋनिककुमेर। ऋनिकवरुन ऋनिकसुमेरु॥ ऋनिकशेषनवतननामलेह। पारब्रह्मकाऋन्तनतेहि ७॥

अर्थ॥ तिस लोकमें धर्मकुमेर वरुण अनन्तहैं और सुवर्ण के सुमेरुपर्वत अनन्त हैं और उसलोकमें शेषनाग नवीननामके लेनेवाले अनन्त हैं तब भी परब्रह्मका अन्त नहीं आवता इस कथन से एक शेषशायी विष्णुलोकसे परब्रह्म के लोकको पृथक् बोधनकरा है ७॥

ऋनिकपुरीयाऋनिकतिहखंड। ऋनिकरूप रंगब्रहमंड॥ अनिकवनाऋनिकफलमूल। ऋापहिसूखमऋापहिऋसथूल ८॥

अ०॥ तिसलोक में अनन्त पुरियां और अनन्तही

खण्ड हैं और नील पीतादिक रूपवाले ब्रह्मंडभी उस लोक में अनन्त हैं और वन तथा फल मूलभी तिसलोक में अनन्त हैं बहुत क्या कहें जो कुछ स्थूल सूक्ष्म वस्तु है सो सर्वरूप आपही है ८॥

अनिकयुगादिदिनसअरराति । अनिक परलउअनिकउतपाति ॥ अनिकजीयजाके गृहमाहि । रमतिरामपूरनसभठाय ९॥

अ०॥ युग तथा दिन रात्रि मास वर्ष और उत्पत्ति प्रलयभी उसलोक में अनन्त हैं और जिसके गृहमें अनन्त जीव हैं सो रमणकरनेवाला राम सर्व स्थान में पूरण है ९॥

अनिक मायाजाकीलखीनजाय । अनिककला खेलैहरिराय॥ अनिक धुनतिललति संगीत । अनिक गुपतप्रगटे तहिचीत १०॥

अ० ॥ परब्रह्मकी मायाशक्ति अनन्तहै जो ज्ञानी नहीं जाती और उसस्थान में अनन्तकलासे परमात्मा खेल करताहै और उसस्थान में अनन्त प्रकारकी ध्वनि सहित (ललति) सुन्दर संगीतका गायन होताहै और अनन्त वस्तुगुप्त हैं परन्तु परब्रह्म के चित्त में सर्वही प्रगटहैं १०॥

सभतेऊचभगतजाकैसंगि । आठपहरि गुनगाविहिरंग ॥ अनिकअनाहदअनन्दझुनकार। उआरसकाकछुअन्तनपार ११ ॥

अ० ॥ सर्व से श्रेष्ठ भक्तजन जिसके साथहैं और सो भक्तजन परमात्मा के प्रेम में मगनहुए अष्टपहर गुणों को गाते हैं (अनिक) अनन्त अनाहद शब्द और आनन्दजनक (झुनकार) दिव्य शब्द उसलोक में हैं और उस लोक में जो रसनाम आनन्द है तिसका न आदि है और न अन्त है किन्तु मनवाणीका अविषयहै ११ ॥

सतिपुरुषसतिअसथान। ऊंचतेऊंच निरमलनिरबान ॥ अपनाकियाजानहिआप। आपेघटिघटिरहियोबियाप ॥ कृपानिधाननानकदयाल । जिनिजपियानानकतेभयेनिहाल १२ ॥

अ० ॥ सो परमात्मा आप सत्य है और उसकालोक भी सत्यहै सो परमेश्वर ऊंचतेऊंचाहै निर्मल सर्ववाणनाम दुःखसेरहितहै अपनेकरेको आपही जानताहै आपही (घटघट) सर्वघटों में व्याप्तहोरहाहै सो परमात्मा कृपा

समुद्र गुरुनानक पर दयालुहुए तब अपनेनाम का गुह्य उपदेशकिया श्रीगुरु अर्जुनदेव कहते हैं जो पुरुष तिसको मन्त्रकरके जपते हैं वह निहालहुएहैं भाव यहहै जोगुरु मन्त्रका प्रेमसे जपकरतेहैं वह वड़ेभागोंवालेहैं १२ इसगुरु वचनमें किसीलोक विशेषका निरूपणहै क्योंकि सभा और द्वारपाल औरवनफलमूल पुरियां खण्ड ब्रह्माण्डआ-दिकके निरूपणसे लोकविशेषका निर्णयहोताहै इसीलो-कको गुरुमतके लोक सच खण्ड कहते हैं ॥ पउड़ी ॥

प्रथमभगवती सिमरकै गुरुनानकलईध्याय। अंगदगुरुतै अमरदास रामदासैहोईसहाय ॥ अर्जुन हरिगोविन्दनों सिमरों श्रीहरिराय। श्रीहरिकृष्ण ध्यायीऐ जिसडिठेसबदुःख जाय ॥ तेगबहादुर सिमरिये घरनउनिधि आवैधाय। सबथाईहोय सहाय ॥ यहदशम गुरुजीका वचनहै इसमें नवगुरुनानक देवजी से आदि लेकर और दशवांभगवती शब्दका अर्थ परब्रह्महै तिन-कास्मरणरूप मंगलदशम गुरुजी ने कराहै इसवचनमें परब्रह्मही भगवतीशब्दका अर्थ है यहवार्ता इसके आगे के वाक्यसे निर्णय होतीहै ॥

तथाहि ॥ खण्डाप्रथमेसाजिके जिनिस भसैंसारउपाया । ब्रह्माविष्णुमहेशसाजि कुदरतीदाखेलरचायबणाया ॥ सिन्धुपरवतमेदनी बिनथंमागगनरहाया । सिरजेदानो देवतेतिनिअन्दरवादरचाया ॥ तैहीदुर्गासाजि कै दैतादानाशकराया ॥

अर्थ ॥ खण्डानाम लोकमें मृत्युसाधन शस्त्र विशेषका है तब तिस शस्त्रकरके उपलक्षित मृत्युकाबोध होताहै यांते प्रथम सर्व संसारका मृत्यु साजकर पश्चात् जिसने सर्व संसार उत्पन्नकरा है और ब्रह्मा विष्णु महेश को रचकर अपनी (कुदरती) मायाका खेल रचायके यथावत् जगत्को बनाया और समुद्र तथा पर्व्वत और पृथिवी इनकोरचा और विनाही (थंमा) आधारों से आकाश को स्थिरकरा और दानव तथा देवतानको उत्पन्नकर तिनके अन्तर विवादरचा और तिसी परब्रह्मने दुर्गा भगवती साजकर तिससे दैत्योंका नाश करवाया है इस दशम गुरुजी के वचन में दुर्गा तथा ब्रह्मा आदिकें का करता भगवती शब्दका अर्थ प्रतीत होता है इस वास्ते कारण ब्रह्मही भगवती शब्दसे बोधनकर तिसका स्मरण रूप

मङ्गलकरा है ॥ दशम गुरुपास किसी ने प्रश्नकरा कि नानकदेव के कौन गुरुहैं तब गुरुजी ने उत्तरदिया ॥

सवैयापातसाही ॥ १० ॥ कोटिकइन्द्रकरे जिहकेकईकोटउपिन्द्रबनायखपायो । दान वदेवफनिन्द्रधराधर पच्छिपशूनहिंजातिग नायो ॥ आजलगेतपसाधतहौंशिवउब्रह्माक छुपारनपायो । वेदकतेबनभेदलख्योजिहसो यगुरूगुरिमोहिंबतायो ॥

अ० ॥ जिस परमेश्वरके कोटान कोट इन्द्र तथा (उपेन्द्र) विष्णु आदिक उत्पन्नकरे हैं और तिसीने तिनका नाशकरा है और दानव देवता (धराधर) पृथिवीधारक (फणीन्द्र) शेष तथा पक्षि पशु इनको उत्पन्नकराहै और इनका नाश कराहै परन्तु इन पूर्वोक्त पदार्थोंकी गिनती नहीं करीजाती जिनकी परब्रह्म से उत्पत्ति तथा नाश होता है और ब्रह्मा तथा शिव अबतक तपस्या करते हैं परब्रह्मका पार उन्होंने पाया नहीं और वेद तथा कतेबने तिसका इदंकाके भेद जाना नहीं वह गुरुनानकदेव जी के गुरुहैं यह हमको अपने गुरों ने समझाया है ॥ प्रकरणमें यह वार्ता सिद्धहुई जोकि अद्भुत ऐश्वर्य्यसंपन्न

सत्यलोक निवासी परब्रह्म श्रीगुरुनानक देवजी के गुरु हैं ॥ उस सत्यलोककोही भक्तलोक त्रिपाद विभूति कहते हैं तिस त्रिपाद स्वरूप का वेदमें उपदेश कराहै ॥

तथाहि ॥ एतावानस्यमहिमाततोज्यायाँश्चपूरुषः । पादोऽस्याविश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि ॥ यजुर्वेदसंहिता ॥ अध्याय० ३१ मंत्र ३ ॥

अ० ॥ इस मन्त्र में त्रिगुण प्रकृति के विकार सहित तथा त्रिगुणप्रकृतिके विकारसें रहित स्वरूपका निर्धारण कराहै जितना यह प्रपञ्च है (एतावान्) इतना तो परमात्मा की महिमा अर्थात् त्रिगुणविकार युक्त विभूति है तिससे ज्यायान् अर्थात् अत्यन्त प्रशस्तरूप पुरुषहै क्योंकि (पादः) एक अंशरूप परमेश्वर के (विश्वाभूतानि) गुणपरिणाम सर्वभूत हैं और इसका त्रिपाद रूप स्वयं प्रकाश स्वरूप में वर्त्तमान (अमृतं) मुक्तहै तात्पर्य्य यह हैं गुणकें क्षोभसें वर्जितहै जो गुरु अर्जुन देवजीने शब्द में निरूपणकराहै जिनको सचखण्ड कहतेहैं कोई अल्पश्रुत कहते हैं गुरुनानकदेव निराकारकाही उपदेशकरते हैं साकारका उपदेश नहीं करते तिन के भ्रमकी निवृत्ति

वास्ते एकसाकारका प्रतिपादक वचन लिखकर तिसका अर्थ भी लिखते हैं॥

वडहंसमहल्ला १ तेरेबंकेलोयणदंतरीसाला। सोहणेनक जिनलंमडेवाला॥ कंचन कायासोयनेकीढाला। सोवन्नढालाकृष्णमालाजपहुतुसीसहेलीहो। यमद्वारनहोहुखलीयासिखसुणहुमहेलीहो॥ हंसहंसाबगबगालहैमनकीजाला। बंकेलोयणदंतरीसाला॥१॥

अ०॥ गुरुनानकदेवजी के पास भक्तजनोंने प्रार्थना करी हे गुरो परमेश्वरके स्वरूपका उपदेशकरो और उस का जप मंत्र बतलावो तब गुरुजी शब्दबोले हे सहेलीहो प्रेमिजनो (तेरे) तुमारे इष्टदेवके (बंकेलोयण) अत्यन्त कृपाकटाक्षयुक्त नेत्र हैं और (दंतरीसाला) सुन्दरहैं और जिस तुमारे इष्टदेवके नासिका तथा बाल बहुत शोभायुक्त तथा लंबायमानहैं अर्थात् नासिकाशोभन है और बाल दीर्घ भासमानहैं जैसे सुवर्ण की ढालीहुई पुतली होती हैं इस प्रकारका प्रकाशमान शरीर है तिससुवर्ण पुतलीवत् प्रकाशमान शरीरपर अलसी के पुष्पवत् नील कमलोंकी मालाहै हे प्रेमीजनो तुसी तिसकामनमें ध्यानसे जपकरो

हे (सहेलीहो) हमारे प्रीतमो हमारे उपदेशको सुनो यमराजके द्वारपर तुसी दनिवत् नहीं खलोवेगे क्योंकि वहां हंस विवेकी तो हंसहीहोजाते हैं और वक बकही रहते हैं भाव जिनों ने परमेश्वर का ध्यान से जपकराहे और जिनोंने दंभ दर्पादिकों का सेवनकराहे सो न्यारे न्यारे कीये जाते हैं परमेश्वर के जपध्यान से मनकी (जाली)मल उतरजाती है उसी बात को फिर लिखने के दो भाव हैं एक तो छन्दकी चाल है और दूसरा दीर्घ काल निरन्तर ध्यानजपसे मनकी मैल निवृत्त होती हैं इसवास्ते निरन्तर दीर्घकाल परमेश्वरके ध्यानादिकर्त्तव्य हैं॥ और वेदमें भी सगुणका उपदेशहै॥

॥ तथाहि ॥ यएषोऽन्तरादित्येहिरण्मयःपुरुषोदृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेशआप्रणखात्सर्वएवसुवर्णः । तस्ययथाकप्यासंपुण्डरीकमेवमक्षिणी तस्योदितिनामसएषसर्वेभ्यः पाप्मभ्यउदितउदेतिहवैसर्वेभ्यःपाप्मभ्योयएवंवेद ॥ छान्दोग्य० अ० १ खंड० ६ ॥

अ०॥ जो उपासकपुरुषोंको आदित्यमंडलके अन्तः

गेत पुरुष दीखताहै सुवर्णवत् प्रकाशमान श्मश्रुवाला और प्रकाशमान केशोंवाला भाव उसदेवके केश तथा श्मश्रु सुवर्णवत् प्रकाशमानहैं और नखसे लेकर शिखा तक सर्वही सुवर्णवत् प्रकाशमानहै भाव जैसे सुवर्ण की ढलीहुई प्रतिमा होती है इसीप्रकारका देवका शरीर है और तिसके नेत्र जो अत्यन्त लाल कमल है तद्वतहैं और तिसका उदनाम है क्योंकि सो परमात्मा सर्वपापों से रहितहै इसवास्ते उसका नाम भी उद् अर्थात् उत्कृष्ट है। जो पुरुष परमेश्वरको सर्वपापरहित जानकर तिसकी उपासना करता है सो भी सर्वपाप से रहित होताहै॥ प्रकरण में यह वार्त्ता निर्णीतहुई जो कि गुरुजी साकार तथा निराकारका अधिकारी भेद से उपदेश करते हैं॥ गुरुग्रन्थजी में उपदेश का प्रकार वेदवत् है जैसे वेद में जो एक वेद में अर्थ है सोई सर्व वेदों में अर्थ है और जो एक शाखामें अर्थ है सोई सर्व शाखा में अर्थ है तैसेही गुरुग्रन्थ में जो एक वाणी में अर्थ है सोई सर्व वाणी में अर्थहै सर्वत्र साधन और फलका पूर्व उत्तरक्रमहै किसी वाक्य में प्रथम साधनका उपदेशकरके फलका उपदेश कराहै और किसी वाक्य में प्रथमही फलका उपदेश करके फिर साधनका उपदेश कराहै सर्वत्र श्रुति तथा स्मृति में इसी प्रकारका

उपदेश है तात्पर्य्य महात्मा लोगोंका यहहै कि जैसे कैसे थोड़े बहुते को जानकर जीव कल्याणके भागीहोवें॥

इति भूमिकासंपूर्णा॥

उत्कृष्टांसर्वदेवेभ्यो वागाधिष्ठातृदेवताम्॥
नियन्त्रींसर्वसत्त्वानांनमस्कृत्यकरोम्यहम्॥
१॥ गुरुग्रन्थप्रदीपाख्यंव्याख्यानंश्रुतिसंमतम्॥मुमुक्षुभिःसदासेव्यंप्रयत्नेनमुहुर्मुहुः २॥

अ०॥ जो परमात्मा वाक्का वाक् और चक्षुकाचक्षु इत्यादि स्वरूपसे वागादिकोंका अधिष्ठाता सर्वसे उत्कृष्ट प्रेरक रूप से प्रसिद्धहै और सर्वपदार्थोंका नियंता तथा विधारकहै तिसको प्रणाम करके श्रुति स्मृति संमत गुरुग्रन्थप्रदीप नामक व्याख्यान को करताहूं सो व्याख्यान प्रयत्न करके मुमुक्षुपुरुषों ने वारंवार सदा सेवन करना चाहिये॥ २॥

सच्चित्सुखशरीराय सर्वसत्ताप्रदायिने॥
जगदुद्धारदक्षायब्रह्मणेगुरवेनमः॥ ३॥ गुरुगोविन्दसंज्ञाय धर्मरक्षाविधायिने॥ धर्मकंटकनाशाय सिंहरूपायतेनमः॥ ३॥

अ० ॥ ब्रह्मस्वरूप श्रीगुरुनानकदेवको नमस्कारहो सो गुरुनानकदेव जगत् के उद्धार करने में (दक्ष) अत्यन्त चतुरहैं और सर्वनाम-रूपप्रपंचको सत्तास्फुरति के देनेवाले हैं॥ भाव प्रपंच अपनी स्वतंत्र सत्तारहितहै और ब्रह्मस्वरूप सत्ता से सत् प्रतीत होताहै जैसे भ्रम सिद्धसर्पादि रज्जुकीसत्तासे सत् प्रतीत होते हैं इसी प्रकार ब्रह्म में आरोपित आकाशादिरूप जगत् स्वतंत्र सत्ता शून्य ब्रह्मसत्तासे सतप्रतीत होताहै और गुरुनानकदेवका शरीर सच्चिदानन्दस्वरूप है क्योंकि ब्रह्म कीही विचित्र शक्तिके वलसे अवतारों के शरीर रूपसे प्रतीतिहोती है जैसे जलही शीतता तथा औषधिके वलसे गड़े वरफरूपसे प्रतीत होता है। इसीप्रकार सच्चिदानन्दमात्र ब्रह्मही अवतार शरीरादिरूपसे विचित्र मायाके वलसे प्रतीत होताहै ॥१॥ श्रीगुरुगोविन्दसिंहजी जो धर्म की रक्षा करनेवाले हैं तिनके प्रति नमस्कारहो क्योंकि जो धर्मके (कंटक) विरोधि हैं तिनके नाशवास्ते सिंहरूपको जिन्होंने धारणकराहै जैसे धर्मका विरोधि जो हिरण्यकशिपु दैत्य तिसके नाशवास्ते विष्णु ने नरसिंहरूप धारणकराथा तैसेही कलिकालके धर्मविरोधि म्लेच्छों के नाश वास्ते गोविन्दसिंह रूप धारणकरा है इसप्रकार आद्यन्तगुरुको

नमस्कार करने से सर्वपाद हस्ति के पाद में अन्तर्भूत हैं इस न्यायते विद्या गुरु संप्रदायप्रद गुरु माता पिता आदि सर्वको नमस्कार जानना योग्य है॥ अब जो गुरु नानक देवजीको परब्रह्म के उपदेशसे मन्त्र प्राप्तभया है तिसका व्याख्यान करते हैं॥ उस मंत्रका स्वरूप यहहै॥

१ ॐसतिनामकर्त्तापुरुषनिरभउनिरवैर अकालमूर्त्तिअजूनीसैभंगुरुप्रसादि ॥ जप ॥

इस मन्त्रका उपदेश देकर जप ऐसे जप करनेकी आज्ञाकरी फिर परमेश्वरकी आज्ञासे गुरुजी आप जपते भये इसीवास्ते इस मन्त्रको दशम गुरुजी ने अपनी सौ साखी रूपग्रंथमें सिद्ध मन्त्रनामसे लिखाहै भाव गुरुजीका यहहै जो कि गुरुनानकदेवजी इस मन्त्रको सिद्ध करके फिर सर्वकी कल्याणवास्ते अपनी संप्रदाय में प्रवृत्तकरा है सर्व कार्य्य की सिद्धि इस मन्त्रके जपसे होती है और इस एक मन्त्र में सर्व वेदका अर्थ स्थापनकरा है इसके अर्थमें निष्ठा करने से जन्ममरण आदिक बन्धकी निवृत्ति होती है॥ इसमन्त्रमें ॐकारके आदिमें एक अङ्कलिखाहै तिसका तात्पर्य्य यहहै जो कि एक तत्त्वमें सर्वकी स्थिति है वह एक तत्त्वही अपनी विचित्र शक्ति से नानात्व रूप

से प्रतीतहोता है जैसे लोकमें एकत्व संख्याही द्वित्व त्रित्वादि भावको कल्पनाके वशसे प्राप्तहोती है तैसे एकही परमात्मा संसारदशा में नानारूप से प्रतीतहुए भी जैसे का तैसाहै सो एक वस्तुही वेदकरके प्रतिपाद्य है तिसकाही बोधक ॐकार है तथाहि अ उ म् इनतीन वर्णोंसे ॐकार बनाहै तिसमें अवर्ण स्थूल उपाधि सहित विराट् का वाचक है परन्तु जैसे बीज तथा अंकुरसे विना वृक्ष नहींहोता तैसे कारण रूप बीज और हिरण्यगर्भरूप अंकुरसे विना विराट्रूप वृक्षकी स्थिति नहींहोती इसवास्ते विराट्के अन्तर्गतही कारण तथा सूक्ष्म उपाधि है इस वास्ते कारण सूक्ष्म स्थूल इन तीन उपाधि सहित चित् विराट् अकार मात्राका वाच्यार्थ है तिसमें स्थूल उपाधि की दृष्टि त्यागने से कारण तथा सूक्ष्म उपाधि सहित चित् उकार मात्राका वाच्यार्थ हिरण्यगर्भ है और स्थूल सूक्ष्मरूप उपाधि दोकीदृष्टि त्यागनेसे एककारण उपाधि सहित चित् ईश्वररूप मकार मात्राका वाच्यार्थ है जब कारणको भी चित्में लीनकरा भाव चित् सत्तासे पृथक् सत्ता शून्यजाना तब केवल चिन्मात्र वस्तु शेषरहा ॐकारका लक्ष्यार्थ अमात्र पदहै इस प्रकार ॐकारसे एक तत्त्वको जानकर तिसका अपने आत्मासे अभेद

चिन्तनकरे प्रथम व्यष्टि कारण सूक्ष्म स्थूलरूप उपाधि त्रितय सहित विश्वनामक जीवको समष्टि उपाधि सहित विराट् रूपदेखे फिर जब समष्टि भावनाकी दृढ़तासे व्यष्टिभाव विस्मृतहो जाय तब विराटान्तर्गत सूक्ष्म समष्टि से अपने सूक्ष्म व्यष्टि उपाधिक तैजस जीवका अभेद चिन्तनकरे फिर जब व्यष्टिभाव की विस्मृति से सूक्ष्म समष्टिभावना दृढ़होवे तब फिर कारण समष्टि उपाधिक ईश्वरसे कारण व्यष्टि उपाधिक प्राज्ञ जीवका अभेद चिन्तनकरे फिर जब ईश्वरसे अभेद चिन्तन करते २ व्यष्टि अध्यासकी निवृत्ति पूर्व्वक समष्टि भावना दृढ़होवे तब कारणात्माको शुद्ध चेतनसे पृथक् सत्ता शून्य जानकर अपनेको अखण्डचिद्रूप देखे इस प्रकार ॐकारके विवेचनसे अपने आत्माका साक्षात्कार होता है ॥ १ ॥

सच्चिदानन्दरूपायकृष्णायाक्लिष्टकर्म्मणे ॥ नमोवेदान्तवेद्यायगुरवेबुद्धिसाक्षिणे ॥ गोपालतापनी श्रुति ॥ इस श्रुति वचनके अनुकूल सतिनाम मन्त्रका व्याख्यान करते हैं परन्तु प्रथम श्रुत्यर्थ लिखते हैं सतचित् आनन्द स्वरूप वेदान्त विद्यासे वेद्य तथा बुद्धि साक्षि और क्लेशरहित जगतकी उत्पत्ति स्थिति विनाशरूप कर्मवाले कृष्णपद वोध्य परमात्माके अर्थ नम-

स्कार होवे॥ गुरुमन्त्रमें (सति) इस पदमें जो तकारकी सियारीरूप इकार है सो भाषाकी बोल चालसे लिखी है अर्थ सत्पदकाही करेंगे और सत्पद श्रुति में चित् और आनन्दके साथ देखा है इस वास्ते सत् चित् आनन्दस्वरूप जो पुरुष है सो नामका कर्त्ता है यद्यपि नाम और रूप स्वरूप प्रपंच है याते नामरूपका कर्त्ता पुरुष है इस प्रकार कथन करना उचित था तथापि जो रूपप्रपंच है सो नामसे पृथक् नहीं और (वाचारम्भणंविकारोनामधेयम्) छान्दोग्य॰ उ॰ अ॰ ६॥ (और जेताकीतातेतानाउ) इस श्रुति तथा गुरु वचन से नाम मात्रही प्रपञ्च है इससे नामकर्त्ता इस प्रकार से कथन करा है॥ श्रुत्यर्थ (नामधेय) नाम मात्रही विकार है (वाचारम्भणं) शब्दमात्र करके रचित है तात्पर्य्य यह है उपादान कारण में जो आकाश वायु आदिक शब्द मात्रहैं सोई विकार है तिससे पृथक् विकाररूप प्रपञ्च नहीं इसवास्ते सत् चित् आनन्द परमात्मा का स्वरूप लक्षणहै और नामकर्त्ता यह ब्रह्मका तटस्थलक्षण है जो नामकर्त्ता है सो पुरुष स्वरूप जानना केवल प्रकृति रूप नहीं इससे सांख्यशास्त्र कल्पित जड़ प्रकृति में जगत् कर्तृत्व नहीं क्योंकि आलोचन पूर्वक सृष्टि

वेद में सुनी जाती है (आलोचन) देखना चेतनका धर्म्म है जड़का नहीं याते प्रपंचका कारण चेतन है॥ **तदैक्षत बहुस्यांप्रजायेयेतिछान्दोग्य० अ० ६ खण्ड २** ॥ इस श्रुति में संकल्पपूर्व्वक सृष्टि सुनीजातीहै श्रुत्यर्थ ॥ (तत्) पूर्व्व उक्त सत् रूप ब्रह्म, ऐक्षत् सृष्टिकी रचना प्रकारको देखतेहुए संकल्पकरा (बहुस्यां) अपने आपही में बहुत रूपहोकर (प्रजायेय) (प्रजारूपसे उत्पन्नहोवों) प्रकरण में वार्ता यह सिद्धहुई कि जगत् के उत्पत्ति पालना संहारका कर्तृत्वरूप तटस्थ लक्षण ब्रह्म का है, स्वरूप लक्षण और तटस्थ लक्षण में इतना भेदहै जो लक्ष्यका स्वरूप हुआ तिसका भेदकरे सो स्वरूप लक्षणहै जैसे ब्रह्मके सतचित् आनन्द स्वरूप हुए असत् जड़ दुःखरूप प्रपंचसे ब्रह्मको जुदाकरके जनावते हैं भाव ब्रह्म असत् जड़ दुःखरूप नहीं और जो लक्षण (तटस्थ) एक देशमें रहकर अपने लक्ष्यको इतरोंसे भिन्न करके जनावता है सो तटस्थ लक्षण कहा जाताहै जैसे ब्रह्मका दर्शन पूर्व्वक जगत् रचना हेतुपना लक्षण ब्रह्मको प्रधान परमाणुओं से जुदाकरके जनाता हुआ मायामिलित ब्रह्मरूप एक देश में रहता है इससे तटस्थ लक्षण है। गोपालतापनी श्रुति में (अक्लिष्टक-

र्म्भणे) इतना श्रुतिभाग तटस्थ लक्षण का बोधकहै सो क्लेशरहित कर्म्म परमात्मा में जगत् रचनादि रूपहैं। इस वास्ते श्रुति और गुरुमन्त्रकी एक रूपता है। जेकर ब्रह्मकर्त्ता है तब तिसकी भी किसी स्थान से उत्पत्तिहुई होवेगी क्योंकि लोकमें जो जो करता होताहै सो किसी से जन्य जरूर होताहै इसशंकाकी निवृत्तिवास्ते अजूनी यह पद कहा इसमें भाषाकी मर्य्यादासे योनिपदके स्थानमें जूनीकहा है योनिनाम उत्पत्ति के स्थानका है यांते सो पुरुष रूप करता उत्पत्ति स्थान से रहित होने से अजूनी है॥ उत्पत्ति रहित हुये भी कालसे नाशवाला होवेगा इस आक्षेपके निराश वास्ते अकालमूर्त्ति यह पद कहा है कालकरके नाश रहितहै मूर्त्ति स्वरूप जिस का ऐसा है भाव यह उसके स्वरूपकी काल से निवृत्ति नहीं होती किन्तु सो कालका भी काल रूप है जेकर कालका भी काल है तबभी अपने सदृश किसी से वैरवाला होवेगा; इसका उत्तर (निरवैर) अर्थात् अपने तुल्य द्वितीय वर्जित है इससे निरवैर है। जब निरवैरहै इसीसे निरभउ अर्थात् भयवर्जित है इस स्थान में भयशब्द के स्थान में भउभाषा की बोल चालसे लिखा है। यह बात अति प्रसिद्ध है कि दूसरे से भय होता है परमात्मा में

द्वैतवाणी मात्रहै इससे निर्भय है, निर्भय १ निर्वैर २ अकालमूर्त्ति ३ अयोनि ४ इनचार विशेषणोंसे जो वेदान्त में वस्तु निर्देशकी मुख्यरीति है सो बोधनकरी ॥

तथाहि ॥ अथातआदेशोनेतिनेतिनह्येतस्मादितिनेत्यन्यत्परमस्ति॥ बृहदारण्यक० अ० ४ ब्राह्मण ३ पद। अथ। अतः। आदेशः। नइतिनइतिनहिएतस्मात इतिनइतिअन्यतपरम् अस्ति ॥

अर्थ॥ (अथ) प्रपंचके आरोपसे अनंतर (अतः) जिसवास्ते आरोपित वस्तु निषेध के अर्थ है इससे न इति न इति यह (आदेशः) निर्देश अर्थात् उपदेश करते हैं॥ भाव दो इति पदों से संपूर्ण प्रपंच के स्वरूप को कथनकर दो न शब्दोंसे निषेध कियाहै यावत् स्थूल सूक्ष्म वस्तुहै सो ब्रह्म में नहीं है इस प्रकारसे जब वस्तुको बोधन करते हैं तब गुण क्रियादि रहित पदार्थका ज्ञान सुगम होताहै और जे कर विधि मुखसे किसी सतचित् ज्ञानादिक पदों से वस्तुको बोधन करते तब शब्दकी प्रवृत्ति के निमित्त गुण क्रिया जाति से रहितका बोध लक्षणा वृत्ति से विना नहीं होसकता इस वास्ते विधि

मुख उपदेश से निषेध मुख उपदेश श्रेष्ठ है (हि) जिस हेतु से (इतिनइति) यह पूर्वोक्त न इति निर्देश जो है (एतस्मात्) इस निर्देश से। अन्यत् परंनास्ति यह अन्वय है अर्थ यह इस निषेध रूप उपदेश से और उपदेश श्रेष्ठ नहीं है इसवास्ते यह निषेध मुखसे वस्तु बोधन का प्रकारही उत्तमहै। इन निरभउ आदिक चार शब्दों से परमात्माको वेदान्तवेद्य बोधन करा जानना इसवास्ते जो गोपालतापनी श्रुति में वेदान्तवेद्याय यह पद है तिसकी समानताभी गुरुवचनमें सिद्धहुई क्योंकि निषेध मुखरूप उपदेश से वेदान्तवेद्यत्व परमात्मा को बोधन कियाहै (सैभं) सै शब्दका शय समझना चाहिये भाषा की रीतिसे यकारको एकार शकार को सकार लिखा है (शेते वासनायस्मिन् स शयः अन्तःकरणम्) शयन करती है वासना जिसमें सो शयहै अन्तःकरण इस वास्ते अन्तःकरण में जो भं प्रकाशरूप वस्तुहै सो शयभं है तात्पर्य्य यहहै जो पूर्व ॐकारादिक पदों से बोधन किया है सो अन्तःकरण और तिसकी वृत्तियोंका प्रकाशरूपहै इसीप्रकारसे जानाहुआ परमात्मा मोक्षका कारण होता है यह श्रुति में कहा है॥

तथाहि॥ प्रतिबोधविदितंमतममृतत्वंहि

विन्दते ॥ आत्मनाविन्दतेवीर्यंविद्ययावि न्दतेमृतम् ॥ केनउपनिषत्० खण्ड० २ श्रुति० ४॥

अ० ॥ (प्रतिबोधविदितम्) जितने अन्तःकरण के वृत्तिरूप ज्ञानहैं उनका प्रकाशरूपसे जो ज्ञातहोताहै सो (मतं) ज्ञात कहाजाताहै भाव यावत् अन्तःकरण की वृत्ति और चञ्चलता स्थिरता सात्त्विक राजस तामसताहै तिसका जो प्रकाशक है सो वेदान्तप्रतिपाद्य नित्यमुक्त ब्रह्महै इस प्रकारसे जो जानाजाताहै सोई ज्ञात कहा जाताहै ऐसे जानने से (अमृतत्व) मोक्षको (हि) निश्चित (विन्दते) प्राप्त होताहै भाव इसप्रकार ज्ञातही ब्रह्म मुक्ति का कारणहै इस प्रकारका ज्ञानरूप (वीर्य) बल अपने आप करके प्राप्त होताहै। इस जीवने अज्ञानके प्रभाव से देहादिकों में आत्मभावना करी हैं सो अपने विचार सेही नित्य मुक्त ब्रह्मभावकी दृढ़तारूप ब्रह्मविद्या द्वारा मोक्ष को प्राप्तहोवेगा। जब इसप्रकारकी अविद्या अनादि है और अद्वैत सिद्धान्त है तब तिसका निवर्तक जो ज्ञान तिसकी प्राप्ति कैसे होवेगी इस शङ्का की निवृत्ति वास्ते कहते हैं (गुरुप्रसादि) प्रसाद शब्द में इकार पञ्चमी विभक्ति के अर्थका द्योतक है तब यह अर्थ हुआ

जो कि (प्रसाद) अनुग्रह अर्थात् अपनी कृपा से गुरु रूप होकर सर्वको उपदेश करता है जब परमात्मा गुरु हुआ तब जीवरूप शिष्यको ज्ञानद्वारा मोक्ष होता है एक वस्तुमें माया और अविद्यारूप उपाधिसे गुरुशिष्य भाव होजाता है। यह तो ईश्वर और जीवरूप गुरुशि-ष्यभाव में माया औ अविद्यारूप उपाधि है। और जहां जीवों में परस्पर गुरु शिष्य कल्पना है सो प्रबुद्ध अप्र-बुद्ध कृतहै प्रबुद्ध चैतन्य गुरु है और अप्रबुद्ध चैतन्य शिष्य है जो ज्ञातज्ञेयहै सो प्रबुद्ध और अज्ञात ज्ञेय अप्र-बुद्ध कहाजाता है। प्रबुद्ध चैतन्य साक्षात् ईश्वर है क्यों कि गुरुजी ने कहा है "जिनजाता सो तिसही जेहा" इस गुरुमन्त्रमें श्रुतिकी समानताके वास्ते (सैभं) और "गुरु प्रसादि" कहाहै क्यों कि गोपालतापनी श्रुतिमें "गुरवे बुद्धिसाक्षिणे" ऐसा कहा है बुद्धिसाक्षी और सैभं दोनों एकार्थक हैं, याते यह फलितहुआ जो सतिआदिक मन्त्र में स्थित पद हैं तिनसे जो वस्तु बोधन करी तथा ॐकार से जो वस्तु बोधन किया सो सैभं है और जो सैभं है सो ॐकारादिककर बोध्य वस्तु है इस प्रकार से जीव परमात्मा का अभेद उपदेश करा है॥ इसमें इतना और विशेष समझना जो कि विश्व तैजस प्राज्ञ और त्वंपदका

लक्ष्यसाक्षी इनका विराट् हिरण्यगर्भ ईश्वर और तत्पद् लक्ष्य ईश्वर साक्षी इन चारों के साथ अभेद चिन्तन करके एक अखण्ड चैतन्यका निश्चय करना ॥ इस गुरु मन्त्र में चतुर्वेद में प्रधान जो गायत्री मन्त्र है तिसका भी अर्थ दिखाया है क्यों कि गायत्री मन्त्र में भी बुद्धि प्रेरक साक्षी का तत्पदके लक्ष्य से अभेद बोधन वास्ते अध्याधिदैवका अभेद कहाहै ॥

तथाहि ॥ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियोयोनःप्रचोदयात् । यह गायत्री मन्त्र ॐकारादिरहित और भूरादि व्याहृतिरहित है और चारों वेदों में इसीप्रकार का पाठ है भाव यहहै बहुत से मन्त्रों का शाखा भेदकर पाठों का भेद होता है और इस मन्त्र का सर्वत्र पाठ एकहै जो जप करने के समय गायत्री के आदि में श्रुति स्मृति प्रमाण से लगावते हैं उनको व्याहृति कहते हैं मन्त्रके पद ॥

तत्सवितुः वरेण्यम् भर्गः देवस्य धीमहि धियः यः नः प्रचोदयात् ॥

अर्थ ॥ सवितुर्देवस्य वरेण्यं (भर्गः) भर्ग धीमहि यह अन्वय है तव यह अर्थ हुआ जो कि प्रकाशरूप जगत

स्रष्टा परमेश्वरका (वरेण्य) प्रधान (भर्ग) भकार से सर्व भासक चिद्रूप रकार से सर्वरञ्जक आनन्दरूप गकार से जगत् उत्पत्ति कारण तथा प्रलयकारण रूपको (धीमहि) हम मुमुक्षु जन चिन्तन करते हैं। इस भर्ग शब्दका निरूपण श्रुति में कराहै॥

भइतिभासयतीमान्लोकान् रइतिरञ्जयतीमानिभूतानि गइतिगच्छन्त्यस्मिन्नागच्छन्त्यस्मादिमाः प्रजास्तस्माद्भरगत्वाद्भर्गः॥ मैत्र्युपनिषत् अ० ६॥

अर्थ॥ जो सर्वलोकों को प्रकाशकरे और सर्वभूतों को रञ्जन अर्थात् सुखयुक्त करे और सर्व प्रजा जिसमें लीन होवे और जिससे यह सम्पूर्ण प्रजा आगमन करें अर्थात् उत्पन्न होवें इसीवास्ते भरगपना होने से भर्ग है॥ इतने से अधिदैव तत्त्व अर्थात् देवताओं में विद्यमान परमात्मा का स्वरूप निर्णीतहुआ अब अध्यात्म तत्त्व अर्थात् मनुष्य शरीरादि में विद्यमान परमात्मा का रूप निरूपण करते हैं। जो परमेश्वर (नः) हमारी (धियः) सर्व अन्तःकरण वृत्तियों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करता है। भाव हमारी बुद्धि आपकी कृपा से

श्रेष्ठ कामों में प्रवृत्त होवे। ऐसी प्रार्थना है तब इस मन्त्र में भी महावाक्यरूप उपदेश है क्यों कि जो बुद्धि का प्रकाशक प्रेरकहै सो जगत्सृष्टि आदिकका कर्त्ता है और जो सर्व जगत् का कर्त्ता है सो बुद्धिवृत्तियों का प्रकाशक है॥ इतना भेदहै जो कि गुरु महाराज ने जप ऐसा लिखा है और वेदमन्त्र में धीमहि ऐसा लिखा है परन्तु जब विचार किया जाय तब जपके अन्तर्गतही ध्यान है क्योंकि श्रुतिमें लिखाहै। **यत्पुरुषोमनसाभिगच्छति तद्वाचावदति ' नृसिंहपूर्वतापनी ' खण्ड १** । जिस वस्तु को पुरुष मनकरके (अभिगच्छति) चिन्तन करता है तिसको वाणी से कथन करता है यह श्रुतिका अर्थ है॥ और जपके भी तीन भेद हैं वाचिक १ उपांशु २ मानसिक ३ जो स्पष्ट उच्चारण करना सो वाचिकहै और जो धीरेसे पास बैठेको किंचित् सुनाजाय सो उपांशु है और जो केवल मन से मंत्रका अनुसन्धान सो मानसिक है॥ उसमें भी जो अर्थ ज्ञानपूर्वक त्रिविध जप है सो अत्यन्त श्रेष्ठ है॥ इस प्रकार से गायत्री मंत्र के समान गुरु मन्त्रहै॥ अब इस गुरुमंत्र में विषय १ प्रयोजन २ अधिकारी ३ सम्बन्ध ४ यह चारभी जानने को योग्य हैं जो वस्तु विद्या से बोधन

करी जाती है सो विषय होती है अर्थात् जो ग्रन्थ से प्रथम अज्ञात है वही उस ग्रन्थ का विषय है सो इस स्थान में ॐकारादि पदों से बोध्य अद्वैत वस्तु गुरु ग्रन्थजी के विचार से प्रथम अज्ञात है याते सो अद्वैत तत्त्व इस ग्रन्थ का विषय है सो अद्वैत स्वरूप वस्तुही ज्ञातहुई परमानन्द की प्राप्ति और संसार दुःखकी कारण सहित निवृत्तिरूप है क्योंकि ज्ञात अधिष्ठानही आरोपित की निवृत्तिरूप है॥ और स्वयं परमानन्दरूप होने से नित्यप्राप्त परमानन्दरूपहै याते परमप्रयोजन रूपहै॥ और भक्तिपूर्व्वक ज्ञान इस ग्रन्थका अवान्तर प्रयोजन है तिसका सूचक नामकर्त्ता और निर्भउ निर्वैर आदिक पद हैं॥ क्योंकि कर्त्ता इतने कथनसेही जगत्कर्त्ता का बोध होसक्ता था नाम पद के उच्चारण से प्रपञ्चको नाममात्रता और इस कलिकाल में नाम स्मरण श्रवण कीर्त्तनादिक भक्तिको सर्व्वसाधनसम्पत्तिपूरकता बोधन किया है॥ और विनाज्ञान से निर्भयता निर्वैरता होनहीं सक्की इससे नाम आदिक पद अवान्तर प्रयोजन जो भक्ति पूरकज्ञान तिसके द्योतकहैं॥ और जप पद इस मन्त्र का जप करता जो अधिकारी तिसका बोधक है और गुरुग्रन्थ साहिब तथा भक्तिपूर्वक ज्ञानका जन्य जनकभाव सम्बन्ध है

और नाम स्मरण आदिक का अधिकारी से कर्तृ कर्तव्य भाव सम्वन्धहै अधिकारी कर्त्ताहै नाम स्मरणादिक कर्त्तव्यहैं ॥ और भक्तिपूर्व्वक ज्ञानका और विषय का विषयविषयिभाव सम्वन्धहै वेदान्त वाक्यरूप ॐकारादि वोध्य वस्तु विषयहै और ज्ञान विषयी है ॥ और गुरुप्रसादि इस पदसे ईश्वरकी अनुग्रह अर्थात् कृपा सर्व साधन सामग्री की पुष्टीका हेतु सूचन कियाहै ॥ और गुरु तथा ईश्वर भक्ति का प्रधानता करके वोधक श्रीगुरुग्रन्थ साहवजी हैं इस वार्त्ताको भी गुरुप्रसादि वाक्यसे जनाया समझना ॥ ऐसे पूर्व्व कथन करे प्रकारसे परब्रह्मके उपदेशका संक्षेपसे निर्णय किया परमेश्वर का जो इस प्रकार भाषावाणी में उपदेश है तिसके दोभाव हैं एकतो विद्या संप्रदाय का मूल प्रतिपादन करना जोकि परब्रह्मसे गुरु संप्रदायकी प्रवृत्ति और इस समयमें इसीप्रकार की वाणी बनानी चाहिये यह रीति जनाई है इस वास्ते गुरु महाराजजीने इसीप्रकारकी वाणीका आगे निर्माण कियाहै ॥ अव जो प्रथम मन्त्रमें विषयरूप अद्वैत वस्तु संक्षेप से उपदेश करी है तिसका प्रथमपंक्तिसे विस्तार करते हैं । क्योंकि व्यासादिक आचार्य्यन की संक्षेप विस्तार से उपदेश की मर्य्याद चली आवतीहै उसी मर्य्यादाका गुरुजीने अङ्गीकार कियाहै ॥

आदिसचुजुगादिसचु ॥ हैभीस
चुनानकहोसीभीसचु १ ॥

अ० ॥ इस वाक्य में सत्‌रूप अद्वैत तत्त्वको भूत भविष्यत् वर्त्तमान तीनोंकालों में एकरूपताका निर्धारण करते हैं। (आदिसचु) जो चकारमें उकारहै सो प्रथमा विभक्ति के अर्थका द्योतक है अथवा भाषाकी रीतिसे लिखा है तव यह अर्थ हुआ (आदि) जो सृष्टि संकल्प से प्रथमकाल है तिसमें सत् विद्यमान था और जब सृष्टि संकल्पहोकर सूक्ष्मसृष्टिहोगई और स्थूलसृष्टि के अभावसे सतयुगत्रेताद्वापरादिवरतारे के अभाव काल में भी सत् वस्तु विद्यमान थी युगवरतारे के अभाव काल का नाम युगादि है अर्थ यह युगसे प्रथम कालमें भी सत् ब्रह्म था और वर्त्तमान भविष्यत् कालमें भी है और होगा. यद्यपि जब अन्तर्मुख सत् है तब काल भी नहीं था। जब काल न हुआ तब तिस कालमें सत्ताबोधन करना असंगत है तथापि आचार्य्य लोकों का उपदेश. शिष्यकी शंका दूर करनेवास्ते होता है और शिष्यको काल कल्पना है सो ऐसी शंका करसकता है कि सो सत् ब्रह्म किसकाल में है उत्तर गुरुजी ने दिया सर्व कालमें है ॥ और प्रथम कालमें असतहीथा पश्चात् तिस असतसे सत् होताभया

इस प्रकारकी शंकाभी श्रुति में लिखी है तिस शंकाकी निवृत्तिवास्ते भी गुरुजी ने सर्व काल में परमात्मा का होना सिद्धकराहै॥ सो श्रुति छान्दोग्यमें उद्दालक और श्वेतकेतुके संवाद में लिखी है॥

तथाहि॥ सदेवसोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम् तद्धैकआहुरसदेवेदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतःसञ्जायेत ॥ १ ॥ कुतस्तुखलुसोम्यैवंस्यादितिहोवाचकथमसतःसञ्जायेतेति सत्त्वेवसोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम् ॥ २ ॥

अ०॥ तहां छान्दोग्य उपनिषत् के षष्ठ अध्याय में यह प्रसंग है उद्दालक ऋषिने अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहा हे पुत्र हमारे कुल में जो वेदविद्या नहीं अध्ययन करता सो (ब्रह्मबन्धु) नीच गिना जाताहै इसवास्ते हे श्वेतकेतो पुत्र आचार्य्य की सेवाकर वेद पठनकरो जब इस प्रकार की आज्ञा पिताने करी तब बारहवर्ष गुरु की सेवाकरके वेद पढ़कर पिताके पास आये परन्तु अध्यात्मविद्याके न जानने से अभिमान के सहित उद्दालकके पास आकर सन्मुख बैठे पिताने कहा हे (सौम्य)

प्रिय तैंने गुरुसे सो वस्तुभी पूछी है जिस एकके सुनने मनने जानने से सर्व न श्रवण करे न मननकरे न जाने भी श्रवण मनन ज्ञात होजाते हैं, जब इस प्रकार पिता ने कहा तब श्वेतकेतु ने कहा ऐसी संसार में कौन वस्तु है जिस एकके जानने से सर्व वस्तु जानीजाय तब उद्दालक ने दृष्टान्त कहा जैसे एक मृत्तिका के जानने से सर्वही मृत्तिकाके कार्य्य घट शरावआदिक जानेजाते हैं क्योंकि घटादिकों का वास्तव स्वरूप मृत्तिका है और जैसे सुवर्ण के कार्य्य कटकादिक सुवर्णके जानेसे जाने जातेहैं और लोहे के कार्य्य दात्र कुठारादिक लोहे के जाने से जानेजाते हैं भाव घटादिक कटकादिक दात्र कुठारादिक पृथ्वी सुवर्ण लोह से किंचित् भी भिन्न नहीं किन्तु इनका वास्तवरूप अपना अपना उपादान कारण है। इसी प्रकार एक तत्त्व है जिस एकतत्त्वके जाने से अश्रुत और अमत अविज्ञात वस्तु भी ज्ञात श्रुतमत होजाती है सो एक तत्त्वभी तैंने गुरुसे क्या पूछा वा जानाहै। इस बातको सुनकर श्वेतकेतु ने कहा हे भगवन् इसविद्या को हमारे गुरु नहीं जानते से जेकर जानते तब मेरे प्रेमी शिष्य के प्रति कहते यह वार्ता श्वेतकेतु ने फिर आचार्य्य के पास जानेके भयसे कही क्योंकि

ऐसी बात गुरुके प्रति कहनी उचित नहीं और जेकर वो गुरु अध्यात्मविद्या को जानते होवेंगे इसके न पूछने से न कहा तब श्वेतकेतुकी बातका मिथ्याभाषण में पर्य्यवसान हुआ इस वास्ते सर्वथा अयोग्य बात का प्रवासजन्य क्लेश भय से कथनहै॥ श्वेतकेतुने कहा आपही कृपा करके उस उपदेशको करो जिस उपदेशसे सर्व के ज्ञानका कारण ज्ञान होवै, जब इस प्रकार श्रवण करने को सन्मुख हुआ तब उपदेश करते हैं॥ हे (सौम्य) प्रियपुत्र (इदम्) यह जो प्रत्यक्षादि प्रमाण से निर्णीत प्रपञ्चहै सो (अग्रे) सर्व प्रपञ्चसे पूर्वकालमें सत्रूपही (आसीत्) होताभया सो सत्वस्तु एक निश्चय करके (अद्वितीय) द्वैतरहितहै॥ पूर्वकालमें सत था और वर्तमानमें भी सत है इतना भेदहै पूर्वकालमें नाम रूप कल्पनारहित था और वर्तमानमें नाम रूप कल्पना सहित है आगे भी सतही रहेगा यह अर्थ से जानलेना इस विचारमें (एके) कोई एक विचारशून्य (ह) स्फुट कहते हैं पूर्वकालमें यह दृश्यमान वस्तु असत् स्वरूपही थी और वर्तमानमें भी असत्है आगे भविष्यत्काल में भी असत होवेगी, सो असत एक निश्चय करके द्वैतरहितहै इस वास्ते (असत्) शून्यसे सत उत्पन्न होताहै इसप्रकार

शून्यवादी का मत दिखलाकर खण्डन करते हैं वेद भगवान् यह वार्त्ता कैसे इसप्रकार होवे जो कि असत् से सत् उत्पन्न होवे इस वास्ते सृष्टिसे पूर्वकाल में सत् एक निश्चय करके द्वैतरहितही होताभया यह निर्धारण किया ॥ भाव जेकर, शून्यसे प्रपञ्च होता तब शून्ययुक्तही शून्यंघटः शून्यंपटः इस प्रकार से प्रतीत होता सन्घटः सन्पटः इत्यादि रीति से सत्युक्त न प्रतीत होता प्रकरण में वार्त्ता यह सिद्धहुई जो कि इस श्रौत अर्थकाही गुरु महाराज ने विस्तार कराहै और इसका दूसरेप्रकार भी अर्थ करते हैं। तथाहि (आदि) सर्व प्रपञ्चका कारणरूप शक्ति और (जुगादि) जो युग दो वस्तु नाद और विन्दु सो हैं आदि अर्थात् प्रथम जिससे ऐसा बीजाक्षररूप प्रणव सो सतब्रह्मरूपहै जब शक्ति और प्रणवरूप आदि अन्त को ब्रह्मरूपताहै तब मध्यवर्त्तिनादविन्दुको भी ब्रह्मरूपता अर्थसे प्राप्तहै, शक्ति और शक्तिसे नाद तिस नादकोही कालरूपसे निर्णय करते हैं तिस नाद से विन्दु होताहै जो क्रिया प्रधान शब्दका रूपहै सो विन्दुहै तिस विन्दु से शब्दमात्र स्वरूप शब्दब्रह्म होताहै यह प्रक्रिया शब्द पूर्वक सृष्टिकी है जब फिर शक्तिभावापन्न परमात्माने नाद रूप कालकी सहकारता से भूत भौतिक प्रपञ्च किया तब

शरीररूप अधिष्ठान में शब्दब्रह्ममूलाधार चक्र में स्फुरण होकर परावाणी नामसे कहा फिर स्वाधिष्ठान चक्र में पश्यन्ती वाणीनाम से कहा गया नाभिचक्र से नीचले चक्रका नाम स्वाधिष्ठान कहते हैं और जब हृदय स्थान में प्रकटहुआ तब सो शब्दब्रह्ममध्यमा वाणी नाम से कहा गया और जब शब्द ब्रह्म जिह्वा में प्रादुर्भाव को प्राप्त हुआ तब वैखरीवाणी नाम से कहा जाताहै यह वार्त्ता अथर्वणवेद की ध्यानबिन्दु उपनिषद् से निर्णीत है, तथाहि ॥

बीजाक्षरात्परंबिन्दुं नादंबिन्दोःपरेस्थितम् ॥ सुशब्दंचाक्षरेक्षीणे निःशब्दम्परमम्पदम् ॥ ध्यानबिन्दु० मन्त्र ४ ॥

अ० ॥ बीजाक्षर जो पूर्व उक्तप्रकार से वैखरी मध्यमा पश्यन्ती परावाणी रूप ॐकार तिससे परे बिन्दुहै और बिन्दुसे परे नाद स्थितहै ॥ (सुशब्दं च परे स्थितम्) यह अन्वयहै (शोभनो नादरूपः शब्दो यस्मात् तत्सुशब्दं शक्तिरूपं वस्तु परे निर्विशेषे स्थितम्) जिस शक्ति से सुन्दर नादरूप शब्द हुआहै सो शक्ति निर्विशेष वस्तु जो कि सर्व प्रपञ्चका अधिष्ठानहै तिसमें स्थितहै जो परवस्तु का ध्यान साधन अक्षर ॐकार चतुर्विध वाणी रूप है

तिसके (क्षीण) शान्तहोने पर परमपदरूप परमात्मा (निःशब्दं) शब्दरहितहै॥ इस श्रुति में ध्यानका क्रम बांधाहै सो इस प्रकारकाहै प्रथम सर्व का आश्रय परमात्मा उसमें जब सृष्टि संकल्प शक्ति के सद्भावसे हुआ तब उसको बहिर्मुख सत् अथवा शक्ति नामसे कहा फिर उससे प्रथम शब्द सृष्टि हुई नाद और नादसे बिन्दु और बिन्दु से शब्दब्रह्म जब शब्दब्रह्मको उसके ध्यान में युक्त किया सो जब शान्त हुआ तो विशेषरहित फिर तिसी प्रकारका होगया॥ गुरुजीने पूर्व उक्तप्रकारसे शक्ति और शब्द सृष्टिको ब्रह्मरूपता (आदिसचुजुगादिसचु) इतने भागसे कहा अब भूत भौतिक अर्थात् पञ्चभूत और पञ्चभूतों के कार्य्य वर्त्तमान तथा भविष्यत् प्रपञ्चको परब्रह्म रूप सिद्ध करते हैं (हैभीसचुनानकहोसीभीसचु) गुरुजी कहते हैं वर्त्तमान तथा आगे होनेवाला प्रपंच सद्रूप(ब्रह्महै॥ भाव यावत् प्रपञ्चको ब्रह्मसत्ता से पृथक् सत्ता शून्य होने से अद्वैतरूप विषय सिद्ध हुआ १ पूर्व विषयका निरूपण करके अब अधिकारी के धर्मों का निरूपण करते हुये अर्थ से अधिकारी का निरूपण गुरुजी करते हैं॥ इस स्थानमें यह समझना जो कि प्रथम मूलमंत्रमें जो अद्वैत वस्तु विषय संक्षेपसे कहा था तिसका

विस्तार करके अब जपनेवाला अधिकारी जो जप पद से सूचन किया था तिसके धर्मनका निरूपण करते हैं॥

सोचैसोचिनहोवईजेसोचीलखवार॥ जो अधिकारी बाह्य शुद्धिको चित्तकी शुद्धिका हेतु भ्रम से मानरहाहै तिसको चित्त शोधक धर्मों में प्रवृत्त करते हुये बाह्य शुद्धिको चित्तका अशोधक कहते हैं। जेकरहे अधिकारी जन लक्षवारभी बाह्य शौचकरें तबभी (सोचि) पवित्रता अर्थात् चित्तकी शुद्धि (न होवई) नहीं होती इस बातको तू (सोचै) भली प्रकार से विचार कर, भाव यह बाह्य शुद्धि किंचित् काल होनेवाली शरीरकी शुद्धि का हेतुहै अन्तर शुद्धि के हेतु अर्थशुद्धि और मैत्री आदिकहैं॥

तथाहि॥ सर्वेषामेवशौचानामर्थशौचंपरंस्मृतम्॥ योऽर्थेशुचिर्हिसशुचिर्नमृद्वारिशुचिःशुचिः॥ मनु० अ० ५ श्लोक १०६

अ०॥ सर्व शौचके मध्य में अर्थशौच (पर) श्रेष्ठ है जो पुरुष अर्थ में शुद्ध है सोई (शुचि) पवित्रहै और जो मृत्तिका जलसे शुचिहै सो (शुचि) पवित्र नहीं जानना चाहिये, अर्थशुद्धि यहहै जोकि अनर्थ से पराये

धन ग्रहणकी इच्छा न होनी इस अर्थशुद्धि युक्तको ही पवित्र मानना योग्यहै और जो केवल मृत्तिका जल से अपनेको पवित्र मानता है सो अपवित्र है ॥ और (मनः सत्येनशुध्यति) यह भी मनुवचनहै अर्थ सत्यसंभाषण से मन शुद्ध होताहै ॥

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् । योग० पाद । १ । सू० ३३ ॥

अ० ॥ सुखी पुरुषोंमें मैत्रीकी भावना दुःखी पुरुषों में करुणा भावना पुण्यात्मा पुरुषोंमें मुदिता भावना अपुण्यात्मा अर्थात् पापी पुरुषोंमें उपेक्षा भावना से (चित्त-प्रसादन) चित्तकी स्वच्छता होती है ॥ भाव जब सुखियों में मैत्री भावना करेगा तब ईर्ष्याकी निवृत्ति से चित्त प्रसन्न होवेगा क्योंकि जैसे अपने पुत्र मित्रके राज्यादि प्राप्तहोने से ईर्ष्या नहीं होती तैसे सर्व सुखियों में मैत्री भावना से चित्तमें से ईर्ष्या दूर होजायगी । ऐसेही जब दुःखियों में करुणा भावना करेगा तब उनकी अपेक्षा से अपने में सुखी होनेका अहंभाव और उनके अपकार करने की इच्छा निवृत्तहोने से चित्त मल की

निवृत्ति होवेगी और पुण्यवान् पुरुषों में जब (मुदिता) हर्षभावना करेगा तब परउत्कर्ष की असहनशीलतारूप जो असूयामल है सो निवृत्त होवेगी। और अपुण्यात्मा पुरुषोंमें उपेक्षा भावना करने से उनको देखकर जो क्रोधरूप मलहै सो दूर होता है। इस प्रकारके धर्मों से चित्त शुद्धहोता है॥ इस पंक्तिमें निष्काम भगवतभक्ति न्याय से द्रव्यका धर्म के अर्थ इकट्ठा करना मैत्री आदिक का रखना इससे आदि और भी जो श्रेष्ठधर्म हैं तिनमें पवित्रता की कारणताको वाह्यशौचको पवित्रता हेतु निषेध से दिखलाया है॥ भगवतभक्ति शुद्धिका हेतु गुरुवचन से निर्णीत है॥

तथाहि॥ हरिकीभक्तिकरोमनमीत। निर्मलहोयतुमारोचीत॥ चुप्पैचुप्पनहोवईजेलायरहालिवतार। इस पंक्तिमें शमदम आदिक साधनोंका उपदेश करतेहुए मनके निरोधसे विना दांभिक समाधिका निषेध करते हैं॥ जेकर बक विडालवत् (लिव) वृत्तिके (तार) तैलधारावत्प्रवाहको (लायरहा) लगाय रखिये तब भी मनके निरोध से विना (चुप्पै) वागादि इन्द्रियके निरोधसे (चुप्प) समाधि (नहोवई) नहीं होती॥ भाव यह है मनमें शमके होनेसे दम शीघ्र होता

है और मनमें शमके न होने से ऊपर से इन्द्रियनिरोध अकिंचित्करहै यह वार्त्ता भगवद्गीता में लिखी है ॥

तथाहि ॥ कर्म्मेन्द्रियाणिसंयम्ययआस्तेमनसास्मरन् । इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारःसउच्यते ६ यस्त्विन्द्रियाणिमनसानियम्यारभतेऽर्जुन । कर्म्मेन्द्रियैःकर्मयोगमसक्तःसविशिष्यते ७ ॥ गीता । अध्याय ३ ॥

अ० ॥ जो पुरुष संपूर्ण कर्मेन्द्रियोंको नियमन करके मनकर (इन्द्रियार्थ) विषयोंको स्मरण करताही (आस्ते) ध्यान लगाकर बैठताहै सो पुरुष मूर्ख मिथ्याचारवाला कहाजाता है ६ और जो मनकर इन्द्रिय निरोध करेहुए कर्मेन्द्रियों करके भगवन्नाम उच्चारण आदिक कर्मयोग को फलाशा त्याग सहित हुआ आरम्भ करताहै सो बहुत विशेष है अर्थात् श्रेष्ठहै । भाव इन श्लोकोंका यह है अजितमन ऊपरसे जितेन्द्रिय) दम्भी है और जितमन शुभकर्म्म करता श्रेष्ठहै इसकाही गुरुजी उपदेश करते हुए वकवृत्ति और विडालवृत्तिका निषेध करतेहैं ॥ जैसे बगला मत्स्य के ग्रहण करने वास्ते और

बिल्ला मूसेके ग्रहण करने वास्ते ध्यान लगाय बैठते हैं परन्तु सो दोनो ध्यानी नहीं कहेजाते इसीप्रकार केवल ऊपरसे इन्द्रिय निरोध करनेवाला ध्यानी नहीं है॥ अब केवल भगवद्धर्मों में प्रवृत्तिका कारण जो तृष्णा का त्याग तिसका उपदेश करते हैं॥ **भुखियाभुखनउत्तरीजेबंनापुरीयाभार॥** तृष्णावान् पुरुषोंकी तृष्णा कभी नहीं दूरहोती जेकर इन्द्रादिक देवनकी पुरियोंके (भार) समूहभी इकट्ठे करके भोगने वास्ते दे देवें। भाव संतोषते विना अन्य पदार्थ तृप्तिका हेतु नहीं है २७ यह वार्त्ता योगसूत्र में प्रसिद्धहै॥

तथाहि॥ सन्तोषादनुत्तमःसुखलाभः॥ योग॥ पाद २। सू० ४२॥

अ०॥ तृष्णाके त्यागका नाम संतोष है तिससे (अनुत्तम) सर्वोत्तम सुखका लाभ होताहै॥ यह वार्त्ता व्यासजी ने एक श्लोक में कही है॥

(श्लोक) यच्चकामसुखंलोकेयच्चादिव्यं महत्सुखम्। तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशींकलामिति॥

अ०॥ जो इस लोकमें (कामसुख) विषयभोग-

जन्य आनन्द है और जो देवलोकमें बहुत आनन्दहै। यह दोनों प्रकार के सुख तृष्णात्यागजन्य आनन्द की सोलहवीं कलाको भी (नार्हतः) योग्य नहीं हैं। इस वास्ते तृष्णा त्यागके भगवद्धर्मों का सेवन करना योग्य है। भगवद्धर्म यह हैं॥

(श्लोक) तस्माद्भारतसर्वात्माभगवान् हरिरीश्वरः। श्रोतव्यःकीर्तितव्यश्च स्मर्त्तव्य श्चेच्छताऽभयम्(भागवत)स्कन्ध२।अ०२॥

अ०॥ जिस कारण से सर्वही संसार भय सहित है तिससे हे राजन् अभय की इच्छावाले पुरुष करके भगवान् हरि ईश्वरही श्रवण कीर्तन स्मरण करने को योग्य है॥ इस श्लोक में परमेश्वर का श्रवण और कीर्तन तथा स्मरण यह भगवद्धर्म कथन करे हैं॥ प्रकरण में वार्ता यह सिद्धहुई जो कि तृष्णा त्याग अधिकारी को अवश्य कर्तव्य है क्योंकि तृष्णाके बंध में पड़ाही जीव संसार में घटीयंत्रवत् भ्रमण करता है॥ इस प्रकार विषय तृष्णा त्यागका उपदेश करके अब शास्त्र वासना त्याग को बोधन करते हुए शास्त्रीय चतुराई को परलोकमें निष्फलता का उपदेश करते हैं॥सहसासियाणपा ल

खहोहितइक न चलैनाल ॥ (सिआणपा) जो शास्त्रीय पदार्थ विचारजन्य बुद्धिवृत्तियां हैं सो जेकर सहस्र तथा लक्षों होवें तब भी परलोकमें एकभी साथ नहीं जाती अर्थात् तहां सहायक नहीं होती इस वास्ते मुमुक्षु शास्त्रीय चतुराई के संपादनमें अत्यन्त यत्न न करे किन्तु (मन समभावन के वास्ते) कुछेक अध्यात्मविद्या का उपयोगी शास्त्र विचार करे अधिक तृष्णा का त्यागकरे॥

पुराणंभारतं वेदधर्मशास्त्राणि यानि च। आयुषःक्षपणायैवधर्मतश्चेन्नचाचरेत १ पुत्रदारादिसंसारः पुंसांसंमूढचेतसाम्। विदुषां शास्त्रसम्भारः सद्योगाभ्यासविघ्नकृत् २ इदं ज्ञेयमिदंज्ञेयं यःसर्वंज्ञातुमिच्छति। अपिवर्षशतेनापिशास्त्रान्तंनाधिगच्छति ३ विज्ञायाक्षरतन्मात्रं जीवितंचापिसंचलम्। विहाय शास्त्रजालानिपारलौकिकमाचरेत् ४ पाण्डतोपिहिमूर्खोऽसौशक्तियुक्तोऽप्यशक्तिकः। यःसंसारान्नचात्मानंसमुत्तारयितुंक्षमः ५ अग्निपुराण॥

अ०॥ यह पांच श्लोक अग्निपुराणमें लिखे हैं। शास्त्र वासना को त्याज्यता बोधन करते हैं। पुराण महाभारत वेद धर्मशास्त्र इनका जो पठन पाठनहै सो केवल आयुके क्षय वास्ते है और जेकर धर्म से विचार करें तब इनके अध्ययन अध्यापन को न आचरण करे १ क्योंकि पुत्र दारादि संसार मूढ़बुद्धि पुरुषों को और विद्वान् पुरुषों को शास्त्र के समूह श्रेष्ठ योगाभ्यास के विघ्न करनेवाले हैं २ यह शास्त्र मुझको ज्ञातव्यहै और यह भी ज्ञातव्यहै जो पुरुष इस प्रकार की तृष्णा से सर्व को जानने की इच्छा करताहै सो पुरुष शतवर्ष करके भी शास्त्रके अन्तको नहीं प्राप्तहोता ३ इस वास्ते केवल अविनाशी वस्तुको जानकर और अपने जीवनको अत्यन्त चञ्चल जानकर शास्त्ररूप जाल को त्याग के परलोक के साधन भगवद्धर्मों को सेवन करे ४ जो पुरुष अपने आत्मा को संसार से उद्धार करने को समर्थ नहीं सो यदि पंडित है तबभी मूर्ख जानना चाहिये और जेकर सो पुरुष बहुतसी राजपालनादि शक्ति सहित है तबभी अशक्त अर्थात् असमर्थही समझना योग्यहै ५॥

प्रश्न॥ जेकर परलोक में कोई चतुराई साथ नहीं जाती तब साथ जानेवाली वस्तु क्याहै?॥ उत्तर॥

(आप्तवाक्य) अणुभ्यश्चमहद्भ्यश्चशास्त्रेभ्यःकुशलोनरः। सर्वतःसारमादद्यात् पुष्पेभ्यइवषट्पदः ॥ (सांख्यशास्त्र) अ० ४ ॥

अ० ॥ कुशल पुरुष छोटे बड़े शास्त्रों से सर्वप्रकार से सार वस्तुको ग्रहणकरे जैसे (षट्पद) भ्रमर पुष्पों से सारभूत रसगन्ध को ग्रहण करताहै। सो सारभूत सेवन करा हुआ परलोकमें सहायक होताहै ॥ प्रश्न ॥ जब ऐसी बातहै तब सारभूतका उपदेश करो ? ॥ उत्तर ॥ इसी प्रकारका प्रश्नकरके सारभूत वस्तुका उपदेश वेदमें कराहै।

तथाहि ॥ प्राजापत्योहारुणिः सुपर्णेयः प्रजापतिंपितरमुपससारकिंभगवन्तः परमंवदन्तीतितस्मैप्रोवाच सत्येनवायुरावातिसत्येनादित्योरोचतेदिविसत्यंवाचः प्रतिष्ठासत्ये सर्वंप्रतिष्ठितंतस्मात्सत्यंपरमंवदन्ति ॥ तैत्तरीयारण्यक । अ० १० । अनुवाक ६३ ॥

अ० (ह) (स्फुट) आरुणिनामक ऋषि (प्राजापत्य) प्रजापतिका पुत्र (सुपर्णेय) सुपर्णी के पेटसे पैदाहुआ अपने पिता प्रजापति के समीप प्राप्त होकर प्रश्न करता

भया हे भगवन् आप परम सर्वोत्तम वस्तु क्या कथन करते हो तिसके प्रति (प्रोवाच) कहते भये सत्यधर्म करके वायुदेवता अपने ऐश्वर्य्य में वर्तमानही (आवाति) जगत् को पवित्र करताहै इसीप्रकार सत्यके प्रभाव से आदित्यभी आकाश में (रोचते) प्रकाशमानहै और सत्यही वाणी की प्रतिष्ठारूप है भाव सत्यसंभाषण की प्रतिज्ञावाले की वाणी सत्य होजाती है जो कुछ वर शाप आदिक वाणी बोलताहै सो सत्यहोती है। सत्य दोप्रकार काहै एकतो सत्यवचनरूप और दूसरा ब्रह्मरूप अविनाशी वस्तु प्रथम जो सत्यवचनहै सो कहा अब ब्रह्मरूप सत्यका उपदेश करते हैं (सत्येसर्वप्रतिष्ठितं) सत्यमेंही सर्व प्रपञ्चकी स्थिति है इस वास्ते सत्यही सर्वोत्तम वस्तु है, इस तात्पर्य्य से जपजी में प्रश्नहै॥ **किवसचियारा होईयेकिवकूड़ैतुटैपालि॥ हुकमिरजाईचलणानानकलिखियानालि** १ हे भगवन् श्रीगुरो पूर्वउक्त दोनों प्रकारके सत्य को कथन करके (सचियारा) सत्यवादी कैसेहो वीये यह कहो (उत्तर) जप कूड़ मिथ्याभाषणका जो संस्काररूप पड़दा है सो टूटेगा तब सत्यवादी कहावेगा, भाव जीव जन्मजन्मान्तरों से व्यव-

हार में मिथ्या भाषण करतारहा है और वास्तव तत्त्वकी भूलसे असत्यरूप देहादिकोंको सत्य आत्मा रूप जानता रहाहै इससे संस्काररूप पड़दा दृढ़होरहा है तिसके दूर होनेसे सत्यवादी होवेगा (प्रश्न कि व कूडै टुटैपालि) जब कूड़के पड़दे टूटे विना सत्यवादी नहींहोता तब कूड़का पड़दाही कैसे टुटता है यह प्रश्नकर्त्ता है? उत्तर (हुकमिरजाई चलणा) रजाई परमेश्वरका जो हुक्म आज्ञा रूप वचन है तिसके अनुसार प्रवृत्त होनेसे कूड़की मलरूप तानी टूटजाती है जेकर जिज्ञासु फिर प्रश्नकरे जोकि सो परमेश्वरका हुकम रूप वचन कौन है तब गुरुजी कहते हैं हमने साथनेडेही सति नामादि मन्त्र तथा वेद वचन रूप आज्ञा लिखी है तिसके अनुकूल अपने शुभसंस्कार दृढ़करके कूड़के संस्कार रूप मलको दूरकर सत्यवादी होवो तब लोक परलोक में सत्य वचन और सत्य वस्तुका ज्ञान तुमारे साथ चलेगा १ प्रश्न ॥ हे भगवन् जिसका (हुकम) आज्ञा रूप वचन आपने वेदादि सतिनाम आदिक आत्मा के यथावत् स्वरूप के बोधक और जीवको कर्तव्य साधन के बोधक लिखे हैं तिसका इदंकरके स्वरूप दिखलावो जिसको जानकर मैं (सचियार) सत्यवादी होजावों

उत्तर ॥ हुकमीहोवनिआकारहुकमनकहिया जाई ॥ हे शिष्य उस आज्ञावाले परमेश्वरसे केवल भूतादि तथा हिरण्यगर्भ विराटादिक आकार होते हैं और सो (हुकमी) वेदादि हुक्मवाला हुक्मसे इदंकरके नहीं कहाजाता तात्पर्य्य यह है प्रपंच के अध्यारोप और अपवादसे जनाया जाताहै अंगुली निर्देशसे नहीं कहते। अव इस अर्थ के वोधक वेदको लिखते हैं जिसते गुरुजीका भाव स्पष्ट प्रतीत होवे ॥ यत्तदद्रश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रंतदपाणिपादम् । नित्यंविभुंसर्वगतंसुसूक्ष्मंतदव्ययंयद्भूतयोनिं परिपश्यन्तिधीराः ६ ॥

अर्थ ॥ यद्भूतयोनिं धीराः परिपश्यन्ति तदव्ययम् यह अन्वयहै जिस परमतत्त्व को धीर विवेकी जन भूतोंका (योनि) उपादान कारण देखते हैं (तदव्ययम्) सो सर्व विकारसे रहित है अत्यन्त सूक्ष्महै सर्व व्यापक है और (नित्यंविभुं) अविनाशी हुआही (विविधं ब्रह्मादि स्थावरान्त प्राणिभेदैर्भवतीति विभुं) ब्रह्मादि प्राणिभेद करके नानात्व भावको प्राप्त होताहै इस से विभु है और हस्त पाद रहित है चक्षुःश्रोत्र वर्जित है

(वर्ण्यंत इति वर्णा द्रव्यधर्माः स्थूलत्वादयः शुक्लत्वा दयोवा अविद्यमाना यस्य तदवर्णम्) जो वर्णन करे जाते हैं स्थूलत्व शुक्लत्व आदिक द्रव्य धर्म सो हैं अवि-द्यमान जिस अक्षर में सो अवर्ण है और (अगोत्र) मूलभूत वंश रहितहै (अग्राह्य) कर्मेन्द्रियकरके ग्रहणनहीं कराजाता (अदृश्य) ज्ञानेन्द्रियों से नहीं जानाजाता (यत्तद्) सर्व प्राणि मात्रमें आत्मरूप से प्रसिद्ध है इदं-ताका विषय नहीं। इस श्रुतिमें आरोपित दृश्यत्वादिकों के निषेध द्वारा अक्षरका स्वरूप बोधन करा। अब उस को जो भूतोंकी कारणता कही है तिस कारणता का निरूपण अनेक दृष्टान्तोंसे करते हैं॥

यथोर्णनाभिःसृजतेगृह्णतेचयथापृथिव्या मोषधयः संभवन्ति। यथासतःपुरुषात्केश लोमानितथाऽक्षरात्संभवतीहविश्वम् ७ मु ण्डकउपनिषद् खण्ड १॥

अ० ॥ (ब्रह्म न कारणं सहाय शून्यत्वात् कुलालमा-त्रवत्) इसका अर्थयहहै ब्रह्म जगत्का कारण नहीं होस-कता क्योंकि सहायक रहित होनेसे जो सहायक रहित होताहै सो किसीका कारण नहीं होता जैसे दण्ड चक्र आदिक सहायकोंसेरहित कुलाल किसीका कारण नहीं

इसीप्रकार ब्रह्मभी सर्व सहायक वर्जित है इससे कारण नहीं यह किसीकी शङ्काहै तिसकी निवृत्ति वास्ते कहते हैं (यथोर्णनाभिःसृजतेगृह्णतेच) जैसे ऊर्णनाभिजंतु ऊर्णऊन है नाभि पेटमें जिसके अर्थात् मकड़ी अपने आपही तंतुवोंको फैलाकर (गृह्णते) ग्रहण करती है और उसका कोई दूसरा सहायक नहीं इसीप्रकार ब्रह्म अपने आप जगत्को रचकर उपसंहार करता है (ब्रह्म जगतो नोपादानं तदभिन्नत्वात् स्वरूपवत्) ब्रह्म जगत् का उपादान नहीं है क्योंकि जगत्को ब्रह्म से अभिन्न होनेसे जैसे अपने स्वरूपका आप उपादान नहीं होता इसीप्रकार जगत् ब्रह्मका स्वरूपहै इस वास्ते ब्रह्म जगत् का उपादान कारण नहीं होसकता। इस शङ्काकी निवृत्ति के वास्ते कहते हैं (यथापृथिव्यामोषधयःसम्भवन्ति) जैसे पृथिवीका स्वरूपही ओषधि समूह पृथिवी से होती हैं तैसे ब्रह्मका स्वरूपही जगत् ब्रह्मसे होता है भाव जैसे अमृत रस तीक्ष्ण रस आदिक किंचित् भेदको लेकर पृथिवी ओषधि आदिकों का कारण कार्य भाव है इसीप्रकार ब्रह्मका जगत् से आरोपित नाम रूपरहितत्व और अनारोपित नाम रूप सहितत्व रूप धर्म भेदसे भेद है। (जगन्नब्रह्मोपादानकं

तद्विलक्षणत्वात् यद्यद्विलक्षणं तत्तदुपादानकं न यथा घ-टो न तंतूपादानकः) जगत् ब्रह्म उपादान कारणवाला नहीं ब्रह्मसे विलक्षण होने से जो वस्तु जिस कारण से विलक्षण होतीहै सो वस्तु तिस कारणवाली नहीं जैसे घटतंतु से विलक्षण है सो घट वस्तु तंतु कारणवाली नहीं इसी प्रकार जगत् वस्तु ब्रह्मसे जड़ दुःखरूप असत् होने से विलक्षण है सो ब्रह्म उपादान कारणवाली नहीं है। इस शंकाके निरास वास्ते कहते हैं (यथासतः पुरुषात्के शलोमानि) जैसे जीवत चेतन पुरुष से केश और लोमादि होतेहैं तथा अक्षर परमात्मा से इस जगत् में वर्त्तमान दृष्टांतोंवत् विश्व उत्पन्न होती है, तात्पर्य यह है जैसे केश लोम प्राण रहित रुधिर वर्जित भी प्राण स-हित रुधिर युक्त चेतन पुरुष से होते हैं इसीप्रकार परमा-त्मासे विलक्षणभी विश्वहोती है। इतने प्रबंध से (हुक-मीहोवनि आकार) इस वाक्य का अर्थ श्रुतिसे निर्णी-त होगया ॥ और (हुकमनकहियाजाई) इसका भी भाव कहा क्योंकि ब्रह्म आरोपित दृश्यत्वादिकोंके निषेध सेही जनाया जाता है इदंता करके उसका वेदरूप हुकमसे भी उपदेश नहीं होता ॥ प्रश्न ॥ जेकर परमेश्वर रूप हुकमी से सर्वभूत और तिनके कार्य पिंड ब्रह्मांडको उ-

त्पत्ति होती है तब तिस पिंड ब्रह्मांडके विधारक जीव यदि परमात्मा से सर्वथा पृथक् हैं तब अद्वैत सिद्धांत है यह कथन असंगत होवेगा इस शंकाके दूरकरनेके वास्ते कहते हैं ॥ **हुकमीहोवनिजीयहुकमिमिलैवडि़याई** ॥जो पिंड ब्रह्मांड के धारणकरनेवाले जीव हैं सो सम्पूर्ण(हुकमी) परमात्माही (होवनि) हैं क्योंकि उपाधि विशिष्ट परमात्मा जीवनाम से कहाजाता है प्रश्न जब परमात्माही उपाधिविशिष्ट होकर जीव होगया तब तिस की पूरणता स्वतःसिद्ध ब्रह्मरूपता दूरहोगई और एक रसताका भी अभाव होनाचाहिये इस शंकाकी निवृत्ति वास्ते कहते हैं (हुकमिमिलैवड़ियाई) अर्थ यहहै परमात्माके हुक्म आज्ञारूप धर्म के अनुष्ठान जन्य ज्ञान से उस जीव रूप उपाधिविशिष्ट वस्तुको (वड़ियाई) ब्रह्मभावकी प्राप्ति मिलती है। तात्पर्य्य यह है जब उपाधि के बल से ब्रह्म स्वरूप की विस्मृति होकर सुखी दुःखी संसारी अनाप्तकाम परिच्छिन्नतादिक मानता है तब फिर श्रुति प्रति बोधित ज्ञानसे पूर्ववत् पूरणता जानकर स्वतः सिद्ध ब्रह्म भावरूप वड़ियाई उस जीवको मिलजाती है इस कहे अर्थ की पुष्टीवास्ते श्रुति वचन लिखकर उनका व्याख्यान करते हैं॥

तथाहि ॥ सेयंदेवतैक्षतहन्ताहमिमास्तिस्रोदेवताअनेनजीवेनात्मनाऽनुप्रविश्यनामरूपेऽव्याकरवाणीति ॥ छान्दोग्यउपनिषद् । अ० ६ खण्ड ३ ॥

अ० ॥ जो पूर्वसत् एक अद्वितीय देवता कहा है सो यह देवता (ऐक्षत) देखता भया (हन्त) इस समय में (अहम्) मैं अपने आपही इन तीन तेज जल पृथिवी रूप देवताओं को इस जीवरूप अपने आत्मा करके (अनुप्रविश्य) रचना से पीछे प्रवेश कर नाम रूपको (व्याकरवाणि) प्रकट करताहूं ॥ तात्पर्य यह है जब परमेश्वर ने सृष्टि करी तब यह विचारा इस सृष्टि के विधारक अपने उपाधिविशिष्ट जीव रूप से इस प्रपञ्च का धारण करना उचित हैं ऐसे सङ्कल्प कर सर्व प्रपञ्च में नाम रूप का प्रादुर्भाव किया। इस श्रुति में तीन भूत तेज जल पृथिवी रूप लिखे हैं आकाश वायु भी जान लेने ॥ इस श्रुतिमें परमात्माही जीवरूप हुआ यह सिद्ध भया ॥ इस स्थान में घट में आकाश के प्रवेशवत् प्रवेश है क्यों कि जब घटकी उत्पत्ति होवेगी तब आकाश को परिपूरण होनेसे अवश्य तिसमें आकाश प्रतीत होवेगा

इसीप्रकार जब कार्य्यरूप अन्तःकरण उपाधि होवेगी तब तिसमें परमात्मा अवश्य प्रतीत होवेगा जो उपाधि के मध्य स्थित होकर परमात्मा का भान है सोई जीव भाव है सो जीवभाव जैसे कुन्ती पुत्र करण में राधा पुत्रपना भ्रमसे प्रतीत हुआ था तैसे स्वतःसिद्ध ब्रह्म-भावकी विस्मृति से जीवभाव है। उपदेशजन्य ज्ञान से भ्रम दूरहुये स्वतःसिद्ध ब्रह्मभाव की प्राप्तिवत् प्राप्ति होती है॥

तदाहुर्यद्ब्रह्मविद्ययासर्वंभविष्यन्तो मनुष्यामन्यन्ते किमुतद्ब्रह्माऽवेद्यस्मात्तत्सर्वमभवदिति ९ ब्रह्मवाइदमग्रआसीत्तदात्मानमेवावेदहं ब्रह्मास्मीतितस्मात्तत्सर्वमभवत् तद्योयो देवानांप्रत्यबुध्यतसएवतदभवत्तथर्षीणांतथामनुष्याणां तद्धैतत्पश्यन्नृषिर्वामदेवः प्रतिपेदेऽहंमनुरभवंसूर्यश्चेति तादिदमप्येतर्हियएवं वेदाऽहंब्रह्मास्मीति सइदंसर्वंभवति॥ बृहदारण्यक० उ० अ० २। ब्राह्मण० ४॥

अ०॥ इस श्रुतिका भावार्थ यह है। मुमुक्षु तथा

मुक्तजन आपस में कहते हैं जिस ब्रह्मविद्या करके ऐसा मानते हैं मनुष्यलोक जो कि हम तिस ब्रह्मविद्या से सर्वात्मभाव को प्राप्त होवेंगे सो ब्रह्मविद्या का क्या स्वरूप है जिससे सर्वरूप होताहै अब विद्याके निर्णय वास्ते एक विचार करते हैं जो कि यह जीव चेतन उपाधिकी उत्पत्ति से प्रथम ब्रह्मरूप होताभया सो अब मूल निवर्त्तक विचार से अपने आत्मा को जानता भया जो कि मैं स्वतः ब्रह्मरूपहूं इस प्रकार के दृढ़ बोध से सर्वात्मभाव को प्राप्त होता भया जिस जिसने देवता ऋषि मनुष्यों के मध्य ब्रह्मको जाना सो सो सर्वात्म भाव को प्राप्त हुये इसीवास्ते वामदेव नामक ऋषि ब्रह्मको देखकर सर्वात्म भाव को प्राप्त हुआ अनुभव को प्रगट करता है मैंहीं मनु सूर्य आदिक भाव को प्राप्त होता भया अब इस काल में भी जो अपने को ब्रह्मरूप निश्चय करके जानेगा सो भी सर्वात्मभावको प्राप्त होवेगा। इस श्रुति से यह निर्णीत होगया जो कि परमात्मा के हुकुमरूप वेद विचारसे सर्वात्मभाव की प्राप्तिरूप वडियाई की प्राप्ति होती है॥ जब पूर्व उक्तप्रकार से ब्रह्मही जीवभाव को प्राप्त हुआ तब जिन जीवों ने परमात्मा का विचार न करा किन्तु देवताओं की कर्म सहित उपासना करी

तिससे उत्तम भाव को प्राप्तहुये और जिन्हों ने कुसङ्ग के प्रभाव से निषिद्ध कर्म करे सो नीच भावको प्राप्तहुये यह वार्त्ता कहते हैं **हुकमीउत्तमुनीचुहुकमिलि खदुःखसुखपाईयहि।** (हुकमी) जो परमात्माहै सोही जीव भावसे उत्तम कर्म के प्रभाव से उत्तम और नीच कर्म के प्रभावसे नीचहोताहै सो दोनों (हुकमि) वेद में लिखे दुःख तथा सुखपाते हैं॥ **पुण्योवैपुण्ये नकर्म्मणाभवतिपापःपापेन)** बृह० उ० अ० ५ ब्रा० २ ॥ अं०॥ शुभ कर्म करके शुभ योनिकी प्राप्ति होती है और पापकर्म करके (पाप) नीचभावको प्राप्तहोता है॥ **इकनाहुकमीवखसीस इकहुकमीसदाभवाईयहि** ॥ (इकना) किसी एक निष्काम धर्म के करनेवालों को (हुकमी) परमेश्वर से गुरुमिलाप द्वारा ज्ञान की (वखसीस) दात मिलती है और सकाम कर्म करनेवालों को परमेश्वर सदा जन्म जन्मान्तर में भ्रमण कराताहै) इस स्थान में तात्पर्य्य यहहै यदि किसी अधिकारी को उत्तम योनि तथा सुखकी इच्छाहोवे तब उत्तम कर्म करे यदि उत्तम भाव सुख से भी वैराग्य होवे तब हरिभक्ति निष्काम कर्मकरे जिससे ज्ञानकी वखसीस नाम दात प्राप्तहोवे

दुःख प्राप्ति और संसार में भ्रमणके कारण निषिद्ध और सकाम कर्म्म को त्यागदेवे॥

हुकमैअंदरिसभुकोबाहरिहुकमुनकोय॥
नानकहुकमैजेबुझैतहउमैकहैनकोय २॥

हुकम नाम परमेश्वरकी शासनाका है यांते जो कुछ देवता मनुष्य आदिक हैं सो संपूरण परमात्माके (हुकम) प्रशासना के (अन्दरि) अन्तर्वर्त्ती हैं अर्थात् परमेश्वर की शासनामें बँधेहुये अपने अपने कार्य्य में वर्त्तमानहैं तिसकी प्रशासना से (बाहरि) बाह्य कोई नहीं श्रीगुरु जी कहते हैं जेकर परमेश्वरकी शासना में संपूरण वस्तु मात्र को (बुझै) जानैगा तब (हउमै) अहंभाव को अर्थात् मैं चतुर पंडित ज्ञानी बलवान् अमुक कार्य्य को करसक्ताहूं इस अहंकार को कोई भी न (कहै) करे अ-थवा वाणीसे कथननहीं करेगा। अब इस स्थानमें एक श्रुतिवचन लिखते हैं जिससे इन दोनों पंक्तिका भाव स्पष्टहोजावे॥ तथाहि॥

एतस्यवाअक्षरस्यप्रशासनेगार्गि सूर्य्या चन्द्रमसौविधृतौतिष्ठत एतस्यवाअक्षरस्य प्रशासनेगार्गिद्यावापृथिव्यौविधृतेतिष्ठत ए

तस्यवाअक्षरस्यप्रशासनेगार्गि निमेषामुहूर्त्ताअहोरात्राण्यर्धमासामासाऋतवः संवत्सरा इति विधृतास्तिष्ठन्त्येतस्य वाअक्षरस्यप्रशासनेगार्गिप्राच्योऽन्यानद्यःस्पन्दन्तेश्वेतेतेभ्यःपर्वतेभ्यःप्रतीच्योऽन्यायांयांचादिशमन्वे तस्यवाअक्षरस्यप्रशासनेगार्गिदद्तोमनुष्याःप्रशंसन्ति यजमानंदेवादर्वीपितरोऽन्वायत्ताः। बृह० उपनि० अ० ३ ब्रा० ८। काण्डी ९॥

अ०॥ यह श्रुति बृहदारण्यक उपनिषद्की है तहां यह प्रसंगहै राजा जनकने जब यह विचार किया जो कि ब्रह्मविद्या किसी उत्तम विद्वान् ब्रह्मके अनुभव करने वाले से सुनना चाहिये तव देशदेशान्तरों से विद्वान् लोकोंको यज्ञके समागम में बुलवायकर सभाकरी उस सभामें एक व चक्रुऋषिकी पुत्री गार्गी ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठथी सो भी आई याज्ञवल्क्यऋषि से प्रश्नकरे उसने उत्तरकहे तिस स्थानकी यह श्रुतिहै तहां अक्षर का निरूपण कराहै जैसे पूर्व इसीग्रन्थ में मुण्डकश्रुति लिखकर दृश्यत्वादिकों के निषेधद्वारा अक्षरका उपदेश कराहै तैसे

बृहदारण्यक श्रुति में स्थूलादि द्रव्यधर्मों के निषेधद्वारा अक्षर परमात्माका उपदेश करके याज्ञवल्क्य ऋषि कहते हैं हे गार्गि इस अक्षर परमात्माकी शासना में सूर्य्य और चन्द्र जगत् के प्रकाश करने वास्ते नियुक्त करके धारण करेहुये अपने कार्य्य करने में तत्पर स्थितहैं और स्वर्गलोक तथा पृथिवीलोक के अधिष्ठात्र देवता परमेश्वरकी शासना में स्थितहैं और निमेषकाल मुहूर्त्तकाल दिन रात्रिकाल अर्द्ध मासकाल मासकाल शिशिर १ वसंत २ ग्रीष्म ३ वर्षा ४ शरद् ५ हेमन्त ६ यह षट् ऋतुकाल वर्षकाल इन सर्व कालावयवों के अधिष्ठात्र देवता परमात्मा की शासनामें धारण करे हुए अपने अपने कार्य्य में स्थितहैं इसीप्रकार (अन्या) भिन्न भिन्न पूर्वदिशा को गमन करनेवाली गङ्गा आदिक नदी सो संपूरण परमात्मा की शासनामें धारण करी हुई श्वेत पर्वत हिमालय आदिकों से निकली हुई नियमसे गमन करती हैं और कोई कोई नदी सिन्धु आदिक परमात्मा की शासनामें धारण करी हुई नियम से दूसरी दूसरी पश्चिम आदिक दिशाको (अनु) पश्चात् प्रवृत्त हुई गमन करती हैं, और इस परमात्मा की शासनामें वर्त्तमान शास्त्र वेदके ज्ञाता श्रेष्ठ मनुष्य दान करनेवाले की

प्रशंसा करते हैं, यदि परमात्मा कर्म फलका दाताहै तव कुशल मनुष्य दाताकी स्तुति करते हैं, नहीं तो प्रत्यक्ष प्रमाण से तो दाताका केवल धन का क्षयही प्रतीत होता है प्रशंसा के योग्य नहीं इससे कुशल पुरुषोंकी प्रशंसाही परमात्मा में फल दातृत्वको जनाती है, और परमात्मा की शासना रूपी रस्सी में बांधेहुए देवता यजमान से दीनवत् चरु पुरोडाशादिक रूप आहुती का ग्रहण करते हैं, इसीप्रकार पितर भी दर्वी नामक होम में (अन्वायत्ता) संवन्धित होकर अपने द्रव्यको ग्रहण करते हैं, तात्पर्य्य यह है सो देवता तथा पितर अपने ऐश्वर्य्य में वर्त्तमान उपायान्तर से अपनी भूख प्यास दूर करने में समर्थ हुए भी परमात्मा की प्रशासना के अनुष्ठान वास्ते अवश्य यज्ञादिकों में जाते हैं, इसप्रकार अपने सहित संपूरण वस्तुको परमेश्वर के अधीन निश्चय करने से अहङ्कार सर्वथा नहीं रहता, यह गुरुजी का भाव है ॥ २ ॥ **प्रश्न।** परमात्माका संपूरण सूर्य्य चन्द्र आदिक जगत्को अपनी शासनामें रखना इतनाही वलहै ॥

उत्तर ॥ नतस्यकार्य्यंकरणञ्चविद्यते नतत्समश्चाभ्यधिकश्चदृश्यते । पराऽस्यशक्तिर्विविधैवश्रूयते स्वाभाविकीज्ञानबलक्रि

याच॥ श्वेताश्वतर उप० अ०६ मन्त्र ८॥
अ०॥ तिस परमेश्वर का कोई (कार्य्य) भौतिक शरीर और (करण) इन्द्रिय अन्तःकरण आदिक विद्यमान नहीं हैं और न तिसके समान तथा अधिक कोई वस्तु दीखती है उसकी शक्ति (परा) सर्वसे उत्कृष्ट अनंत प्रकारकी सुनीजातीहै सर्व जगत्की जननेवाली और सर्वको अपने बलसे बलयुक्तकरनेवाली और ज्ञानक्रिया तथा बलक्रिया यह दो प्रकारकी स्वाभाविकी है अर्थात् परमेश्वरका स्वरूप भूतहै जो अपने संबद्ध सर्व विषय का ज्ञानरूप है सो ज्ञान क्रियारूप है और जो कारण कार्य्य प्रपंचका नियम न नाम प्रेरणाशक्ति है सो बलक्रिया है सो दोनोंप्रकार की स्वाभाविक शक्ति है क्योंकि जैसे सूर्य्य इच्छा द्वेषसे रहितही कमलके विकाश का हेतुहोता है और कुमुदके मुद्रणका हेतु होता है तैसेही परमेश्वर रागद्वेषवर्जित असंग उदासीन स्वसंबद्धवस्तु के प्रकाश और प्रेरणाका हेतु है॥ इसप्रकारके परमात्माके बलको कौनपुरुष गायन करता है यह प्रश्न जिस किसी को विचारका तथा परमेश्वरकी कृपाका बलहोता है सो गायन करताहै यह उत्तर कहते हैं "गावैकोताण होवै किसै ताण॥

अ० ॥ इसपूर्व उक्तबलको सो गायन करता है (किसै) इसके आदिमें जिस इतने पदका अध्याहारकरना यांते जिस किसै ताण नाम बल होवै सोई परमात्माके बलको गायन करता है पूर्व यह कहा था जोकि निष्काम धर्म करनेवालियों को ज्ञानकी बखशीसरूप दातकी प्राप्ति होती है सो ज्ञानरूपदातको कौनगायनकरता है यहक-हते हैं ॥ गावैकोदातिजाणैनीसाण ॥ अ० ॥ गावै को दात इतना ग्रन्थका बोधकहै और जाणैनीसाण इ-तना उत्तरभाग है तब यह अर्थहुआ जोकि ५ सो पुरुष ज्ञानरूप दातका हेतु उपदेश करताहै जो (नीसाण) तात्पर्य्य निर्णायक चिह्नोंको जाणता है चिह्नलिंग यह दोनों शब्दपरस्पर एक अर्थ के बोधक हैं सो तात्पर्य के निर्णायक लिंगपद् हैं उपक्रमोपसंहार १ अभ्यास २ अपूर्वता ३ फल ४ अर्थवाद ५ उपपत्ति ६ । यहपद् लिंग एकएक अथवा दो मिलकर वा तीन मिलकर अथवा चार मिलकर वा पांच मिलकर अथवा षट्ही मिलकर तात्पर्य के निर्णायकहैं भाव यहहै यदि किसी प्रकरणमें केवल किसी अर्थका उपक्रमोपसंहाररूप एकही लिंग होवे तबभी उसप्रकरण प्रतिपाद्य अर्थका निश्चयकरा देता है जोकि इसअर्थ में इस प्रकरण का तात्पर्य है

क्योंकि (उपक्रम) प्रारंभमें और 'उपसंहार' समाप्ति में उसीकाकथन है इससे निश्चयहोता है इस अर्थ में इसप्रकरण का तात्पर्य है। इसी प्रकार यदि दो तीन आदिक मिलितलिंगहोवें अथवा समग्र षट्ही लिंग-होवें सो भी तात्पर्य के निश्चयकरानेवाले होते हैं ॥ अद्वैत ज्ञानके हेतु उपदेश में श्रीगुरुग्रंथसाहिब के उप-क्रमोपसंहारादिक स्पष्टहैं ॥ तथाहि ॥ १ ॐ सतिनाम इसमंगलरूप वाक्यका व्याख्यान आदि सचइत्यादि वचनमें तथा मूलमंत्र में अद्वैत परमात्मा का कथन है और समाप्ति में सब नानक ब्रह्मपसारो, इसकथनसे एक परमेश्वरकाही उपदेश है यांते उपक्रम और उपसंहारकी एकरूपता रूपलिङ्ग तात्पर्यका निर्णायक सिद्ध हुआ ॥ और केवल एक अद्वैतमेंही उपक्रमोपसंहारनहीं किन्तु सत्य संभाषण संतोषविचार और नामस्मरणरूप भक्ति और प्रेम भक्तिइनमेंभी उपक्रमोपसंहारहैं क्योंकि सतिनाम कहनेसे और जपकहनेसे सत्यवचन और संतोष तथा विचारभी सूचितकरेहैं क्योंकि विनासत्यवचनादि साधनों से तथा प्रेमभक्ति से विना जपध्यानमें प्रवृत्त नहीं होता इस से इनकाभी उपक्रमहै और उपसंहारमें तो इनका स्पष्टही कथनहै, तथाहि ॥

मुंदावणीमहल्ला ५ थालविचतिनवस्तुप यीओ सतसंतोष विचारो । अमृतनामठाकुरकापायओ जिसकासबस अधारो । जेको खावेजेकोभुंचेतिसकाहोयउधारो॥ इहवस्तु तजीनहिजाईनितनितरखउरधारो।तमसंसारचरनलगतरीयैसबनानकब्रह्मपसारो॥

अ०॥ श्रीगुरु अर्जुनदेवजीने ग्रंथकी समाप्तिमें यह कहाहै। थाल, श्रीगुरुग्रंथ में तीनवस्तु स्थापनकरी है॥ सत्यसंतोष विचार १ परमेश्वरकानाम अमृतरूप पायाहै जिसनाम से सर्वको आधार प्राप्तहोताहै अर्थात् सर्वसाधनोंकी पुष्टिकरता है जेकर कोई पुरुष उसको (खावै) जपे और उसके रसकोभोगे तिसका उद्धार होता है २ और इहजो ईश्वररूपवस्तु है सो त्यागीनहीं जाती सर्वथा हृदय में धारन करनेको योग्यहै इसकथन से भगवत् भक्तिरूप तीसरीवस्तु कही इस भक्तिजन्य ज्ञान से अज्ञान और अज्ञान कार्य संसारको परमात्मा गुरुके चरणों में लगकरतरीता है ज्ञानकास्वरूप श्रीगुरुजीकहते हैं सर्वही ब्रह्मका पसाराहै अर्थात् ब्रह्मसे भिन्न वस्तु कोई नहीं किन्तु सर्वात्मापरमेश्वर है॥ इसस्थान में इ-

तना और भी समझना जोकि सत्यवचन संतोषादिक नामस्मरण प्रेमभक्ति में किसीका विवादनहीं किन्तु सर्वेही गुरुग्रंथमें नामादिकोंका अभ्यास अतिप्रसिद्ध है और एक अद्वैत में विवादहै इस वास्ते अद्वैत में उपक्रमोपसंहार रूपलिङ्गका निर्णयकरा है अब अभ्यास का निर्णय करते हैं। एक वस्तु के वारंवार कथनका नाम अभ्यास है सो एक अद्वैतवस्तु में अभ्यास श्रीगुरुग्रंथ में प्रसिद्ध है तथाहि॥ **माझवारसलोकम० १। हमजेरजिमीदुनीयापीरामुसायकाराया। मेरवदबादसाहाअफजूखुदाया। एकतूंही एकतूंही १॥ अ०॥** प्रथम गुरुनानक देवजीकी शरण में कोई अधिकारी यवनों की भाषा के संस्कारवाला संसार अग्निसे संतप्तप्राप्तहुआ और प्रश्नकरा हे भगवन् मेरा वास्तव स्वरूप क्याहै तब गुरुजी (**एषतआत्मान्तर्याम्यमृतोऽतोऽन्यदार्त्तम्। बृह० उपनि० अ० ५ ब्रा० ७**)। इस श्रुतिसिद्ध उपदेश करतेहुए उसके संस्कार अनुसार उसी भाषा में कथन करते हैं॥ श्रुतिका भावार्थ यह है जोकि इस परमात्मा से भिन्नवस्तु विनाशी है केवल एक तत्त्व परमात्माही नित्य है सो

अन्तर्यामी (अमृत) विनाशरहित (ते) तेरा (एप) स्वानुभवसिद्ध आत्मा है, गुरुवचनका भावार्थ यह है (जिमी) पृथिवी (दुनिया) सृष्टि (पीरा) गुरुलोक (मुसायका) अधिकारिलोक (राया) मंडलेश्वर राजा लोक (वादसाह्ह) छत्रपति लोक (हम) यह संपूरण (जेर) नीचेको (मेरवद) चलेजानेवाले हैं, तात्पर्य सर्वेही विनाशी हैं (अफ़जू) स्थिरस्वभाव (खुदाया) परमेश्वर है सो एक अविनाशी वस्तु तेरा स्वरूप है॥

माझवारम० १। न देव दानवा नरा। न सिद्धसाधकाधरा। अस्तिएकदिगरकुई। एकतुईएकतुई २॥ अ०॥ देवता दानव नरसिद्ध (साधक) अधिकारीजन (धरा) पृथिवी यह संपूरण नहीं रहनेवाले (दिगरकुई) दूसरा कहां रहसक्ता है (अस्ति) विद्यमान एक अद्वैत वस्तुहै सो तेरास्वरूपहै २।

माझवारम० १।नदादेदिहंदआदमी। नसप्त जेरजिमी। अस्तिएकदिगरकुई। एकतुई एकतुई ३॥ अ०॥ (दादेदिहंद) दान करनेवाले (आदमी) मनुष्य और (जिमीसप्तजेर) जिनके पृथिवी के सप्तद्वीप हुकुम के नीचे हैं सो संपूरण न रहेंगे

एक अद्वैत सत्ताही रहेगी (दिगरकुई) दूसरा कौन रह-
नेवाला है सो एक वस्तु तेरारूप है ३ ॥ **माझवार
म० १। नसूरससिमंडलो। नसप्तदीपनज
लो। अन्नपउणथिरनकुई। एकतुईएकतुई ४॥**

अ०॥ सूर्य्य चन्द्र मंडल सप्तद्वीप और सप्तद्वीपका
विभागकरनेवाला समुद्र जल (अन्न) पृथिवीवायु यह
संपूरण स्थायी नहीं हैं एक परमेश्वरही स्थिर है जंबु १
शाक २ कुश ३ क्रौञ्च ४ शाल्मल ५ गोमेध ६ पुष्क-
र ७ यह सप्तद्वीप हैं ४॥

**माझवारम० १। नरिजकुदसतिआंकि
से। हमराएकआसनसे। असतिएकदिगर
कुई। एकतुई एकतुई ५॥**

अ० (आंकिसे) किसी अन्य के हाथ में रिजक
नहीं (हमरा) संपूरणकी (आस) इच्छा एक परमात्मा
में निवास करती है भावसर्वकी इच्छापूरक परमात्मा है
इस से योग क्षेम ईश्वर के आधीन जानकर परमार्थका
स्मरण करना उचित है। निश्चल वस्तु एक है (दिगर
कुई) दूसरा कहां है अर्थात् सर्वविनाशी है सो एकतत्त्व
तुमारा स्वरूप है। ५। **माझवारम० १। परदयेन**

गिराहजर। दरखतआबआसकर। दिहंदसुई। एकतुईएकतुई ६ ॥

अ० ॥ पूर्व उक्तअर्थ को पुष्टकरते हैं (परंदये) पक्षियों के (गिराह) गांठ में (जर) धन नहीं और (दरखत) वृक्ष स्थिरस्वभाववाले (आव) जलकी इच्छा करते हैं (दिहंद) देनेवाला सोई परमेश्वर है सो तेरा वास्तव स्वरूप है ६ ॥

माझवारम० १ । नानकलिलारलिखियासोय। मेट न सकै कोय। कलाधरैहिरै सुई। एकतुई एकतुई ७ ॥

अ० ॥ श्री गुरुनानक देवजी कहते हैं जो कुछ पूर्व जन्मकृत कर्मानुसार मस्तक में विधाताने लिखाहै तिस को कोई मेटन को समर्थ नहीं है जो परमात्मा सर्वकला को धारणकर रहाहै सोई सर्वके दुःखको (हिरै) दूरकरता है तात्पर्य्य यहहै उसको सर्व सामर्थ्य है चाहेसो करे जैसे सुदामा भक्तके दुःखदायक अदृष्टों को दूरकरके सुखके हेतु अदृष्टमुष्टि चावलोंकी स्वीकार करके पैदाकरे से सो परमातमा तुमारा वास्तव स्वरूप है इस स्थान में सर्वत्रभाग त्याग लक्षणकी मर्यादा से अद्वैत उपदेश

जानना जैसे इस स्थान में सप्तपंक्तिमें चौदावार अभ्यास है इसीप्रकार जपसाहिबकी । १६ । १७ । १८ । १९ इन पउडीयों में वारवार तू सदासलामत निरंकार, इस प्रकारका अभ्यास है । यह द्वितीय तात्पर्य्य ग्राहकलिङ्ग है।

सतिपुरुषजिनजानियासतिगुरुतिसकानाउ।

इत्यादिकलक्षण लक्षितगुरु उपदिष्ट शब्द प्रमाण से प्रमाणान्तर करके अज्ञाततताको अपूर्वता कहते हैं ॥ जैसे जपजीकी ५ । ६ । पउडी में गुराइक देहिबुझाई यह अपूर्वता रूप तीसरालिङ्ग कहा है । और भैरउ

म० १। गुरकैशब्दतरेमुनिकेतेइन्द्रादिकब्रह्मादितरे। सनकसनंदनतपसीजनकेतेगुरुप्रसादीपारपरे। १।भउजलबिनशब्दकिउतरीयै॥

अ० ॥ जपजीकी पंक्तिका व्याख्यान तो उस पउडी के अर्थके समयपर होवेगा और भैरउकेशब्दका अर्थ यहहै गुरुउपदिष्ट वाक्यसे वहुतसे मननशील संसारको उत्तीर्ण होगये तथा इन्द्रादिक देवता ब्रह्मा आदिक सनकादिक और तपस्वी लोक गुरु कृपासे प्राप्त उपदेश से संसार के पारहुए हैं। क्योंकि विना गुरु उपदेश से संसार को कैसे पार उत्तीर्ण होवेगा। सोरठम० ३ । मनमेरेगुरु

शब्दीपायाजाय ॥ विनशब्दै जगभुलदाफि रदादरगाहिमिलैसजाय ॥

अ० । अपने मनद्वारा गुरु अमरदासजी सर्व को उपदेश करते हैं हे मेरेमन गुरु उपदेश से परमात्मा प्राप्त होताहै विनागुरु उपदेश से जगत्भूलकर संसार चक्र में फिरता है धर्मराजका (दरगाहि) दरवाजा ग्रहण करके (सजाय) ताड़नाको प्राप्त होवेगा । इत्यादिक अनंत वाक्य गुरुउपदेशसे संसारका तरना और विनाउपदेश से संसार चक्रमें भ्रमणको बोधन करतेहुए अपूर्वतारूप तृतीयलिङ्गके बोधक हैं ॥ इसस्थान में यद्यपि गुरुउपदेश रूपशब्द से संसारका तरना बोधनकराहै तथा गुरु- उपदेश से परमात्माकी प्राप्ति कही है जब ऐसाहै तब अ ज्ञातताकी प्रतीति कैसे हुई तथापि अज्ञाततारूप अ- पूर्वताकी अर्थसेप्राप्ति है क्योंकि जबशब्दरूप गुरुउपदेश से परमात्मा ज्ञातहुआ संसारचक्रकी निवृत्तिका हेतु है और विनागुरु उपदेश से अज्ञात हुआ संसार चक्र में भ्रमणका हेतुहै इससे यह निश्चितहुई जोकि गुरु उपदेशरूप शब्दसे प्रमाणान्तर करके अज्ञात है ॥ इसस्थान में इतना औरभी जानना जो यह अपूर्वता

अद्वैतवस्तुरूप अर्थकाधर्म है और उपक्रमोपसंहार और अभ्यास यह दोनोंशब्द के धर्महैं। दुःखनिवृत्ति और आनंदकीप्राप्ति फलहै इसकी प्रकरणप्रतिपाद्य अद्वैतज्ञानसे प्राप्ति जो है सो फलरूप लिङ्ग है यह फलरूप चतुर्थ लिङ्गभी अर्थगत है क्योंकिज्ञातहुआ परमात्माही दुःख निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्तिरूप है अथफलबोधक गुरुवचन लिखते हैं॥ सूहीवारम० १। दीवाबलै अन्धेराजाय। वेदपाठमतिपापाखाय। उगवै सूरनजापैचंद। जहिज्ञानप्रवेशअज्ञानमिटंत अ०। जैसे दीपक के प्रज्वलित होने से अन्धकार और वेद पाठ से बुद्धिगतपाप और सूर्य के उदय होने पर चन्द्र नहीं रहता तैसे जिसको ज्ञानका प्रवेश होताहै उसका अज्ञान मिटजाताहै॥

आसाछं० म० ५। अनंदोअनंदघणामै सोप्रभुडीठराम। चाखिअडाचाखिअडामै हरिरसमीठाराम। हरिरसमीठामनमहिवू ठासतिगुरुतूठासहजभया। ग्रिहवसिआयामै गलगायापंचदुष्टओयभागिगया। सीतलआ

घ्राणेअंम्रितबाणे साजनसंतवसीठा। कहुना नकहरिसिउमनमानियासोप्रभुनैणीडीठा॥

अ०॥ श्रीगुरुअर्जुनदेवजीने सर्व जीवनको यह उपदेश देना उचित समझकर अपने अनुभव को प्रकट किया (हे राम) हमारे इष्टदेव परमेश्वर आपकी कृपासे (मैं) मैंने सो समर्थ परमात्मा मनुष्यानंदसे लेकर हिरण्यगर्भ के आनंदों का समुदायरूप जो आनन्द है सो जिसका लेशमात्र है ऐसा आनन्द घनरूप आनन्द (डीठा) अनुभव किया है सो केवल परोक्षरूप से हीन ही अनुभव करा किन्तु सो हरिरस अत्यन्त मधुर (चाखिअडा) अपरोक्षरूपसे अनुभूत है परन्तु सो हरिरस अत्यन्त मधुर मनमें वूठा वरसा है जब सतिगुरुकी प्रसन्नताहुई तब (सहज) स्वाभाविक आनन्द प्राप्तभया जब (गृह) इन्द्रियग्राम वश हुआ तब उस रसका (मंगल) पुनः पुनः अनुसंधानका गायन किया है सो पंच दुष्ट काम क्रोध लोभ मोह अहङ्कार भागगये हैं। जब अमृत वचन बोलनेवाले संतजन (वसीठा) मध्यस्थ हुए तब शीतलता से (अघाणे) तृप्त होगये हैं। श्रीगुरुजी कहते हैं जब हरिके सहित मनको मननकरा तब सो प्रभु नेत्रों से देखाहै तात्पर्य्य यह है जब अन्तःकरण में गुरु उप-

देश सत्पुरुषोंकी कृपा से साक्षीका अनुभव करा फिर दीर्घकाल निरन्तराभ्यास से उसी साक्षी को ब्रह्मरूप निश्चयकरा तब अपरोक्षानुभव होगया सूहीतथा आसा रूप दो वचनों में अज्ञान निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्तिरूप फल अद्वैत ज्ञानका कहा है इस वास्ते फलरूप तात्पर्य्य ग्राहक चतुर्थ लिङ्गका निरूपण होगया॥ यह फलरूप लिङ्गभी अर्थगत है क्योंकि अज्ञानकी निवृत्ति ब्रह्मरूपहै और नित्य प्राप्त परमानन्दकी प्राप्ति भी ब्रह्म स्वरूप से पृथक् नहीं है॥ प्रकरण प्रतिपाद्यवस्तु के ज्ञान में प्रवृत्तिवास्ते तिस ज्ञानकी स्तुति और तिसज्ञान से वर्जितों की निन्दा का नाम अर्थवाद है॥

श्रीरागम० १॥ ज्ञानपदार्थपाईये त्रिभव णसोझीहोय,, सूही० छं० म० १। ज्ञानमहा रसनेत्रीअञ्जनत्रिभुवणरूपदिखाया॥ मा झवार। म० २। निष्फलंतस्यजन्मसयाव त्ब्रह्मनविन्दते॥

अ०॥ ज्ञानरूप पदार्थ को पाना योग्यहै जिस ज्ञान से तीन भुवन की (सोझी) ज्ञात होती है इसीप्रकार ज्ञानरूप महारस नेत्रों का अञ्जनरूप है जिससे तीन

भवन की हष्टी होती है इन वाक्यों में सर्व के ज्ञानका हेतु ज्ञानकहाहै सो ब्रह्मका ज्ञान इस प्रकारका है क्योंकि ब्रह्मही सर्व प्रपंचका वास्तवरूपहै उसके जाने से सर्वकी ज्ञात होती है। तृतीय वाक्यका अर्थ यह है तिसपुरुष का जन्म निष्फलहै जब तक सो ब्रह्मको न जाने इस वाक्य में ब्रह्म के न जाननेवालों की निन्दाहै। यह अर्थवाद रूप पञ्चम तात्पर्य ग्राहक चिह्नभी अर्थगत है क्योंकि ब्रह्मज्ञान रूप अर्थ की प्रशंसा और ब्रह्मज्ञानवान् पुरुषरूप अर्थ की निन्दा है। प्रकरण प्रतिपाद्य वस्तु की दृष्टान्तोंसे दृढ़ताकरनेवाली युक्तिकथनकानामउत्पत्तिहै॥

गउडीपूरबीम० ५। एकैकनिकअनिकभांतिसाजीबहुप्रकाररचायउो। कहुनानकसरमगुरखोईहै इवततैलतुमिलायउो॥ सुखमनीम० ५। वस्तुमाहिलेवस्तुगडाई। ताकउभिन्ननकहनाजाई। बूझैबूझनहारविवेक। नारायणमिलैनानकएक। धनासरीम० ५। ओयजुबीचहमतुमकछुहोतेअबतिनकीबातबिलानी। अलंकारमिलथैलीहोइहैतातेकनिकबखानी॥

अ०॥ यह तीन गुरुवाक्य उपपत्ति के बोधकहैं। जैसे एककनिकसे अनेक प्रकार रचनाकरके वहुतप्रकार के आभूषण रचे हैं। परन्तु वास्तव सुवर्णभाव जैसे का तैसाही है इसीप्रकार गुरुओं ने भ्रम निवृत्तकरायाहै तत्त्व में तत्त्वका मेलहोगयाहै भाव यहहै दृष्टांतमें नानात्वभाव हुयेभी सुवर्ण जैसेका तैसाहै और दार्ष्टांत परमात्मा में नानात्वभावके होनेपरभी सो परमात्मा जैसेका तैसाहै सुखमनीके वाक्यका अर्थ स्पष्टहै। धनासरी के वाक्यका यह भावहै जोकि परमेश्वरके सन्मुखहोकर उपदेश करते हैं हे भगवन् अविचारकाल में जो बीच में कुछ अहंता ममतासी अब विचारहोनेपर सो बीचकी बात निवृत्तहोगई जैसे अनंत (अलंकार) भूषण मिलकर एक थैलीनाम रैणीहोती है जिससे उसका नाम थैलहोगया तिससे कनिकनामसे बोलते हैं कटक कुंडल आदिक नाम जाते रहते हैं। इसप्रकार प्रकरणप्रतिपाद्य वस्तु के बोधवास्ते अनेक दृष्टांत कथनका नाम उपपत्तिरूप षष्ठ लिङ्ग है सो यह छीवांतात्पर्य ग्राहक लिङ्ग शब्दगत है क्योंकि युक्ति दृष्टांतकथन शब्दरूप है इसवास्ते यह लिङ्ग शब्द गतहै इस प्रकार तात्पर्य ग्राहक लिंग रूप निशान को जो जानताहै सो ज्ञानकारण उपदेश रूप दातको कर-

ता है । यह तात्पर्य ग्राहक पद लिङ्ग अनंत स्थानों में आवेंगे इसवास्ते एकस्थान में उदाहरणों सहित निर्णय करदिये हैं सर्वत्र जानलेने उदाहरण अनंत हैं रीतिमात्र जनाया है ॥ जबतक सर्वज्ञान अनंत आनंद इत्यादि ब्रह्मके स्वरूप भूतगुणोंका अपने आत्मा में यथावत् अनुसन्धान न करेगा तबतक यथार्थज्ञान आत्मा को होता नहीं इससे हे गुरो ब्रह्मके स्वरूपभूत गुणों को कौन गायनकरताहै यह प्रश्न तथा तिसका उत्तर दिखाते हैं ॥ गावै को गुण वडियाई आचार ॥ जिस पुरुष की आचार में वडिआई है सो ब्रह्मके स्वरूप भूत गुणोंको गायन करता है ॥ तात्पर्य यह है जिसपुरुषका आचार श्रेष्ठ है सो उपदेशक होकर परमात्मा के गुणोंका गायनकरता है । सो श्रेष्ठआचार मनुजीने सहितफलके कहा है । तथाहि ॥ दैवतान्यभिगच्छेत्तुधार्मिकांश्चद्विजोत्तमान् । ईश्वरंचैवरक्षार्थं गुरूनेवचपर्वसु १५३ । अर्थ ॥ देवस्थान गुरुमंदिर धर्मशाला आदिक विचार स्थानोंको जावे और धर्म उपदेशक विद्वज्जनों के प्रति गमनकरे और अपनी रक्षाकेवास्ते (ईश्वर) राजा के प्रतिगमनकरे इसीप्रकार अमावास्या आदिक पर्वोंमें पिता पितामह आदिकोंके

प्रतिगमनकरे॥ अभिवादयेद्वृद्धांश्चदद्याच्चैवास नंस्वकम्। कृताञ्जलिरुपासीतगच्छतःपृ ष्ठतोऽन्वियात् १५४। अ० ॥ यदि अपने स्थान पर अकस्मात् बड़े वृद्ध गुरु लोक आवें तब उनको दंड- वत् प्रणामकरे अपना आसन देवें हाथजोड़कर उन को प्रणामकर पासबैठे जब चलें तो उनके पीछे गमनकरे। श्रुतिस्मृत्युदितंसम्यङ्निबद्धंस्वेषुकर्मसु। धर्ममूलंनिषेवेतसदाचारमतन्द्रितः १५५। अ० ॥ श्रुति तथा स्मृति में उक्त और अपने अध्ययन अध्यापन आदिककर्मों में कथनकरेहुये श्रेष्ठ पुरुषों के धर्ममूलक आचारको विना आलस्यसे सेवन करे॥ आ चाराल्लभतेह्यायुराचारादीप्सिताःप्रजाः। आचाराद्धनमक्षय्यमाचारोहन्त्यलक्षणम्॥ १५६॥ मनुस्मृति अध्याय० ४। अ० ॥ इस पूर्वउक्त आचार से वेदउक्त शतवर्ष आयुकी और इष्ट प्रजाकी तथा अक्षय धनकी प्राप्तिहोती है और आचारही कुत्सित लक्षण सूचित क्लेशको नाश करता है। इसवास्ते गुरुजीने यह कहाहै जिसकी इसप्रकार के आचार में उ- त्कृष्टताहै सो परमेश्वरके गुणोंको गायनकरेगा। दूसरा

नहीं करसक्ता ॥ स्वरूपभूत गुणबोधक गोपालतापनी श्रुति सतिनाम मंत्रकी व्याख्यामें निर्णीतहै देखलेनी ॥ गावैको विद्या विषमविचार ॥ हे गुरो पूर्वउक्त गुणों के अनुसंधानसे उत्पन्न परमात्माकी विद्याको कौन गायनकरताहै गुरुजी उत्तरकहतेहैं (विषम विचार) जिसको आगमापाई और अगमापाई के अवधि अर्थात् आश्रयका तथा द्रष्टा दृश्यका और साक्षी साक्ष्य का अन्वय व्यतिरेकरूप विषम विचारहै सो अद्वैत सत् की विद्याको गायन करताहै भाव विवेचन करनें को जो समर्थ है सो गावेगा । इस विषम विचाररूप अन्वयव्यतिरेकोंको स्फुटकरनेवास्ते श्रुतिप्रमाणका उपन्यासकरते हैं तथाहि॥तंवाएतमात्मानं जाग्रत्यस्वप्नमसुषुप्तं स्वप्नेजाग्रतमसुषुप्तंसुषुप्ते जाग्रतमस्वप्नंतुरीये ऽजाग्रतमस्वप्नमसुषुप्तमव्यभिचारिणंनित्या नन्दंसदैकरसंह्येवम् । चक्षुषोद्रष्टाश्रोत्रस्यद्रष्टावाचोद्रष्टामनसोद्रष्टा बुद्धेर्द्रष्टाप्राणस्यद्रष्टातमसोद्रष्टा सर्वस्यद्रष्टाततःसर्वस्मादन्यो विलक्षणः । चक्षुषःसाक्षीश्रोत्रस्यसाक्षीवाचःसाक्षीमनसःसाक्षीबुद्धेः साक्षीप्राण

स्यसाक्षीतमसःसाक्षीततोऽविक्रियोमहाचैत न्योऽस्मात् सर्वस्मात् प्रियतमआनन्दघनं ह्येवम्। अस्मात्सर्वस्मात् पुरतःसुविभातमे करसमेवाजरममरममृतमभयं ब्रह्मैवाप्यज येनं चतुष्पादंमात्राभिरोङ्कारेणचैकीकुर्या त्। नृसिंह० उत्तरतापनी० उ० खण्ड० २॥

अ०॥ इस श्रुति में अर्द्ध मात्रा रूप तुरीय वस्तु की विद्याके प्राप्ति साधन अन्वय व्यतिरेक को कथन करते हैं, सो तुरीय वस्तुही जब जाग्रत् आदिक अवस्था रूप उपाधि विशिष्ट होताहै तब विश्वतैजस प्राज्ञ नाम से कहा जाताहै इसवास्ते जाग्रत् आदिक अवस्थाको तथा तिनके अभिमानी विश्व आदिकों को आगमापायी और तुरीय वस्तुको तिस आगमापाय की अवधि रूप बोधन करते हुए प्रथम आगमापायी और अनागमा- पायीका अन्वय व्यतिरेक कहते हैं तुरीय अनुगत आ- ताहै और जाग्रत् आदिक अवस्था व्यभिचारी है जैसे जाग्रत् कालमें तुरीय रूप अधिष्ठान का अन्वयहै और स्वप्न तथा सुषुप्तिका व्यतिरेकहै इसीप्रकार स्वप्न कालमें तुरीय वस्तुका अन्वय और जाग्रत् सुषुप्तिका व्यतिरेक

है तथा सुषुप्ति कालमें अनुगत आत्माका अन्वय और जाग्रत् स्वप्नका व्यतिरेक व्यतिरेक नाम व्यभिचारका है और अन्वय नाम अव्यभिचारका है। और अन्तर्मुख सतरूप तुरीय वस्तुमें जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनोंका व्यतिरेकहै तुरीय वस्तु अव्यभिचारी है इस वास्ते तुरीय परमात्मा को व्यभिचार रहित नित्य आनन्द सर्व काल में एकरस जानना योग्यहै अब द्रष्टा और दृश्यका अन्वय व्यतिरेक कहते हैं चक्षुका द्रष्टाहै और श्रोत्र वाक् मन बुद्धि प्राण तम इनका द्रष्टाहै और बहुत क्या कहें सर्वका द्रष्टाहै इस स्थानमें द्रष्टाका अन्वय अर्थात् अव्यभिचारहै और चक्षुआदिक दृश्यका व्यतिरेक अर्थात् व्यभिचारहै क्योंकि श्रोत्रादिक दृश्यका जब द्रष्टा हुआ तब चक्षुआदिक दृश्य नहीं श्रोत्रका द्रष्टा तहां भी साथ है इसीप्रकार सर्वत्र जानलेना ऐसे साक्षी साक्ष्यका अन्वय व्यतिरेक जानना जब परमात्मा का दृश्य तथा साक्ष्यसे व्यभिचार नहीं किन्तु दृश्य साक्ष्यकाही सर्वत्र व्यभिचारहै इस वास्ते तुरीय वस्तु (अविक्रिय) विकार रहितहै और व्यापक चैतन्यरूप है सर्व दृश्य प्रपंच से अत्यन्त प्रियहै इस रीति से आनन्द घन जानने को योग्यहै। और सर्व नामरूप प्रपंचानुगत सतचित आ-

नन्दादिक पदोंके वाच्य से (पुरतः) पहलेही (सुवि-
भातं) स्पष्ट प्रतीत होताहै इस वास्ते निश्चयकरके एक
रस अजर अमर अमृत अभय रूप है इस ब्रह्मस्वरूप
आत्मा को (अजया) माया करके विश्वतैजसप्राज्ञ
तुरीय रूप चतुष्पाद भाव प्राप्तहुए भी अकार उकार म-
कार अर्द्धमात्रारूप ॐकार द्वारा एकत्व को करना यो-
ग्यहै सो एकत्व प्रकार मूल मन्त्रके व्याख्यान में निर्णीत
है। यहां भी उसका ध्यान करलेना चाहिये। प्रकरण
में यह वार्त्ता निर्णीत हुई इस प्रकारके विषम विचारवाला
आत्मज्ञानी अद्वैत सतकी विद्याका कारण उपदेश क-
रताहै॥ गावेकोसाजिकरेतनुखेह॥ हे गुरो विषम
विचारवाले से जो पृथक्है अर्थात् विना अन्वय व्यति-
रेक रूप युक्ति से जिसको विचार हुआहै सो (को)
क्या विद्या हेतु उपदेश को (गावे) गायन करताहै
अथवा नहीं गायन करता गुरु उत्तर कहते हैं जो (तनु)
शरीरको (साज) उत्पन्न करके (खेह) नाश (करे)
करताहै सो पुरुषभी गायन करताहै तात्पर्य यहहै प्रथम
गुरु उपदेश से ब्रह्मस्वरूप आत्मा को सामान्य से जान
कर उसमें तीन शरीरका आरोपकरके फिर उपसंहारकरता
है सो भी अद्वैतानुभव से विद्या हेतु उपदेश करता है।

जिसकी आचार में प्रधानताहै सो उत्तमहै और ब्रह्मके स्वरूप भूत गुणोंका गायन करताहै और जो अन्वय व्यतिरेक युक्तिसे विद्याहेतु उपदेश करताहै सो मध्यमहै और जो लयचिन्तनप्रकारसे विद्याहेतु उपदेशकरताहै सो मन्द उपदेशकहै ॥ लयचिन्तन प्रकार बोधक श्रुति लिखतेहैं ॥

तस्मिन्निदंसर्वंत्रिशरीरमारोप्य तन्मयंहित देवेतिसंहरेदोमिति ॥ नृसिंह उत्तरतापनी ॥ खण्ड० १ ॥

अ० ॥ जिस पुरुषको यथावत् वस्तु उपदेश हुआहै और किञ्चित् संशय विपर्य्ययहै सो मन्द अधिकारी है तिसका उपदेश कभी मन्द प्रकारके उपदेश से मन्द उपदेशक कहा जाताहै इसीप्रकार मध्यम उत्तम उपदेश कभी शिष्योंकी अपेक्षासे कहेजाते हैं क्योंकि उपदेशक तो सर्वथा उत्तमही होताहै परन्तु शिष्यकी बुद्धि उत्तम मध्यम मन्द समझकर गुरु उत्तम मध्यम मन्द प्रकारका उपदेश करतेहुए तिस तिस नामसे कहेजाते हैं । श्रुत्यर्थ, सो मन्दपुरुष सामान्य से ज्ञात आत्मामें इस सर्व प्रपंचको तीन शरीर रूप जानकर आरोपकरे फिर ॐकार का उच्चारण करता हुआ सर्व प्रपंचको सतचित् आनन्द

युक्तहोने से सच्चिदानन्दरूपताहै (हि) निश्चय करके (तदेवेतिसंहरेत) यह संपूर्ण आत्मा रूपहै इस प्रकारसे उपसंहारकरे, तात्पर्य यह है जो अन्तर्मुख सत् साक्षीरूप वस्तु ब्रह्मज्ञान नाम से कहीजाती है तिसमें विचित्र शक्ति रूप कारण शरीर आरोपकर फिर तिस कारण में सूक्ष्म शरीर आरोपकर फिर तिस सूक्ष्ममें स्थूल विराट् को आरोपकर अपने व्यष्टि स्थूल शरीरसे समष्टि विराट् की एकता ध्यान कर व्यष्टि सूक्ष्म की समष्टि सूक्ष्मसे एकता जानकर फिर कारण व्यष्टिसे कारण समष्टिकी एकता संपादनकर तिसकारण समष्टिको लीन करनेसे निर्विशेष चिन्मात्र शेष रहा सो मैं हूं ऐसे जाने॥ गावेकोजीय लै फिरदेह॥ हे गुरु महाराज यदि पूर्व उक्त तीन प्रकार के अधिकारियों के प्रति उपदेश दे वाला गुरु ज्ञानवान् है तब तो ज्ञान से मूलाज्ञान की निवृत्ति होने से (को जीय देह गावै) कौन उस ज्ञानी के देह को गायन करता है क्योंकि उपादान कारण की निवृत्ति होने से कार्य्यकी स्थितिका सम्भव नहीं और जेकर ज्ञान मूलाज्ञानका निवर्तक न हुआ तब ज्ञान को निष्फल होने से सो पुरुष अज्ञानीहै अज्ञानी उपदेशक नहीं हो-सकता (उत्तर) (फिर देहलै) सो ज्ञानी अज्ञानकी

निवृत्ति होते भी फिर देहको (लै) प्राप्त होताहै ॥ तात्पर्य्य यहहै जो आत्मज्ञानहै सो प्रारब्ध तथा तिसका कार्य्य जो देहहै तिसतेजन्यहै इस वास्ते प्रारब्ध देहसे भिन्नका ज्ञान विरोधी है याते ज्ञान से फिर पीछे भी ज्ञानीका देह रहताहै इसी वास्ते व्यासजी के सूत्र में संचित क्रियमाण कर्म का ज्ञान से नाश और अस्पर्श कहाहै संचित कर्म का ज्ञान से नाश होताहै और क्रियमाण कर्म्म का अस्पर्श होता है॥ जेकर ज्ञानी का देह न रहता और पुण्य पापरूप कर्म न होते तब उन कर्मों का अस्पर्श क्यों व्यासजी कहते॥ सो व्यासजीकासूत्र यहहै॥ तदधिगमउत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौतद्व्यपदेशात्।शारीरक० अ० ४ पा० १ सूत्र १३ ॥ सूत्रार्थ॥ तिस परमात्माके (अधिगमे) ज्ञानके हुये (उत्तरपूर्वाघयोः) ज्ञान से उत्तर काल में और पूर्वकाल में होनेवाले पापों का (अश्लेष) स्पर्श और विनाश होताहै क्योंकि तिसका श्रुति में(व्यपदेश) उपदेश होने से ॥

तथाहि॥ यथापुष्करपलाशआपोनश्लिष्यन्तएवमेवंविदिपापंकर्मनश्लिष्यते। छां०

अ० ४ खण्ड १४। श्रुति ३। तद्यथेषीकातूलमग्नौप्रोतंप्रदूयेतैवंहास्यसर्वेपाप्मानः प्रदूयन्ते। छां० अ० ५ खण्ड। २४। ३॥

अ०॥ जैसे (पुष्करपलाशे) कमलके पत्रमें जलस्पर्श नहीं करते इसी प्रकार (एवंविदि) ज्ञानवान् में पाप कर्म का स्पर्श नहीं होता (तद्यथा) जैसे तीली अग्नि में पानेकर सो दग्ध होजाती है इसीप्रकार इस विद्वान् के सर्व पाप दग्ध होजाते हैं॥ इतरस्याप्येवमसंश्लेषःपातेतु। शा० अ० ४ पा० १ सूत्र १४॥ अ०। जैसे पाप कर्म का ज्ञानी को सम्बन्ध नहीं होता इसी प्रकार (इतर) पुण्यकर्म काभी सम्बन्ध नहीं होता (पातेतु) तुनिश्चय करके शरीर के पतन होनेपर विदेह मुक्ति को प्राप्त होता है॥ भोगेनत्वितरेक्षपयित्वा सम्पद्यते। शा० अ० ४ पा० १ सू० १९॥

अ०॥ तु पुनः भोग करके (इतर) प्रारब्ध कर्म को (क्षपयित्वा) निवृत्त करके (सम्पद्यते) ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है, श्रुतिभी इस अर्थको बोधन करती है॥ तथाहि॥ तस्यतावदेवचिरंयावन्नविमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्ये। छान्दोग्य० उप० अ० ६।

खण्ड १४। श्रुति। २॥ अ०॥ तिस ब्रह्मवेत्ता को तब पर्यन्तही ब्रह्मप्राप्ति में चिरकालहै जबतक (नवि-मोक्षे) शरीर को नहीं त्यागता (अथ) शरीर त्यागसे अनन्तर (संपत्स्ये) ब्रह्मको प्राप्त होता है॥ प्रकरण में इस बात का निश्चय होगया जो कि ज्ञान से पीछे शरीर रहताहै और विद्वान् ब्रह्मका उपदेश उत्तम मध्यम मन्द अधिकारको करता है जिस प्रकार का उसको अ-धिकारी प्राप्त होता है उसीप्रकार का उपदेश देकर ज्ञान को उत्पन्न करता है॥ हे गुरो तिस ज्ञानी पुरुषको इतर जीवोंसे भिन्न करके कौन कथन करताहै यह पूछताहै॥ गावैकोजापैदिसैदूर॥ अर्थ॥ यद्यपि सो विद्वान् संसारी जीवों को दूर दीखता है तथापि जिज्ञासु पुरुषों को (जापै) प्रतीत होता है जब तिन जिज्ञासुजनों को प्रतीत हुआ तब वे इतर जीवों से भिन्न करके गायन करते हैं॥ इसी वास्ते श्रुति में आत्मा के वक्ता को तथा तिस वक्ताके लभनेवाले को तथा आत्मा के जाननेवाले को आश्चर्यरूप कहा है॥ तथाहि॥ आश्चर्यो वक्ताकुशलोऽस्यलब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाताकुश-लानुशिष्टः। कठ० उप० वल्ली २॥ अ०॥ पर-मेश्वर का वक्ता आश्चर्य है और इस वक्ताके (लब्धा)

खोजनेवाला भी (कुशल) अत्यन्त चतुर होता है और जाननेवाला भी किसी चतुरगुरु करके (अनुशिष्ट) शिक्षित आश्चर्य रूप है॥ इस श्रुति में जैसे आत्मज्ञानी को आश्चर्य रूपता कही है तिसीप्रकार गुरुजी कथन करते हुए ज्ञान के उपदेशकका निर्धारण करतेहैं॥

गावैकोवेखैहादराहदूर॥ यहां हदूर नाम बड़े काहै और हादर नाम प्रत्यक्षका है याते तिस परमेश्वर को कौन गावे है इस प्रश्नका जो सर्व से (हदूर) बड़े को (हादर) प्रत्यक्ष देखता है सो परमात्मा को गायन करता है यह उत्तररूप अर्थ सिद्ध हुआ तात्पर्य यह है जिसको यथावत आत्माभिन्न ब्रह्मका साक्षात्कार है सोई दूसरे को उपदेश करसक्ता है और जिसको आपही संशय विपर्यय सहित बोध है सो यदि उपदेश भी करे तब भी जिज्ञासु को बोध नहीं होता इसी अर्थका बोधक श्रुति भी है॥ तथाहि॥

नवरेणावरेणप्रोक्तएषसुविज्ञेयो बहुधाचिन्त्यमानः। अनन्यप्रोक्तेऽगतिरत्रनास्त्यणीयान्ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात् ८ नैषातर्केणमतिरापनेयाप्रोक्तान्येनैवसुज्ञानायप्रेष्ठ। कठ उपवल्ली २॥

अ० ॥ (अवरेणनरेण) निकृष्टपुरुष करके कथन करा हुआ आत्मा (सुविज्ञेय) सुगमता से जानने को योग्य नहीं। क्योंकि वादियों के भेदसे वहुत प्रकार से कर्ता है अथवा अकर्ता है शुद्धहै मलिनहै इत्यादि रूप चिंतन कियाजाताहै इस वास्ते (अनन्यप्रोक्ते) ब्रह्मा भिन्न आत्माके जाननेवाले कर कथन करेहुए आत्मामें (अगति) अबोध नहीं रहता जेकर केवल तर्कसे कथन करे तव (अणुप्रमाणात् अणीयान्) अत्यन्त सूक्ष्म प्रमाणसेभी अतिसूक्ष्म होनेसे (अतर्क्य) तर्कका विषय नहीं है इससे केवल तर्क करके आत्मज्ञान रूपमति (न) आ (अपनेया) आ सर्वप्रकार से (अपनेया) दूर करने को योग्य नहीं इससे तार्किक आचार्य्य से अन्य आचार्य करके कथन कराहुआ आत्मा (सुज्ञानाय) साक्षात्कार वास्ते होताहै॥ हे (प्रेष्ठ) (प्रियतम नचकेता) इस कठउपनिषद में नचकेता और यमराजका संवादहै तहां यह प्रसंग है नचकेताको अग्निका अवतार कहते हैं सो उद्दालक ऋषिका पुत्रथा किसी कालमें उद्दालक ने सर्वस्व दक्षिणावाला यज्ञ कियाथा तब दक्षिणा में ब्राह्मणों को बूढ़ीबूढ़ी गौ देते देखकर नचकेता ने अपने पितासे कहा ऐसी गौ के देनेवाला आनन्द वर्जित

लोक को प्राप्त होताहै इस वास्ते आपको अत्यन्त उत्तम वस्तुका भी दान करना उचित है जिससे कनिष्ठ दान का दोष दूर होवे और पुत्र सर्व धन से उत्तमहै इससे मेरे को किस ब्राह्मण के वास्ते देवोगे इस बातको सुनकर पिता उद्दालक ने उपेक्षा किया तब इसी वचनको नचकेताने तीनबार कहा फिर उद्दालक ने जाना जो यह पंच वर्षका बालक संस्कारी है मेरेको आक्षेप करता है फिर क्रोध युक्त होकर कहा मृत्यु के वास्ते तुमको देवेंगे परन्तु ऐसा प्रतिज्ञा वचन कहकर पुत्र स्नेह से संतप्त हुआ यह जाना जो पुत्रको न दिया तब मिथ्यावादी हुए और स्नेह से दिया जाता नहीं ऐसे संदिग्ध पिता को देख नचकेता ने उपदेश किया जोकि धर्म के त्याग से कोई अजर अमर नहीं होता इस वास्ते आप श्रेष्ठजनोंको देख कर प्रतिज्ञा वचनका पालनकरो और मेरे को यमराजके पास भेजो फिर नचकेता यमराजके पास योग बलसे गये यमराज को प्रसन्नकर आत्मविद्या का उपदेश वरमांगा उस प्रकरणकी पूर्वउक्त श्रुतिहै जिसमें प्रेष्ठ यह यमराजका नचकेताके प्रति संबोधन है। प्रकरणमें यह बात निर्णीत हुई जोकि श्रुतवेद ब्रह्मनिष्ठही उपदेशक होकर अधिकारी को आत्मज्ञान करसकता है अन्य नहीं करसकता

इसीवास्ते गुरुजीने "गावै कोवेखैहादराहदूर," यह कहा है ॥ हे भगवन् यदि विद्वान् उपदेशक है और अधिकारी श्रोताहै तब पूर्व निर्णीत अद्वैत सत् में वस्तु परिच्छेद होने से अखण्डता संभवे नहीं इस शंकाकी निवृत्ति करते हैं॥

कथनाकथीनआवैतोटि कथिकथिकथीकोटीकोटिकोटि ॥ वक्ताको कथी कहते हैं याते (कथी कथना) कथनवाले के कथनसे आत्म वस्तुमें (तोटि) वास्तव परिच्छेद (नआवे) नहीं आवता प्रथम कथि शब्द कथन योग्य का बोधकहै द्वितीय कथिशब्द कथन का बोधक है तब यह अर्थ हुआ कथन योग्य वस्तुका (कथी) कथनवाले (कथि) कथनकरे क्रोडवर्ष क्रोड युग क्रोड कल्प तबभी तिसमें वास्तव परिच्छेद होता नहीं। क्योंकि स्वप्न मनोराज्य कालमें वासनासे नानात्व प्रतीत होतेभी साक्षी केवल एकरस निर्विकल्प परिच्छेद शून्यहै इसीप्रकार जाग्रदादिक कालमें वक्ता श्रोता आदिक विकल्प जाल आविद्यकहै वास्तव भेद का हेतु नहीं ॥ पूर्व उक्त प्रकारसे वास्तव अद्वैत सिद्धान्त की कल्पित श्रोता वक्ता आदिकसे अबाधकता निरूपण किया अब दाता गृहीता भोक्ता भोजयिता रूप कल्पित द्वैतसे भी अद्वैत सिद्धान्तकी स्थितिको बोधन करते हैं॥

देदादेलैदेथकपाह जुगाजुगंतरखाहीखाह ॥ जो परमेश्वर कर्म्मफलका दाताहै सो दान करताहै और लेनेवाले चतुर्युग और कलि द्वापर त्रेतादि युगान्तरों में (खाही) विषयोंको (खाह) भोक्तेहैं। परन्तु (थकपाह) भोगमें ईश्वर गुरु कृपासे ग्लानिको प्राप्त होते हैं। तात्पर्य यहहै सकाम कर्मका फल स्वर्गादि भोग भोगकर सत्सङ्ग उत्तम संस्कार के प्रभावसे निष्काम कर्म करके शुद्धचित्त शास्त्र विचार के प्रभावसे फिर विषयों में ग्लानि को प्राप्त होते हैं॥ इस अर्थकी पुष्टिके वास्ते सूत्र तथा श्रुति को लिखते हैं॥ तथाहि ॥ फलमतउपपत्तेः। शा० अ० ३ पा० २ सूत्र ३८॥ सवाएषम हानजआत्माऽन्नादोवसुदानः। बृ० उप० अ० ४ ब्रा० ४ श्रुति २४। अ०॥ (अतः) सर्वज्ञ ईश्वर से कर्म का फल प्राप्त होताहै (उपपत्तेः) युक्ति से तथा श्रुति से ऐसेही बन सकता है क्योंकि जेकर अदृष्ट से फलकी प्राप्तिहोवे तब असङ्गत होवेगा अदृष्ट आपही जड़हैं और फल चेतन से प्राप्त होता है जैसे व्यवहार में जो सेवाका ज्ञाता होताहै सो तिसके फलको देताहै तैसे जो चेतन ईश्वर जीव के अदृष्ट का ज्ञाताहै सोई फलको

देताहै और श्रुतिसेभी परमेश्वरही फलका दाता मालूम होता है श्रुत्यर्थ (वै) निश्चय करके सो यह ईश्वर (महान्) सर्व से बड़ाहै और (अज) जन्म से रहितहै तथा सर्व का आत्माहै (अन्नादः) अन्नमा समन्तात्सर्व प्राणिभ्यो ददातीत्यन्नादः सर्व प्रकार से प्राणिमात्र को अन्नको देता है। (वसुदानः) अर्थिजनों को धनका दाताहै। और जब निष्काम कर्म से शुद्ध चित्त पुरुष होता है तब विषय भोग में ग्लानि युक्त होता है॥

तथाहि॥ यःस्तनंयपूर्वंपीत्वा पीनिष्पीड्य चपयोधरात्। यस्मिञ्जातोभगंपूर्वंतस्मिन्नेवभगेरमेत्। ३। यामातासापुनर्भार्य्यायाभार्य्याजननीहिसा। यःपितासपुनःपुत्रोयः पुत्रःसपुनःपिता। ४। एवंसंसारचक्रेणकूपचक्रघटाइव। भ्रमन्तोयानिजन्मानिश्रुत्वालोकान्समश्नुते। ५। योगतत्त्वोपनिषत्॥

अ०॥ संसारगतिकी विचित्रता दिखातेहुए वैराग्य का उपदेश करते हैं॥ जो स्तनगतदुग्ध पूर्वस्तनों को

निष्पीडनकरके पानकराथा अब वर्त्तमान दशामें उन्हीं स्तनोंको हस्त से मर्दनकरता है और जिसयोनिमें से उत्पन्नहुआथा उसी में रमण करताहै। ३। जो माता थी सोई पुनः भार्य्या है और जोभार्य्या थी सोई जननी है जो पिता था सोई फिर पुत्र है जो पुत्र था सोई पिता होजाता है। ४। इसप्रकार संसारचक्र में जीव कूपचक्र संवद्धघटीवत् भ्रमणकरतेहैं जिसजिस जन्मको प्राप्तहोते हैं उनकी गिनतीनहीं है यदि इस वैराग्य से बोधहोजावे तबतो मोक्षहोजाती है और जेकर वैराग्य से बोध न होवे केवल वैराग्यको श्रवणकरतारहे तब भी उत्तमलोकों को प्राप्तहोताहै ५ हे भगवन् यदि परमात्मा पूर्व उक्तप्रकारसे जीवों को कर्मफल देता है तब सर्वही जीवों को उत्तम फल देना चाहिये अथवा सर्वको मध्यम कनिष्ठ फल देना चाहिये क्योंकि ऐसा कोई जीव नहीं जो कि जैसे कैसे कर्म को न करे जब सर्वही कर्म करते हैं तब सर्वको एकसा फल होना चाहिये इस शंका के निवृत्त करनेवास्ते कहते हैं ॥ **हुकमीहुकम चलायेराहु नानक विगसैबेपरवाहु २ ॥** अ० ॥ (हुकमी) परमात्मा आपने (हुकमि) आज्ञारूप श्रुति स्मृति प्रतिपाद्य (राहु) मार्ग को (चलाये) प्रवृत्त करताहै और जो उस मार्गको

श्रद्धा से सेवन करताहै तिसपर (बेपरवाहु) पूर्णकाम हुआभी श्रीगुरुजी कहते हैं (विगसै) प्रसन्न होकर कृपा करताहै॥ तात्पर्य यहहै यद्यपि जीव स्वभाव प्राप्त कर्मको सदा करते हैं तथापि जो जीव श्रुति स्मृति से अविरुद्ध धर्म करते हैं तिनपर प्रसन्नहोकर उत्तम फल उनको देताहै और जो शास्त्र विरुद्ध कर्म में आसक्त होताहै तिसको दण्ड देता है परन्तु जैसा जीव का कर्म है तैसा फल देता हुआ विषमतादिक दोषों को नहीं प्राप्त होता इसीवास्ते परमात्मा में विषमता तथा निर्दयिता दोष सूत्रकार व्यासजी ने वारण कियाहै॥ तथाहि॥ **वैषम्यनैर्घृण्येनसापेक्षत्वात्तथाहि दर्शयति। शा॰ अ॰ २ पा॰ १ सू॰ ३४॥ श्रुति॰ पुण्योवैपुण्येनकर्मणाभवतिपापःपापेन। बृ॰ अ॰ ३ ब्रा॰ २॥** अ॰॥ परमेश्वर में (वैषम्य) विषमता (नैर्घृण्य) निर्दयालुता रूप दोषनहीं क्योंकि ईश्वर को कर्मसापेक्ष होने से जिसके जैसे कर्म हैं तिसको तैसा फल देताहै इसी अर्थ को श्रुति भी दिखलाती है श्रुत्यर्थ॥ पुण्यकर्म करके (पुण्य) उत्तम भावको प्राप्त होताहै और पाप कर्म से (पाप) नीच भावको प्राप्त होताहै॥ ३॥ पूर्व

उक्त विचार से ईश्वर को कर्म फल का दाता और कर्म-काण्ड तथा ज्ञानकाण्ड रूप मार्ग का प्रवर्तक कहा अब तिस ईश्वरका स्वरूप निरूपण करते हुये तिसको जीव और ईश्वरमें अनुगत शुद्ध चेतनरूपता निरूपणकरते हैं॥

साचासाहिबसाचनाइभाखियाभाउअपार॥

जो परमात्मा (साहिब) सर्व से बड़ा अर्थात् ब्रह्म विष्णु महेशादिकों का करताहै सो (साचा) तीनकाल में नाश से रहितहै और (साचनाय) तिसका नाम भी सत्है और वेदमें (भाखिया) कथन करा है (भाउ) ज्ञानरूप प्रकाश (अपार) देशकाल वस्तु करके परिच्छेद रहित॥ तात्पर्य यहहै ब्रह्मस्वरूप ज्ञान देशकाल वस्तुकृत परिच्छेद से वर्जित है। जो अत्यन्ताभाव का प्रतियोगी होताहै सो देश परिच्छेद युक्त होता है जैसे किसी एक देशमें होनेवाले घटादिक अत्यन्ताभाव के प्रतियोगी हैं और किसी कालमें होते हैं किसी कालमें नहीं होते इससे कालकृत परिच्छेद सहितहैं क्योंकि प्रागभाव तथा ध्वंसके प्रतियोगीको कालपरिच्छिन्न कहते हैं घटादिकोंका उत्पत्ति से प्रथम प्रागभावहै और नाश होनेसे ध्वंस घटादिकोंका अतिप्रसिद्ध है याते प्रागभाव तथा ध्वंसके प्रतियोगी घटादिकहैं इसवास्ते कालकृत परिच्छेद सहितहैं और जो

अन्योन्याभाव का प्रतियोगी होताहै सो वस्तु परिच्छेद सहितहै घटादिक परस्पर अन्योन्याभाव के प्रतियोगी हैं इस से वस्तु परिच्छेद युक्त हैं॥ ब्रह्ममें तीनप्रकार के परिच्छेद नहीं इस से अपारहै। इस बात के दृढ़करने वास्ते ब्रह्मके स्वरूप लक्षण बोधक श्रुति को लिखकर तिसका अर्थ लिखते हैं॥ **सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म॥ तैत्तरीय० उप०** अर्थ॥ ब्रह्म (सत्य) नाश रहित ज्ञानस्वरूप है (अनंत) पूर्वउक्त त्रिविध परिच्छेद रहितहै व्यापक होने से देश परिच्छेद रहितहै क्योंकि ब्रह्म यदि एकके देशमें होवे और एक देशमें न होवे तब अत्यन्ताभावका प्रतियोगी होने से देश परिच्छिन्न होवे ब्रह्म व्यापकहै इससे देशकृत परिच्छेद रहितहै और सर्वकाल में है इस से प्रागभाव तथा ध्वंसका प्रतियोगीपना रूप जो कालकृत परिच्छेद तिसतेरहितहै और माया से लेकर भौतिकप्रपंचपर्यन्त सर्व वस्तुका अधिष्ठानहै इससे वस्तुकृत परिच्छेद ब्रह्ममें नहीं क्योंकि आरोपित वस्तु अधिष्ठान से पृथक् प्रतीत नहीं होती किन्तु अधिष्ठान की सत्ता को लेकर सत् प्रतीत होती है इस वास्ते आरोपित वस्तुमें अधिष्ठानकी अन्योन्याभाव नहीं इसी वास्ते आरोपित सर्पों रज्जुनं इस प्रकारकी प्रतीति होती नहीं क्योंकि जब

आरोपित सर्प रज्जुसे पृथक् नहीं तब रज्जुका अन्योन्या-भाव तिसमें कैसे होवे इसीप्रकार कारण कार्य प्रपंचोब्रह्म न इस प्रकारकी प्रतीति होती नहीं क्योंकि जब आरो-पित कारण कार्य प्रपंचब्रह्मसे पृथक् सिद्ध नहीं तब तिसमें ब्रह्मका अन्योन्याभाव नहीं जब ब्रह्मका अन्योन्याभाव न हुआ तब ब्रह्म वस्तु कृत परिच्छेद से रहित सिद्ध होगया ॥ **आखहिमंगहिदेहि देहिदातकरेदा तार** ॥ जब शुद्ध बुद्धि गुरुभक्त आत्मज्ञान के कारण उपदेश को (देहि देहि) इस प्रकार बारम्बार मांगताहै तब पूर्व उक्त ब्रह्मबोधक वचन को (आखहि) कथन करते हैं ॥ और कथन करके पूर्व उक्त षट् विध लिङ्गोंसेवे (दातार) दाता लोक महात्मा जन तात्पर्य ज्ञानकी दात करते हैं ॥ **फेरकिअगेरखीयैजितादिसैदर बार** ॥ हे भगवन् जब गुरु उपदेश श्रवण करके गुरु वचन तथा वेद वचनों का षट् विधलिङ्गों से तात्पर्य निश्चित होगया तब (फेरकि) पश्चात् क्या कर्तव्य है, उत्तर देते हैं (जित दरबार दिसै सो अगैरखिये) जिस मनन निदिध्यासन से (दरबार) तुरीय वस्तुका संशय विपर्यय रहित (दिसै) साक्षात्कार होवे सो (अगे) तात्पर्य निश्चय रूप श्रवणसे पश्चात् (रखिये) स्थित

करिये अर्थात् बारंबार मनन निदिध्यासन को करना योग्यहै तात्पर्य यहहै प्रथम गुरु ब्रह्मका उपदेश गुण सम्पन्न अधिकारी के प्रति करताहै पश्चात् अधिकारी गुरु मुखसे वेदान्त वाक्योंका तात्पर्य निश्चय करताहै फिर अनेक युक्ति से मनन करके ब्रह्मके अनुभव का हेतु अनात्माकार वृत्ति के व्यवधानरहित आत्माकार वृत्तिका प्रवाहरूप निदिध्यासन होता है फिर तुरीय वस्तुका साक्षात्कार होता है दरबार नाम सभा का लोक में प्रसिद्ध है प्रकरण में समग्र प्रपंच का अधिष्ठानत्व उपलक्षित तुरीय का बोधक है। हे भगवन् तुरीय साक्षात्कार से अव्यवहित उत्तर मोक्षकी प्राप्ति होती है और सो तुरीय साक्षात्कार गुरु शरणागति से लेकर निदिध्यासन पर्यन्त सर्व साधनों का फल रूप है इसवास्ते जब गुरुकी शरण आवे तब मुखसे गुरु कैसा वचन बोलते हैं यह प्रश्न था तिसका उत्तर दिखाते हैं॥

मुहौ किबोलणबोलियेजितसुणधरेपियार॥

जब शिष्य संसार सुख दुःख द्वंद्वसे अत्यन्त सन्तप्त होकर गुरुकी शरणआवे तब गुरु उसके वाक्यसे तिस अभिलाषा जानकर मुखसे ऐसे वचन बोलैं जिनको सुन कर अधिकारी अपने कल्याणकारक वचनों को

जानकर अत्यन्त प्रेमको धारणकरे तातपर्य यह है जिस वस्तुके ज्ञानकी इच्छा करके गुरुकी शरण अधिकारी नें लयी है तिस वस्तु के ज्ञानका हेतु वचन गुरुको बोलनो उचित है इस अर्थका प्रतिपादन श्रुति में भी कराहै॥

तथाहि॥ परीक्ष्यलोकान्कर्मचितान् ब्राह्मणोनिर्वेदमायान्नास्त्यकृतःकृतेन। तद्विज्ञानार्थंसगुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिःश्रोत्रियंब्रह्मनिष्ठम्।१२। तस्मैसविद्वानुपसन्नाय सम्यक्प्रशान्तचित्तायशमान्विताय। येनाक्षरंपुरुषंवेदसत्यं प्रोवाचतांतत्त्वतोब्रह्मविद्याम्॥१३॥ मुण्डक० खण्ड २॥

अ०॥ "ब्रह्म भवितु मिच्छतीति ब्राह्मणः" जो ब्रह्महोनेकी इच्छावाला है सो ब्राह्मण है इसीवास्ते आगे श्रुति में तिस शुद्ध बुद्धि अधिकारी को सम्यक् प्रशान्त चित्त और शमान्वित कहाहै इसवास्ते (ब्राह्मण) ज्ञानाधिकारी कर्म करके संपादित स्वर्गादि लोकोंको (परीक्ष्य) विचारकर अर्थात् जो कर्मजन्य वस्तु होती है सो विनाशी होती है ऐसे निश्चय करके (निर्वेद) वैराग्यको (आयात्) करे और यह विचार

करे संसार में (अकृत) अजन्य वस्तु (नास्ति) नहीं मेरे को (कृतेन) कर्म करके क्या प्रयोजनहै इसवास्ते तिस अक्षर परमात्मा के ज्ञानवास्ते सो पूर्व उक्त अधिकारी गुरुको निश्चय करके (अभिगच्छेत) प्राप्तहोवे (समित्पाणि) भेटा हाथमें ग्रहण कराहुआ । यदि गुरु (श्रोत्रिय) पूर्ण विद्वान् और (ब्रह्मनिष्ठ) ब्रह्ममें स्थिति वाले होवें तब उनकी शरणको स्वीकारकरे । १२ । फिर सो विद्वान् सम्यक् प्रशान्त चित्त (शमान्वित) निगृहीतमन तिस अधिकारीवास्ते (तत्त्वतः) यथावत् तिस ब्रह्मविद्या को (प्रोवाच) कथनकरे जिस कथनसे (सत्य) नाश रहित (पुरुष) पूर्ण (अक्षर) व्यापक परमात्मा को जाने । इस श्रुति में जैसा संसार सुख से विरक्त अधिकारी ब्रह्मनिष्ठ पूर्ण विद्वान्की शरण आवे तिसको तैसाही उपदेश करनेका प्रकार लिखाहै ॥ इसी कारण गुरुजी उपदेश प्रकार दिखाते हैं ॥ अमृतवेलासचु नाउवडियाईवीचारु । करमीआवैकपडानदरीमोखदुआरु ॥ हे अधिकारी जन यह मनुष्य जन्म (अमृत) मोक्षका (वेला) समाहै अर्थात् इस मनुष्य जन्ममें अपने आपको यथावत् जानकर मुक्त होसकता

है पशु पक्षीआदिक जन्ममें आत्मज्ञान दुर्लभहै इसी वास्ते पुरुषको श्रुति में पुण्य जन्म कहाहै॥

तथाहि॥ ताएनमब्रुवन्नायतनंनः प्रजानीहि यस्मिन्प्रतिष्ठिताअन्नमदामेति १ ताभ्यो गामानयत्ताअब्रुवन्नवैनोऽयमलमिति। ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्नवैनोऽयमलमिति २ ताभ्यः पुरुषमानयत्ता अब्रुवन्सुकृतंबतेति पुरुषोवावसुकृतम्। ताअब्रवीद्यथायतनंप्रविशतेति॥ ३॥ ऐतरेय० उप० खण्ड २॥

अ०॥ जब ब्रह्माजीने विराट् पुरुषको पैदाकरा और प्राण चक्षु आदिकों के अधिष्ठातृ देवता पैदाकरे तब देवताओं ने कहा हे भगवन् हमारे अन्नपान के योग्य छोटासा स्थान बतावो क्योंकि विराट् शरीर के योग्य अन्नपानादिक नहीं हैं तब तिनके प्रति गौ तथा अश्व आदिक शरीर बनाकर दिये उन्हों ने कहा यह शरीर हमारे योग्य नहीं है फिर जब पुरुष शरीर को बनाकर स्थापन करा तब कहा यह शरीर आपने (सुकृत) शोभन कराहै क्योंकि इसमें मोक्ष साधनका सेवनकर मुक्त होवांगे फिर यथास्थान प्रविष्ट हुये॥ इसी तात्पर्य से

गुरुजीने मनुष्य शरीर को अमृत वेला कहाहै॥ गुरुजी कहते हैं हे पियारे यह मनुष्य मुक्तिका द्वारहै (सचनाउ) सतहै नाम जिसका ऐसे परमात्माकी (वडिआई) वडे-पनका विचार कर तिस परमात्मा की वडिआई को वेद स्मृति इतिहास पुराण गुरु महाराजजी के वचन इत्यादि सर्वही प्रतिपादन करते हैं इस वास्ते प्रकरणमें कुछक वेद वचन दिखाते हैं॥ तथाहि॥ नतस्यकश्चित्पतिरस्तिलोकेनचेशितानैवचतस्यलिङ्गम्। सकारणंकरणाधिपाधिपो नचास्यकश्चिज्जनितानचाधिपः ९॥ अ०॥ तिस परमात्मा का कोई (पति) स्वामी नहीं न कोई लोकमें तिसका नियन्ताहै और तिसका (लिङ्ग) जिसमें कार्य लीन होताहै सो कारण लिङ्ग है याते तिसका (लिङ्ग) कोई कारण नहीं सो आप सर्व का कारणहै और समष्टि व्यष्टि करण ग्रामका जो अधिप जीवहै तिसका भी (अधिप) स्वामी है न तिसका कोई उत्पन्न करनेवालाहै और न कोई तिसका स्वामी है ९॥ यस्तन्तुनाभइवतन्तुभिः प्रधानजैःस्वभावतो देवएकःस्वमावृणोत॥ सनोदधाद्ब्रह्माप्ययम् १०॥ अ०॥ जो एक देव प्रधानजन्य नाम रूपतंतु

करके (तन्तुनाभइव) ऊर्णनाभिजन्तुवत् (स्वभावतः) अपनी इच्छा करके सर्व कल्पनाधिष्ठान अपने स्वरूप को (आवृणोत्) आच्छादन करताहै सो परमात्मा (नः) हमारे को (ब्रह्माप्ययम्) ब्रह्ममें लयरूप मोक्षको अज्ञान निवृत्त करके (दधात) धारणकरो भाव देवो १०॥

एकोदेवःसर्वभूतेषुगूढःसर्वव्यापीसर्वभूतान्तरात्मा। कर्म्माध्यक्षःसर्वभूताधिवासःसाक्षीचेताकेवलोनिर्गुणश्च ११॥ श्वेताश्वतर० उप० अ० ६॥ अ०॥ एकदेव सर्व भूतोंमें गुप्तहै और सर्वव्यापक सर्वभूतोंका अन्तरात्मा अर्थात् सर्व भूतों को सत्ता स्फूर्तिका देने वालाहै और जगत्की विचित्रता के हेतु जो कर्म हैं तिनका अधिष्ठाताहै तथा सर्व भूतों में अ-धिष्ठान रूपसे निवास करनेवालाहै और साक्षात् सर्व जड़ वर्गका द्रष्टा चेतनमात्र (केवल) निरुपाधिक (निर्गुण) सत्त्वगुणादि वर्जितहै ११ और जब जीव केवल कर्मी अर्थात् कर्म में खचित रहताहै तब (कपड़ा) शरीर प्राप्त होताहै और (मोपड़आर) जब मोक्षके द्वार भूत ज्ञान को प्राप्त होताहै तब (नदरी) ज्ञानी कहा जाताहै तात्पर्य यहहै जैसे परमात्मा के स्वरूपकी वड़ियाई निरूपण करी

है तैसेही जीवात्माका स्वरूपभी इसीप्रकार का परमात्मा से अभिन्नही निरूपण कियाहै जब एक तत्त्वमें निष्ठा करताहै तब नदरी कहा जाताहै एकतत्त्वमें निष्ठा प्रतिपादक एक मंत्र लिखकर दिखलाते हैं ॥ तथाहि ॥ एकोहंसोभुवनस्यास्य मध्येसएवाग्निः सलिलेसंनिविष्टः। तमेवविदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्थाविद्यतेऽयनाय ॥ श्वेता० उप० अ० ६ मंत्र १५ ॥ अ० इस भुवनके मध्यमें (एक) अद्वितीय हंसहै "एकामवस्थांहत्वा अवस्थान्तरं गच्छतीतिहंसः" एक अवस्थाको हनन करके दूसरी आदिक अवस्थाको प्राप्त होवे जो वस्तु सो हंस कही जाती है और यह जीव चैतन्य जाग्रदवस्था अथवा स्थूल प्रपंचावस्था को हननकरके स्वप्नावस्था वा विराडवस्थाका बीजरूप हिरण्यगर्भावस्थाको प्राप्त होताहै इसी प्रकार हिरण्यगर्भ स्वप्नरूप सूक्ष्मावस्थाको हननकर कारणावस्थाको प्राप्त होताहै फिर गुरु उपदेशसे (अहंब्रह्म परिपूर्णोत्मास्मीति) इस बोधको प्राप्त होकर सुषुप्ति अवस्था को और तिसके कारण अज्ञानको तथा अज्ञानजन्य द्वैत भ्रमको नाशकर परिपूर्ण ब्रह्मभावको प्राप्त होताहै इससे हंस नामसे कहते

हैं ॥ सोई (सलिले) प्रकृति तथा तिसके कार्य रूप वर्ग में (संनिविष्ट) स्थित हुआ अग्निवत् होने से अग्निहै जैसे काष्ठमें वर्तमान अग्नि काष्ठोंकरके तिरस्कृतहुई मंथन रूप उपाय से निकालीहुई उन काष्ठों को दग्धकर शान्त होती है तैसे प्रकृति तथा तिसके कार्य में वर्तमान तिनसे तिरस्कृत तुल्य हुआ जब गुरु शिष्यरूप दोलकड़ी से मंथनकर प्रकटहोता है तब सर्वकारण कार्य वर्ग को दग्ध कर स्वरूपावस्थान रूप मोक्षको प्राप्त होताहै इस वास्ते चिन्मात्र वस्तुको अग्नि शब्द से बोधन किया है तिस चिन्मात्र को जानकर (मृत्यु) जन्म मरण प्रवाहको (अत्येति) तरजाताहै (अयनाय) मोक्ष के वास्ते (अन्यः पन्था न विद्यते) अन्य मार्ग नहीं तात्पर्य यह है पूर्व उक्त एक तत्त्व के ज्ञानसे बिना दूसरा कोई मोक्षका रस्ता नहीं ॥ इस समग्र विचारसे परमेश्वरकी वड़ियाई और मोक्षद्वार ज्ञानकी प्राप्तिसे (नदरी) ज्ञानी नामसे कथनहोना इतने अर्थका निरूपणहुआ। अब जो कहा है (कर्मी आवै कपड़ा) कर्म से जन्ममरणप्रवाह की शान्ति नहीं होती इसका निरूपण कर्मकी स्तुति तथा निन्दाद्वारा करते हैं तथाहि॥ तदेतत्सत्यंमन्त्रेषुकर्माणि कवयोयान्यपश्यंस्तानित्रेतायांबहुधा

संततानि । तान्याचरथनियतंसत्यकामाए षवः पन्थाःसुकृतस्यलोके १ अ० ॥ जो (कवि) सर्वज्ञ पुरुष मंत्रों में कर्मों को देखते हुये (तदेतत्) सो यह कर्म (सत्य) यथार्थ हैं अर्थात् जिस फलकी प्राप्ति वास्ते यथावत् सेवन कियेजाते हैं तिस फलको अवश्य उत्पन्न करते हैं अपने फल में व्यभिचारी न होनाही कर्मों में सत्यता है सो कर्म समग्र त्रेतायुग में वहुत प्रकार से (सन्तत) विस्तृत हुए हैं तिन कर्मों को हे सत्य फलकी कामनावाले जनो नियम से आचरण करो यह तुम्हारा (सुकृतस्य) पुण्य के (लोके) फल प्राप्ति में (पन्थ) मार्ग है १ यदालेलायतेह्यर्चिः समिद्धेहव्यवाहने । तदाज्यभागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेत् २ ॥ अ० ॥ जब (हव्यवाहन) अग्नि (समिद्ध) प्रज्वलित होवे (अर्चिः) ज्वाला (लेलायते) चलायमान होती होवे तब (आज्यभाग) आहुति के प्रक्षेपस्थान में आहुतियों को प्रक्षिप्तकरे परंतु कर्मका यथावत् करना बहुत क्लेशसाध्य है और यदि विघ्नहो जावें तब अनंत क्लेशका जनक होता है इसवास्ते विघ्न सहित कर्म को निष्फल कहते हैं ॥ यस्याग्निहोत्र

मदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यमनाग्रयणम
तिथिवर्जितंच। अहुतमवैश्वदेवमविधिनाहु
तमासप्तमांस्तस्यलोकान्हिनस्ति ३ अ० ॥
जिसका अग्निहोत्र कर्म दर्शकर्म पौर्णमासकर्म चातु-
र्मास्य कर्म शरद् काल कर्म अतिथिपूजन इनसे वर्जितहै
और (अहुत) कालातिक्रम से हवन कर्म तथा वैश्वदेव
कर्मरहित अथवा विना विधि से कराहुआ है तिसके
सत्यलोक पर्य्यन्त सर्वलोकों को नाश करता है,
पृथिवी १ अन्तरिक्ष २ स्वर्ग ३ महः ४ जन ५ तप ६
सत्य ७ यह सप्तलोक हैं, अथवा पिता १ पितामह २ प्र-
पितामह ३ पुत्र ४ पौत्र ५ प्रपौत्र ६ अपना आत्मा ७
यह सप्तलोक हैं इनका न उपकारक हुआ नाशक तुल्य
होताहै। तात्पर्य यह है विधिपूर्वक कर्म सफल होताहै
अन्यथा कराहुआ निष्फल प्रत्यवायका जनक होता है
इस से अत्यन्त सावधानता से कर्म करना उचित है॥
कालीकरालीचमनोजवाचसुलोहितायाचसु
धूम्रवर्णा। स्फुलिङ्गिनीविश्वरुचीचदेवीले
लायमानाइतिसप्तजिह्वा: ४ अ०॥ काली १
कराली २ मनोजवा ३ सुलोहिता ४ सुधूम्रवर्णा ५ स्फु-

लिङ्गिनी ६ विश्वरुचीदेवी ७ यह अग्निकी सप्त जिह्वा हैं और यह सम्पूर्ण (लेलायमान) चलायमान आहुति के भक्षण वास्ते हैं, **एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन्। तन्नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः** ५ अ० ॥ इन पूर्व उक्त सप्त प्रकाशमान जिह्वा में (यथाकाल) काल के अतिक्रम से रहित होकर और आहुतियों को ग्रहण कर जो अग्निहोत्र कर्म को करता है तिसको यह आहुतियोंके अधिष्ठातृदेवते सूर्य्यकी रश्मि द्वारा स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं जिस स्वर्ग में सर्व देवनका पति (एक) मुख्य इन्द्र सर्वोपरि विराजमान निवास करता है॥ **एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति। प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः** ६ अ० ॥ सो आहुतियों के देवते (सुवर्चसः) शोभनतेजवाले (एहि एहि) आयीए आयीए ऐसे वचन बोलते हुए सूर्य्य की रश्मिद्वारा यजमानको प्राप्त करते हैं प्रिय वचन कथन करते और पूजन करते हुये तुम्हारा (सुकृत) पुण्य फलरूप (ब्रह्मलोक) स्वर्ग

लोक यह है ऐसे कहते हैं। इतने प्रबन्धसे कर्म की स्वर्ग रूप फलसे स्तुति करी है। अब निन्दा बोधक वाक्य लिखते हैं॥ **प्लवाह्येते अदृढायज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म। एतच्छ्रेयो येभिनन्दन्तिमूढाजरामृत्युंतेपुनरेवापियन्ति ७॥ अ०॥** यह अग्निहोत्र आदिक यज्ञरूप (प्लव) तरण साधन (अदृढ़) शिथिलहैं जिनमें सोलह ऋत्विग् यजमान तथा तिसकी पत्नी इन अष्टादशकर कथन संपादन कराहुआ ज्ञानवर्जित कर्म है जो मूढ़ इनकोही (श्रेय) कल्याण मार्ग जानकर (अभिनन्दन्ति) स्तवन करते हैं सो पुनः पुनः जन्म जरामृत्यु को प्राप्त होते हैं॥ **अविद्यायामन्तरेवर्तमानाःस्वयंधीराः पण्डितंमन्यमानाः। जङ्घन्यमानाःपरियन्तिमूढा अन्धेनैव नीयमानायथान्धाः ८ अ०॥** कर्मरूप अविद्या में वर्तमान अपने आपको धीर और पंडित मानने वाले अनेक अनर्थ समूह कर ताड़न करेहुए मूढ़ संसार में भ्रमण करते हैं जैसे अन्ध पुरुष के अनुसार चलने वाले अन्ध स्थान गर्त्त आदिकों में पड़ते हैं तैसे अविवेकी गुरु लोकों के पीछे चलनेवाले कर्मी मूर्ख गर्त्त में पड़ते हैं॥

अविद्यायांबहुधावर्तमानावयंकृतार्थाइत्यभिमन्यन्तिबालाः। यत्कर्मिणोनप्रवेदयन्तिरागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ९ इष्टापूर्त्तंमन्यमानावरिष्ठंनान्यच्छ्रेयोवेदयन्तेप्रमूढाः। नाकस्यपृष्ठेतेसुकृतेऽनुभूत्वेमंलोकंहीनतरंवाविशन्ति १०॥ मुण्डक० उप० खण्ड २ अ०॥ पूर्व उक्त कर्मरूप अविद्या में बहुत प्रकार वर्तमान हम कृतार्थ हैं ऐसे बालक मानते हैं जिस परमतत्त्व को कर्मी लोक रागसे नहीं जानते तिस करके क्षीण भोगके प्रभावसे व्याकुल हुए भोगभूमि से गिरते हैं, केवल (इष्ट) अग्निहोत्रादि कर्म (पूर्त्त) वापी कूपादि निर्माण कर्म को श्रेष्ठ मानतेहुए सो मूर्ख अन्य श्रेय मार्गको नहीं जानते हैं वे पुरुष स्वर्गस्थान में पुण्यफल का अनुभव करके इस मनुष्यशरीर अथवा पशु शूकर चंडालादि हीनयोनि को प्रवेश करते हैं॥ इस स्थान में यह निश्चय करना जोकि श्री गुरुग्रन्थसाहिबजी में बहुत स्थानमें कर्म से स्वर्ग नरक जन्मकी प्राप्ति कथन करेंगे सो एक स्थानमें वेदवाक्य से निर्णय करदियाहै सर्वत्र जान लेना चाहिये॥ और पूर्व उक्त प्रकारसे ज्ञानका

निरूपणभी श्रुति प्रमाण से निर्णय करदिया है अब अद्वैत सिद्धान्त में गुरुजी अपनी निष्ठाको दिखाते हुए सर्व साधारण उपदेश करते हैं॥ **नानकएवैजाणीयै सभआपेसचियार ॥ ४ ॥** श्रीगुरुजी कहते हैं हे विवेकी जनो (एवै) ऐसा जानने को योग्यहै (सचियारआपेसभ) सत्यरूप परमात्मा अपने आपही सर्व रूप है अर्थात् ब्रह्मसे भिन्न कुछ वस्तु नहीं इसप्रकार का निश्चय करना चाहिये जैसे लोक में उपादान कारण से कार्य पृथक् सत्ता शून्य है इसीप्रकार संपूर्ण जगत् ब्रह्मरूप सत्ता से पृथक् सत्तारहित है ॥ इसी अर्थ को श्रुति कहती है ॥

तथाहि ॥ **आत्मावाअरेद्रष्टव्यःश्रोतव्यो मन्तव्योनिदिध्यासितव्योमैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदꣳसर्वं विदितम् ॥ ५ ॥ ब्रह्मतंपरादाद्योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्मवेदक्षत्रंतंपरादाद्योऽन्यत्रात्मनः क्षत्रंवेद लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनोलोकान्वेददे वास्तंपरादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान् वेदभूता नितंपरादुर्योऽन्यत्रात्मनोभूतानि वेदसर्वंतंप**

रादाद्यो ऽन्यत्रात्मनः सर्वंवेदेदंब्रह्मेदं क्षत्रमिमेलोकाइमेदेवा इमानिभूतानीदᳪंसर्वंयदयमात्मा ६ ॥ बृह० उप० अ० २ ब्रा० ४ ॥

अ० ॥ यह श्रुति याज्ञवल्क्य मैत्रेयी के संवाद की है याज्ञवल्क्य कहते हैं (अरे) मैत्रेयिप्रिये (वै) निश्चय करके आत्मा साक्षात् करना योग्यहै परन्तु प्रथम श्रवण मनन निदिध्यासन कर्त्तव्य है क्योंकि साधन सेवन से विना फल की प्राप्तिका संभव नहीं इससे प्रथम वेदान्त वाक्यों का तात्पर्य निश्चयरूप श्रवण करना फिर तर्क से आत्मा की संभावना करनी फिर एकाग्र ध्यान से चिन्तन करना पश्चात साक्षात्कार कर्तव्यहै और हे मैत्रेयि आत्माके श्रवण मनन निदिध्यासन दर्शनकरके यह सर्व प्रपञ्च विदित होताहै क्योंकि सर्व प्रपञ्च ब्रह्मसे पृथक् नहीं जब ब्रह्मरूप है तब जो इस ब्रह्म क्षत्र लोक देवता भूत सर्व प्रपञ्चको ब्रह्म से (अन्यत्र) भिन्न देखता है तिस भिन्न देखनेवाले का यह सर्व ब्राह्मण जाति से लेकर सर्व शब्द बोध्य संपूर्ण प्रपञ्च पर्यन्त निर्णीत वस्तु तिरस्कार करती हैं इस वास्ते यह ज्ञातव्य है जो यह सर्व है सो सर्वानुभवसिद्ध आत्माका स्वरूप है इसीसे गुरुजी कहते हैं ऐसे जानो अपने आप साचि-

यारही सर्वरूप है ॥ ४ ॥ जेकर परमात्मा ज्ञातव्य है तब जो ज्ञानका विषय होताहै सो दृश्य तथा एक देश में स्थित होताहै जब परमात्मा ऐसाहै तब कार्य और एक-देशी तथा ज्ञातासे भिन्न होगा इस शंकाके निरास वास्ते कहते हैं ॥ **थापियानजायकीतानहोयआपेआपनिरंजनसोय** ॥ सो परमेश्वर सर्वव्यापी है इसवास्ते एकदेश में स्थापन नहीं कियाजाता और न किसी का (कीता) कार्य्य होसकता है क्योंकि परिच्छिन्न वस्तु कार्य्य होती है परमात्मा व्यापक है इससे कार्य्यभी नहीं और ज्ञाता से भिन्नभी नहीं किन्तु (आपेआपि) अपने आपही सर्वका ज्ञाता है उसका कोई दूसरा ज्ञाता नहीं (निरंजनसोय) सो परमेश्वर (अंजन) अज्ञानरूप अविद्यारहित है। श्रुति वचन भी परमात्माको सर्वव्यापकता सर्वज्ञातापन अन्य ज्ञातासे वर्जितपन अविद्या रहित कार्य्य विलक्षणता रूप बोधन करते हैं ॥

तथाहि ॥ **अपाणिपादोजवनोग्रहीतापश्यत्यचक्षुः सशृणोत्यकर्णः। सवेत्तिवेद्यंनचतस्यास्तिवेत्तातमाहुरग्र्यंपुरुषंमहान्तम्** ॥ श्वे० अ० ३ मं० १९ ॥ **निष्कलंनिष्क्रियंशान्तं**

निरवद्यंनिरञ्जनम्। अमृतस्यपरंसेतुंदग्धेन्धनमिवानलम्॥ श्वे० अ० ६ मं० १९॥

अ०॥ परमेश्वर हस्त पाद चक्षु श्रोत्रकरके वर्जितहै और वेगवान् तथा ग्रहण करनेवाला और देखने श्रवण करनेवाला है तात्पर्य्य यहहै इन्द्रियसमुदाय से परमेश्वर वर्जितहै परंतु जितने गमन ग्रहण दर्शन श्रवणरूप कार्य्य करनेवाले हैं वे सर्वही चेतन की सन्निधिमात्र से कार्य्य करते हैं इसवास्ते चेतनदेवही सर्वकार्य्यका कर्त्ता कहा जाताहै और सोई पूर्व उक्त युक्तिसे अन्तःकरण वर्जित हुआ भी वेद्यवस्तुमात्रको जानताहै और तिसका ज्ञाता कोई नहीं तिसको समग्र श्रुतिवचन महत् सर्वपुरोंमें पूर्ण सर्वके प्रथम वर्त्तमान कथन करते हैं॥ परमात्मा कला क्रिया दोष अविद्यामलरहित शान्तस्वरूप है (कला) अवयव (क्रिया) उत्पत्ति नाश इनसे रहित कहने से कार्य्यताका निषेध कराहै और सो परमेश्वर जैसे काष्ठादि इन्धनको दाहकरके अग्नि वर्त्तमान होती है तैसे ज्ञात हुआ अविद्या तथा तिसके कार्य्यको दग्ध करके स्वरूपावस्थ होताहै ऐसा जाना हुआ (अमृत) मोक्षका परमसेतुरूप होताहै तात्पर्य्य यहहै जैसे सेतु परदेश प्राप्तिका हेतु है इसीप्रकार अविद्या और तिसके

कार्य से रहित परमात्मा जाना हुआ स्वरूपावस्थान रूप मोक्षका हेतु होजाताहै॥ हे भगवन् जैसा आपने परमात्माका स्वरूप कथन कराहै इस प्रकारका ज्ञान कैसे प्राप्त होताहै इस शंकाका समाधान गुरुजी करते हैं॥

जिनसेवियातिनपाया माननानकगावीयेगुणीनिधान॥ जिन पुरुषों ने ईश्वर तथा गुरुको भक्ति से सेवन कराहै तिनों ने शास्त्रज्ञान तथा अनुभव ज्ञान रूप मान पाया है श्रीगुरुजी कहते हैं जब उनको ज्ञान स्वरूप मान प्राप्त हुआ तब (गुणीनिधान) सर्व गुणों वाला सर्व प्रपंचकी लयका आधार उनोंकरके (गावीये) गायनकरा जाताहै। तात्पर्य यहहै जब भक्तिसे परमेश्वर प्रसन्न होताहै तब वेदार्थकी प्रतीति होने से परमात्मा के स्वरूप भूत गुण तथा उपलक्षण स्वरूप गुण और प्रपंच की उत्पत्तिलयाधारताको गायन करते हैं॥ श्रुतिप्रमाण लिखते हैं॥

यस्यदेवेपराभक्तिर्यथादेवे तथा गुरौ। तस्यैतेकथिताह्यर्थाः प्रकाशन्तेमहात्मनः॥ श्वे० अ० ६ मं० २३॥ सविश्वकृद्विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञःकालकालोगुणीसर्वविद्यः॥

प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ॥ श्वे० अ० ६ मं० १६ ॥

अ० ॥ जिसकी गुरु तथा परमेश्वर में तुल्य भक्तिहै तिसमें महात्माको वेदमें कथित अर्थ अपने आप प्रकाश होजाते हैं ॥ सो परमेश्वर विश्वका कर्त्ता है और विश्व का ज्ञाता तथा आत्माका स्वरूप हुआ सर्वका (योनि) उपादान कारणहै (ज्ञः) ज्ञानस्वरूप कालकाभी काल रूपहै और सत्यत्व ज्ञानत्व आनंदत्वादिक स्वरूप भूत गुणों वालाहै और (सर्वविद्यः) सर्वस्य वस्तुमात्रस्य विद्या ज्ञानं यस्मात् स सर्वविद्यः ॥ जिसके ज्ञानसे सर्व वस्तुमात्रका ज्ञान होताहै ऐसा परमेश्वरहै और सर्ववेद प्रतिपाद्य होने से प्रधानहै और (क्षेत्रज्ञ) जीवस्वरूप (पति) सर्वका स्वामी है और सत्त्वरजस्तमोगुणों का (ईश) नियन्ताहै और अज्ञात हुआ संसार स्थितिरूप बन्ध का और ज्ञातहुआ मोक्षका हेतुहै ॥ इस से आदि लेकर अनंत वचनों से सो पुरुष परमात्मा को गुणों निधान रूपसे गायन करते हैं क्योंकि उनपर ईश्वर तथा गुरुकी कृपा है ॥ हे भगवन् जब ईश्वर गुरु कृपासे प्राप्त ज्ञानवान् सो पुरुष परमात्मा के गुण तथा स्वरूप को गायन करें तब जिज्ञासु जनों को क्या कर्तव्यहै इस पर

श्रीगुरुजी कहते हैं ॥ गावीयैसुणीयै मनरखीयै भाउ ॥ जिस कालमें सत्पुरुषों करके परमात्मा गायन कराजाताहै तिसकालमें तिस परमात्माका श्रवण करना योग्यहै सो श्रवण दो प्रकारका है एक तो गुरुमुख से उपदेश श्रवण करना जिसके श्रवण से आत्माका ब्रह्म रूपसे अनुभव होताहै और दूसरा वेद गुरु वचनों का पूर्व उक्त षट् विधि लिङ्गोंसे तात्पर्य्यका अवधारण करना रूप श्रवणहै फिर जब गुरु उपदेश और तात्पर्य्यका निश्चय होगया तब (मनरखीयै) अपने मनमें मनन तथा एकाग्र चिन्तनरूप निदिध्यासनकरके स्थिरता करनी योग्यहै जब मनन निदिध्यासन गुरु उपदेश से पश्चात् होचुके तब (भाउ) स्वरूपका यथावत् अखण्ड साक्षात्कार होताहै ॥ साक्षात्कार से अनन्तर क्याहै इसका उत्तर लिखते हैं ॥ दुःखपरहरिसुखघरलैजाय ॥ समूलदुःख का (परहरि) नाश होताहै और (सुख घरलैजाय) सर्व सुखोंका जो (घर) आश्रयहै तिसमें लीन होताहै तात्पर्य्य यहहै आत्माके अपरोक्ष ज्ञानसे सहित कारणके दुःखकी निवृत्ति और सर्वसुखोंका स्थानरूप जो आनंदघन परमार्थ तत्त्व तिसकी प्राप्ति होती है यह अर्थ वेदसे निर्णीत है ॥

तथाहि ॥ यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः । तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥ श्वे० उप० अ० ६ मं० २० ॥

अर्थ ॥ केवल ज्ञानसे अज्ञान नाशद्वारा सर्व दुःखनका नाश होताहै प्रकारान्तर से दुःखकी सर्वथा निवृत्ति नहीं होती इस बातकी सिद्धिवास्ते विलक्षण प्रकारको दिखाते हैं, (यदा) जिस कालमें मनुष्य चर्मवत् आकाशको एकट्ठा करलेंगे (तदा) तिस कालमें परमात्मदेवको न जानकर दुःखका भी अन्त होजायगा तात्पर्य यहहै सर्व दुःखोंका मूल कारण स्वरूपका अज्ञान है सो जेकर दूर नहीं होवेगा तव सर्व दुःखोंका नाश भी नहीं होसकता इस वास्ते दुःखनाशका कारण स्वरूपका बोध है ॥ जैसे आकाशका मनुष्यों करके चर्मवत् वेष्टन नहीं होसकता तैसे परमात्माके ज्ञानसे विना दुःखोंका अत्यन्त नाश नहीं होसकता ॥ जब अज्ञान की ज्ञानसे निवृत्ति हुई तब आनंदघन वस्तुमें उपाधि की निवृत्ति से लय होती है, और श्रुतिमें सर्वआनंद परमात्माका लेश रूपसे निर्णयकरे हैं, तथाहि ॥ एतस्यैवाऽऽनन्दस्यान्यानिभूतानिमात्रामुपजीवन्ति ॥ बृह०

उप० अ० ३ ब्रा० ३॥ अर्थ॥ इस आनन्दरूप परमात्मवस्तु के (मात्रां) लेशमात्र आनन्दको अन्य यावत् भूत (उपजीवन्ति) आश्रय करते हैं अर्थात् परमेश्वरके लेशमात्र सुखको आश्रय करके तृप्त होरहे हैं॥ जैसे समुद्रके कणोंका आश्रय समुद्र सबकण से अभिन्न है तैसे विषय तथा तिनके भोक्तारूप उपाधि से सर्व लेशानन्दका अभिन्नरूप अधिष्ठान महानन्दरूप आत्मा है॥ हे भगवन् पूर्व उक्त श्रवण मनन ध्यानसे जिनको स्वरूप साक्षात् प्रतीतहुआ है तिनकी किस प्रकार की स्थिति है क्योंकि प्रारब्ध कर्मके भोगरूप प्रतिबंधक से उनको विदेह कैवल्यरूप मोक्ष तो नहीं प्राप्त होती इससे उन गुरुमुखोंकी स्थितिका निरूपण करिये इस प्रश्नका उत्तर लिखते हैं॥ **गुरुमुखिनादंगुरुमुखिवेदंगुरुमुखिरहियासमाई॥** "गुरुमुख सनमुख मनमुखवेमुखिया" इस गुरुमहाराज के वचन से जो गुरुभक्त साधन सम्पत्तियुक्तहै सो गुरुमुखहै और जो गुरु विमुख साधन सम्पत्ति रहितहै सो मनमुखहै। यांते यह अर्थ हुआ जो गुरुभक्त साधन सम्पत्ति सम्पन्नहैं वे नाद तथा वेद को विचारते हुये (समाई) सामान्य चेतनरूप (रहिया) स्थिरताको प्राप्तहोते हैं॥ तात्पर्य यहहै गुरुमुख पुरुष वेद

का विचार करके फिर सर्व वेदका साररूप जो ॐकारहै तिसकी मात्राकरके गुरुरूप त्रिदेवन का ध्यान कर तुरीय बोधक अर्द्धमात्रा का चिन्तन करके फिर नादका ध्यान करते हुये पूरण ब्रह्म सामान्य चेतनरूप अपने आपको जानते हैं ॥ ॐकार का सगुण से लेकर नाद पर्यन्तका ध्यान करने का प्रकार ध्यानविन्दु उपनिषद्में लिखाहै ॥

तथाहि ॥ अतसीपुष्पसंकाशंनाभिस्थानेप्रतिष्ठितम् । चतुर्भुजंमहावीरंपूरकेणविचिन्तयेत् १ कुम्भकेनहृदिस्थानेचिन्तयेत्कमलासनम् । ब्रह्माणंरक्तगौराङ्गंचतुर्वक्त्रंपितामहम् २ रेचकेनतुविद्यात्माललाटस्थंत्रिलोचनम् ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशंनिष्कलंपापनाशनम् ३ त्रिस्थानञ्चत्रिमार्गञ्चत्रिब्रह्मचत्रिरक्षरम् । त्रिमात्रञ्चार्द्धमात्रंचयस्तंवेदसवेदवित् ४ तैलधारामिवाच्छिन्नंदीर्घघण्टानिनादवत् ॥ अवाग्जंप्रणवस्याग्रंयस्तंवेदसवेदवित् ५ ॥ ध्यानबिन्दु ॥ उप०

अथ ॥ विष्णु ब्रह्मा शिवरूप तीन मूर्त्तियों को गुरु

रूप जानकर ध्यान करने से अज्ञानकी निवृत्ति होती है इस से प्रथम इन सगुण स्वरूपों का ध्यान कहते हैं, अलसी के पुष्पवत् श्याम प्रकाशरूप विष्णुभगवान् चतुर्भुज महावीरता युक्तका नाभिस्थान में षोड़श प्रणव को उच्चारण करता हुआ पूरक प्राणायाम करके चिन्तन करे परन्तु तिस विष्णुभगवान् को ॐकारकी द्वितीय मात्रा उकाररूप जाने और हृदय कमल स्थान में रक्त गौरवर्ण चतुर्मुख सर्व के पितामह ब्रह्माजी का चतुःषष्टि प्रणवकरके ॐकारकी प्रथममात्रा अकाररूप जानकर कुम्भकसे ध्यानकरे और रेचकप्राणायाम से द्वात्रिंशत् ॐकार करके ललाटदेश में त्रिनेत्र शुद्धस्फटिकवत् प्रकाशमान पापके नाशक वास्तव निष्कल स्वरूप का (विद्यात्मा) साधक ध्यानकरे विद्यायुक्तहै आत्मा अन्तःकरण जिसका सो विद्यात्मा कहाजाता है॥ और तीन स्थान वाला तथा तीन उपासना मार्गवाला और तीन हैं उपास्य ब्रह्मा विष्णु महेश जिसके तथा तीन अक्षर अकार उकार मकारवाला इसीप्रकार अकारादि तीन मात्रावाला तथा अर्द्धमात्रावाला जो ॐकारहै तिसको जो जानताहै सो वेदका ज्ञाताहै॥ तात्पर्य यहहै अकार उकार मकाररूप सकल वेदहैं और अकारादि मात्रात्रय

अर्द्धमात्रारूप जो बिन्दु अनुगत पुरुष तिसका स्वरूपहै इस प्रकार से मात्रा तथा अर्द्धमात्रा का जो अधिष्ठान रूप पुरुष तिसको जो जानता है सो वेदको जानताहै ॥ अब एक मंत्र से नाद का निरूपण करते हैं ॥ जो प्रणव का अग्रवत् अग्रहै और (अवाग्रज) प्रणवके शान्त होने से प्रतीयमान है तैलधारावत् (अच्छिन्न) एकरस दीर्घ घण्टेके (निनादवत्) सूक्ष्म शब्दवत् नादहै तिस को जो जानताहै सो सर्व वेद के अर्थको जानता है ॥ तात्पर्य यहहै शान्त स्वरूप परमात्मा में सगुणरूप शक्ति से नाद और नाद से बिन्दु तिस बिन्दु से शब्द ब्रह्म और शब्दब्रह्म ॐकार रूपहै तिस ॐकारकी जब मात्रा में सब प्रपञ्चका लय चिन्तनकरा फिर अकार का उकार में उकारका मकार में मकार का बिन्दु में इस प्रकार से लय चिन्तन करते हुये जब बिन्दुका नादमें लय चिन्तन करा फिर नादका सगुणरूप शक्तिमें शक्तिका शान्त स्वरूप निर्गुण शुद्ध चैतन्यमें लय चिन्तन करके शा- न्तात्मा ॐकारकी ध्वनि का साक्षी परिशेषरहा जब जाना तब सर्व वेद का अर्थ अधिष्ठानाविशेषरूप जाना जाताहै ॥ प्रकरणमें वार्त्ता यह निश्चित हुई जो कि गुरुमुख जन वेदका विचारकर नादरूप ॐकारके ध्यान

से शान्तस्वरूप में समाय रहते हैं हे भगवन् उन गुरुमुखों के जो गुरु हैं उनकी स्थिति किस प्रकारकी सो गुरुमुख पुरुष जानते हैं। क्या उनको सर्व मनुष्यों के तुल्यजानते हैं अथवा सर्व से विशेष जानते हैं इसपर कहते हैं॥

गुरुईश्वरगुरुगोरखबरमागुरुपारबतीमाई ॥

सो गुरुमुख पुरुष गुरुजनों को (ईश्वर) शिवरूप जानते हैं क्योंकि जैसे रुद्रभगवान् संसारका संहार करता है इसीप्रकार गुरुभी अपने उपदेशजन्य ज्ञान से जन्म कारण अज्ञान को नाश करते हैं इस से संहारक शक्ति युक्त होने से गुरु ईश्वररूपहैं इसीप्रकार (गोरख) विष्णु रूप गुरुहैं क्योंकि जैसे विष्णुवेद विरोधि दैत्यों का नाश कर वेदमार्गकी रक्षाकरता है तैसे गुरुभी वेद विरोधि नास्तिकों का तिरस्कार करके अद्वैत वस्तुमें वेदका तात्पर्य निर्णय करके वेदमार्गकी रक्षा करते हैं इससे विष्णुरूप हैं (बरमा) इस शब्द का मूल ब्रह्माशब्दहै अत्यन्त वृद्धि हुये का नाम ब्रह्मा है जैसे सर्वत्र वेदमर्य्यादाकी स्थिरता करने से सर्व जगत में वृद्धि को प्राप्त हुआ ब्रह्मा कहा जाताहैतैसे गुरुभी सर्व अधिकारी जनों में वेद सम्प्रदाय की स्थिरता करने से ब्रह्मारूपहैं॥ इसीप्रकार गुरु पारबती (मा) लक्ष्मी (ई) सरस्वती रूपहैं क्योंकि जैसे सतीका

स्वरूपही हिमालय के शरीरसे प्रादुर्भाव होकर नारदने परीक्षा के वास्ते विरुद्ध उपदेश करा तब भी पारवती ने शिवसे चित्त को चलायमान नहीं करा तैसे ब्रह्मनिष्ठ गुरु भी प्रारब्ध से प्राप्त अनन्त विक्षेप से अपनी अद्वैत निष्ठा से चलायमान नहीं होते इससे पार्वतीरूपहैं ॥ और लक्ष्मी भगवती जैसे अपने संयोगसे रंकता निवृत्तकर धनिताको सम्पादन करती है तैसे गुरु भी अपनी समीपतासे शिष्यकी परिच्छिन्नाध्यास रूप रंकताको निवृत्त कर व्यापक ब्रह्मभाव रूप धनिताको प्राप्त करते हैं ॥ इस वास्ते गुरु लक्ष्मीरूपहैं । इसीप्रकार जैसे सरस्वती भगवती अपने उपासकजनोंको शीघ्र विद्याकी प्राप्ति करती है तैसे गुरु भी अपनी शरण प्राप्त भक्तजनोंको शीघ्रही ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति करते हैं॥ यांते गुरु सरस्वतीरूपभी हैं॥ इसी वास्ते शिवगीताके प्रथमाध्यायमें गुरुकी महिमा लिखीहै॥

तथाहि ॥ मनुष्यचर्मणाबद्धःसाक्षात्परशिवःस्वयम् । सच्छिष्यानुग्रहार्थायगूढःपर्य्यटतिक्षितौ १ प्राकृतैःसंस्कृतैर्वापिगद्यपद्यात्तरैस्तथा ॥ देशभाषादिभिःशिष्यंबोधयेत्तसद्गुरुःस्मृतः २ ॥

अ० ॥ मनुष्य चर्मकरके संवेष्टित अपने आप साक्षात् पर शिवरूप श्रेष्ठ शिष्योंपर अनुग्रह वास्ते पृथिवी में विचरताहै प्राकृत तथा संस्कृत और गद्यपद्य अक्षरों करके तथा देशभाषादिकों करके जो शिष्यको बोधकरे सो सद्गुरु कहाता है ॥ हे भगवन् आपने शिव विष्णु ब्रह्मा तथा इनकी तीन शक्तिके गुणयुक्त होनेसे गुरुको ईश्वरादि स्वरूप कहा परन्तु गुरुका वास्तव स्वरूप आप मेरेको कृपाकरके बतलावो इसपर श्रीगुरुजी कहते हैं॥

जेहउजाणाआखानाहीकहणाकथनुनजाई। गुराइकदेहिबुझाई॥ हे शिष्य जेकर मैं तिनके स्वरूप को इदंता यादृशतादृश रूपसे जाना तब क्या तेरे प्रति (आखानाही) न कथन करता किन्तु जरूर कथन करता परन्तु उनका जो वास्तव स्वरूपपर शिव रूपहै सो (कथन) वागिन्द्रिय से (कहणा) कहा नहीं जाता परन्तु उन महात्मा गुरोंने (देहि) सर्व देहोंमें जो एक वस्तु वर्त्तमानहै सो (बुझाई) जनायदयी है देहि पदमें जो हकारमें इकारहै सो सप्तमी विभक्तिके अर्थका द्योतकहै। भाव यहहै सर्व समष्टि व्यष्टि स्थूल सूक्ष्मकारण शरीरोंमें जो एक चैतन्य देवहै सो अपना निजरूप गुरोंने बोधन कराहै जैसे सर्व देहों में एक चेतन है तैसे

"अमृतवेलासचनाउ वडियाईवीचार" इस पंक्तिके व्याख्यानमें श्रुतिप्रमाण से निरूपण कराहै देखलेना॥ हे भगवन् जो वस्तु आपको गुरोंने जनाई है सो वस्तु आपनें अपने से भिन्नरूप से जानी है वा अपना आत्मा रूपसे जानी है इसका उत्तर कहते हैं॥ **सभना जीया काइकुदाता सोमै विसरिनजाई ५॥** जो ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्य्यन्त सर्व जीवनको कर्म उपासना ज्ञानका फल देनेवाला एक परमेश्वरहै (सोमैं) सो मेरा स्वरूप है इसीसे (विसरिनजाई) हमको कभी भूलता नहीं॥ ऐसे अपना आत्मारूप हमने उस चैतन्यको केवल गुरु उपदेश से जानाहै अन्यथा नहीं जाना इसीवास्ते आत्मदेव केवल गुरुउपदेश से ज्ञात होताहै यह वार्त्ता पूर्व षट्लिंगोंके व्याख्यानमें निर्णीतहै इस स्थानमें जो कर्मादिकोंके फल दाता अन्तर्यामीको आत्माका स्वरूप बोधन कराहै तिसमें विरोधके दूर करने वास्ते उपनिषद् तात्पर्य्य के ज्ञाताओं ने भागत्यागलक्षणा से उपाधि दृष्टि छोड़कर उपहित चेतनमात्र वस्तुको एक समझकर अखण्ड वस्तु जनाई हैं क्योंकि कारण उपाधिविशिष्ट चेतन ईश्वरहै और अन्तःकरण व्यष्टि अज्ञान उपाधि विशिष्ट चेतन जीवहै इन दोनोंमें कारण और अन्तःक-

रणं व्यष्टि अज्ञान उपाधिको मिथ्याभूत चेतनसत्ता से पृथक्सत्ता शून्य जानकर अथवा इन उपाधियोंको चेतन में लीनकरके चिन्मात्रवस्तुको अविरोधि जानकर अभेद का उपदेश कराहै। जैसे (एषतआत्मासर्वान्तरः) बृ० ३।४।१। (एषतआत्मान्तर्याम्यमृतः) बृ० ३।७।३। तत्सत्यंसआत्मातत्त्वमसि॥ छां० ६।८।७। यह बृहदारण्यक छान्दोग्य उपनिषदों में अभेदका उपदेश लक्षणा आदिक प्रकारों से कथन कराहै तैसे गुरुजीने भी अभेद कथन कराहै॥ श्रुत्यर्थ॥ याज्ञवल्क्य ऋषि उपस्तऋषि से कहते हैं जो प्राणादिकों की चेष्टाका हेतु साक्षात् अपरोक्ष सर्वान्तर ब्रह्महै सो (ते) तेरा (आत्मा) स्वरूप है और यह अमृत स्वरूप अन्तर्यामी तेरा (आत्मा) स्वरूपहै श्वेतकेतु पुत्रसे उद्दालकऋषि कहतेहैं सो ब्रह्मरूप सतवस्तु (सत्य) विनाशरहित है और सोई आत्मा जीवरूप है सो सत् रूपवस्तु हे पुत्र श्वेतकेतो (त्वमसि) तूं हैं॥ जहां कहीं गुरु वचनों में अभेदका उपदेश होवे तहां सर्वत्र पूर्व उक्त भाग त्याग लक्षणाके प्रकार से विरोध दूरकरके अभेद जानलैना॥ पूर्व सोपान में परमात्माके यथावत

स्वरूपका निरूपण और गुरुभक्ति तथा परमात्माका गुणी निधानादिरूप से कीर्त्तन और श्रवण मनन निदिध्यासन रूप साधन और तिन साधनोंका फल रूप ज्ञान और ज्ञानका फल दुःख निवृत्ति और सुखमें लीनतारूप भी निरूपणकरा और गुरुमुखों की स्थिति तथा गुरुकी प्रशंसा फिर ब्रह्मविद्याका स्वरूप भी कहा अब उत्तर षष्ठ सोपान में गुरु उपदेश जन्य ज्ञानरूप तीर्थ में स्नान का मुख्य साधन शिष्यमें गुरुकी प्रीतिहै और गुरुकी प्रीति का कारण शिष्यको विवेक वैराग्य युक्तताहै और विवेक वैराग्य युक्तता के साधन वेदानुवचन यज्ञ दान तप आदिक निष्काम कर्म्म हैं जब इन साधनों से गुरु के प्रेम का विषय शिष्य होताहै तब गुरुका उपदेश श्रवणकरके ब्रह्मविद्या को प्राप्त होताहै इतने अर्थका निरूपण करते हुये पूर्व सोपान में उक्त महावाक्यका अभ्यासलिङ्ग को बोधन करने वास्ते फिर उपदेश अपने मनद्वारा करते हैं

तीर्थनावाजेतिसभावाविणभाणे किनायकरी
जेतीसिरठउपाईवेखाविणकर्माकिमिलैलयी

ज्ञानरूप तीर्थ में तब स्नान करूंगा जब तिस ज्ञानके उपदेशक गुरोंको (भावा) प्रियलगोंगा विना प्रिय लगे क्या स्नान करूंगा तात्पर्य यहहै किसी भी प्र-

कारसे नहीं करसक्ता सत् वस्तुका परोक्षरूप से जानना ज्ञानतीर्थ है और तिसका हृदय में यथावत्प्रकाश होना स्नानरूपहै, तात्पर्य यहहै विवेक वैराग्यवान् पुरुष में ब्रह्मनिष्ठ गुरुका प्रेम होताहै और उसी को उत्कट ज्ञान की इच्छा होती है गुरु जब उत्कट बोधकी इच्छा विवेक वैराग्य संयुक्त शिष्य को देखते हैं और कुतर्क दूषित बुद्धिसे शिष्यकी बुद्धिश्रेष्ठ अत्यन्त निर्मल देखते हैं तब प्रेम करते हैं जैसे कठउपनिषद् में यमराजा ने नचकेता शिष्यकी बहुतप्रकार से परीक्षा करके कुतर्करहित विवेक वैराग्य सम्पन्न देखकर अत्यन्त प्रेम कराथा तिसी प्रकार जब गुरुके प्रेमका विषय होवेगा तभी ज्ञान तीर्थ में स्नान करेगा परन्तु यह विवेक वैराग्य सहित उत्कट बोधकी इच्छा चित्तकी शुद्धि के कारण निष्काम धर्म से होती है इसवास्ते गुरुजी निष्काम धर्मोंका उपदेश करते हैं) सिरठका मूल शब्द सृष्टि है (वेखा) हम अपने अनुभव तथा वेद वचनों से देखते हैं (जेती) जितनी सृष्टि है विना कर्म से क्या (मिलैलयी) मिलने लगाहै तात्पर्य यहहै सकाम कर्मते विना इस लोक तथा परलोक का सुख नहीं मिलता और निष्काम कर्म से विना उत्कट बोधकी इच्छा विवेक वैराग्यादिकों का जो कारण चित्त

की शुद्धि सो होती नहीं इस से निष्काम धर्म अवश्य कर्त्तव्यहै ॥ अव इस अर्थकी पुष्टिवास्ते श्रुतिप्रमाण लिखते है ॥ **नैषातर्केणमतिरापनेयाप्रोक्तान्ये नैवसुज्ञानायप्रेष्ठ । यान्त्वमापः सत्यधृतिर्वतासित्वादृङ्नोभूयान्नचिकेतःप्रष्टा॥ कठ० व० २। ९।** अर्थ॥ कठकी यह श्रुति है तहां यह प्रसंग है नचिकेताने यमराज को प्रसन्न करके आत्मज्ञान वरमांगा तव यमराज ने कहा पृथिवी का राज्य सुवर्ण हस्ति अश्व दीर्घ जीवन पुत्र पौत्रादि पदार्थ मांगले इस प्रकार वहुतप्रकार लोभसे जब आत्मज्ञानरूप वरसे न चलायमान हुआ तव आत्मा का उपदेश वड़े प्रेम से करा तिसी प्रकरणकी यह श्रुति है ॥ हे (प्रेष्ठ) प्रिय शिष्य नचकेता तर्ककरके (गुरुने कथनकरी हुई आत्मज्ञानरूप मति दूर करने को योग्य नहीं (अन्य) शुद्ध वुद्धि शिष्य करके सुष्ठुज्ञान वास्ते होती है जिस मति को तू प्राप्त हुआ है हे प्रिय तू (वत) हर्ष होताहै (सत्यधृति) सत्य धारणावालाहै हे नचकेता तुम्हारे सदृश (प्रष्टा) पूछनेवाला हमारा पुत्र वा शिष्य होवो यह हम मांगते हैं ॥ इस श्रुति में वैराग्य आदिक साधनयुक्त होने से नचकेता शिष्य में यमराज

गुरुका प्रेम सुनाहै इस से गुरुजी भी गुरुके प्रेमका हेतु वैराग्यादिक साधनों का उपदेश करते हैं॥ इन वैराग्यादिकों का साधन निष्काम धर्म है यह वार्त्ता श्रुतिप्रमाण से निर्णीतहै॥ तथाहि॥ तमेतंवेदानुवचनेनब्राह्मणा विविदिषन्तियज्ञेनदानेनतपसाऽनाशकेन॥ बृ० अ० ४ ब्रा० ४। २२॥ अर्थ॥ तिस इस उपनिषद् प्रतिपाद्य ब्रह्मचेतन को (ब्राह्मण) ब्रह्मभावकी इच्छा वाले मुमुक्षुपुरुष (वेदकापाठ) यज्ञदान रागद्वेष रहित विषय सेवनरूप तप करके (विविदिषन्ति) जाननेकी इच्छा करते हैं॥ इस श्रुति में वेदानुवचन यज्ञ दान तप उपलक्षित निष्काम धर्मको ज्ञानकी इच्छा का हेतु कहाहै सो ज्ञानकी इच्छा विना वैराग्यादिक साधनों के होती नहीं इस से जितने साधनों विना ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती उतने साधनोंकी सिद्धि निष्काम धर्म से अवश्य होती है इस तात्पर्य से गुरुजी कहते हैं (जेतीसिरठउपाई वेखाविण कर्मा किमिलैलयी) तात्पर्य गुरुजी का यहहै निष्काम धर्म से चित्त शुद्धि और चित्त शुद्धि से वैराग्यादिक और वैराग्यादिकों से गुरुका शिष्य में प्रेम फिर उपदेशजन्य ज्ञानतीर्थ में अखण्ड अनु-

भवरूप स्नान होताहै॥ मतिविचरतनजवाहरमा णकजेइकगुरुकीसिखसुणी गुराइकदेहिबुझा यी। सभनाजीयाकाइकदातासोमैं विसरन जाई ६॥ जब गुरुकी (इक) एक वस्तुमें (सिख) शिक्षाको शिष्य श्रवण करताहै तव (मति विच) बुद्धि में संस्कृत संकेत से रत्नपद बोध्य और यावनीभाषा से जवाहरपद बोध्य माणक तुल्य चैतन्य प्रतीत होताहै तात्पर्य यहहै जैसे माणकरत्न विशेष प्रकाशरूप हुआ स्वसमीपवर्त्ति पदार्थोंका प्रकाश करताहै तैसे चैतन्य वस्तु प्रकाश स्वरूप हुआ स्वसंबद्ध सर्ववस्तुका प्रकाश करता है इससे चैतन्य आत्मा माणक तुल्य कहाजाताहै सो चैतन्य वस्तु बुद्धिमें गुरु उपदेश को श्रवण करके जान लेता है॥ जो मूलमंत्र में (सैभं) शब्दसे बोधन कराहै॥ इसी वास्ते बुद्धिस्थचेतन को ज्योतिरूपसे श्रुति में प्रतिपादन कराहै, तथाहि॥ कतमआत्मेतियोऽयंविज्ञानमयः प्राणेषुहृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः, बृ० अ० ४ ब्रा० ३। अर्थ॥ यह श्रुति जनक याज्ञवल्क्य के संवादकी है पूर्व प्रसंग यहहै जाग्रदवस्था में सूर्य्य चन्द्र अग्न्यादिक को व्यवहार दशा में कार्यकरण

संघात के ज्योति सिद्धकरके स्वप्नकाल में केवल आत्मा को ज्योति कथन करा फिर जनक प्रश्न करते हैं (कतम आत्मेति) हे याज्ञवल्क्य देह इन्द्रिय प्राण मन इनमें आत्मा कौन है इति शब्द प्रश्नकी समाप्तिका बोधकहै जो कि इतना प्रश्न वाक्य है याज्ञवल्क्य कहते हैं जो यह परमात्मस्वरूप वस्तु (विज्ञानमय) विज्ञाननाम बुद्धिका है यांते जो बुद्धि उपाधिक चैतन्य प्राणों के मध्य वर्त्तमान हुआ (हृद्यन्तर्ज्योति) बुद्धि के अभ्यन्तर ज्योतिस्वरूप है और वास्तव (पुरुष) पूर्णरूप है क्योंकि पूर्ण वस्तुका नाम पुरुषहै॥ इसी वास्ते गुरुजीने पूर्वव्याख्यात दोपंक्ति से सर्वदेहों में एक रूपता और कर्मादिकों के फलदाता परमेश्वर से अभिन्नता बोधनकरी है॥ इन पंचमी और षष्ठी सोपान से अद्वैत वस्तुको गुरु उपदिष्ट शब्द से गम्यतारूप अपूर्वताका और वारंवार कथनतारूप अभ्यासका उपदेश कराहै॥ मूलका स्पष्ट अर्थ यहहै सो बुद्धिमें स्वयंप्रकाशमाणकवत् माणक चेतनदेव सर्वदेहों में एक रूप गुरोंने जनाया है और जो सर्व जीवन को फलका दाताहै सो मैं हूं इसीसे हमको विस्मरण होता नहीं ६॥ पूर्व षष्ठ सोपान में वैराग्यको गुरुके प्रेमकरने का हेतुरूप से सूचनकरा और निष्काम धर्मको तिसका

कारण बोधन करा अब सप्तम सोपानसें वैराग्य तथा नि-ष्काम धर्मको ज्ञानकी हेतुता निरूपण करते हैं॥ जेजु

गचारेआरजाहोरदसूणीहोय। नवाखण्डा विचिजाणीयेनालचलेसभकोय। चंगानाउ रखायकैजसकीरतिजगलेय।) जेकर किसी स-काम उपासकसिद्ध योगिजनको (आरजा) आयु चतु-र्युगकी होवे और उस चतुर्युगीसे (होर) और (दसूणी- दश गुणी होवे अर्थ यह है चारको दशगुणा करने से चालीसयुग और चारयुग मिलानेसे चौतालीसहुए यां) जेकर चौतालीसयुग की आयुवाला भी होवे और नवें खण्ड में सर्वत्र (जाणीये) प्रसिद्ध होवे सर्व नवखण्ड निवासी उसकी प्रतिष्ठा वास्ते साथ चलें और नाम भी उसका सर्वसे श्रेष्ठहोवे और सर्वत्र जगत् में अपने यश कीर्त्तिको प्राप्तहोवे अर्थात् जहां वो पुरुषजावे तहां अपने यशको सुनाकरे अब प्रसंग प्राप्त नवखण्डका निरूपण करते हैं जैसे चातुर्मास्य कालमें पृथिवी में छत्राकार उ-त्पन्न होताहै जिसको छतडों तथा पँदबहेडा लोक बोलते हैं तैसे पृथिवी मंडलके मध्य सुमेरु पर्वतहै चौरासीहजार योजन ऊंचा है और सोलह हजार योजन पृथिवी में

प्रविष्टहै और मूलमें सोलहहजार योजन विस्तारहै और मस्तकमें बत्तीससहस्र योजन चौड़ापन है, ऐसे सुमेरु पर्वतके उत्तर दिशामें नीलपर्वत १ श्वेत पर्वत २ शृंगवान् पर्वत ३ यह तीनों दो दो हजार योजन विस्तार युक्त हैं तिन तीनपर्वत के अवकाश में नव नव सहस्र योजन विस्तार वाले तीन खण्ड हैं नील पर्वत के उत्तर रमणक खण्डहै और श्वेतके उत्तर हिरण्मयखण्डहै शृङ्गवान् पर्वत के उत्तर समुद्र पर्य्यन्त उत्तर कुरुखण्डहै और सुमेरुके पूर्व दिशामें माल्यवान् पर्वत है तिससे लेकर समुद्र पर्य्यन्त भद्राश्वखण्ड है और सुमेरुसे पश्चिम गन्धमादन पर्वत है तिससे लेकर समुद्र पर्य्यन्त केतुमालखण्ड है इसीप्रकार दक्षिणकी तरफ तीन पर्वत हैं निषध १ हेमकूट २ हिमशैल ३ तिन तीन पर्वतोंके अवकाश में हरिवर्ष १ किंपुरुष २ भारत ३ यह तीन खण्ड हैं, इन निषध आदिक तीन पर्वतों का दो दो हजार योजन विस्तारहै और किंपुरुष आदिक तीन खण्डोंका नव नव हज़ार योजन विस्तारहै॥ और सुमेरु पर्वतके चौगिरद इलावृतखण्डहै जैसे कोहलूके चौगिरद वैलके फिरने का स्थान होताहै इसीप्रकार सुमेरुके चौगिरद इलावृतखण्ड है भारत १ किं पुरुष २ हरिवर्ष ३ केतुमाल ४ भद्राश्व ५

रमणक ६ हिरण्मय ७ उत्तर कुरु ८ इलावृत ९ यह समग्र नवखण्डहैं॥ इस पूर्वउक्त उत्कृष्ट पुरुषको जेकर वोधनहोवे तब तिसकी दशाकानिरूपण करते हैं॥ **जेतिसनदरन आवयीतवातनपूछेकेकीटाअन्दरकीटकरदोसीदोसधरे** यदि तिसको (नदर) स्वरूपका यथावत् साक्षात्कार (नआवयी) न प्राप्तहोवे (त) तब उसकी (के) कोई भी मुमुक्षुजन बातको नहीं पूछता और मृत्यु के पश्चात् यदि निषिद्धकर्म शेष रहा हुआ होवे तब कीटां सर्प आदिकों के (अन्दर) अभ्यन्तर कीट करा जाताहै और जब सकामकर्म परिशेष होताहै तब रागद्वेष दोष वालियों के मध्यमें दोषधारी होताहै॥ **नानकनिरगुणिगुणकरेगुणवंतियागुणदे। तेहाकोयनसुझईजितिसगुणकोयकरे ७** श्रीगुरुजी कहते हैं जो निष्काम धर्म करनेवाले (निरगुणि) वैराग्यादि गुण शून्य होवें तब परमेश्वर निष्काम धर्म से आराधित हुआ तिन पुरुषों में वैराग्यादि गुणको उत्पन्न करताहै और (गुणवंतिया) वैराग्यादि गुण युक्त पुरुषों में (गुण) स्वरूप बोधको उत्पन्न करदेता है और (तेहा) तैसा आरोपित पदार्थ (कोयनसुझई)

कोई नहीं दीखता (जि) जो तिसपरमेश्वरको किसी गुण दोष युक्त करसके तात्पर्य्य यह है परमेश्वर एकरस है और कर्मानुसार सर्व को फलदेता है ॥ इस सोपानमें जे युग से लेकर तवातन पूछे के पर्य्यन्त पाठ से दीर्घ आयु प्रतिष्ठा आदिक सर्व पदार्थों में वैराग्यका उपदेश कराहै और श्रुति में भी इसी प्रकारका उपदेश करा है तथाहि ॥

श्वोभावामर्त्यस्ययदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणांजरयन्तितेजः ॥ अपिसर्वंजीवितमल्पमेवतवैववाहास्तवनृत्यगीते२६नवित्तेनतर्पणीयोमनुष्योलप्स्यामहेवित्तमद्राक्ष्मचेत्वा॥ जीविष्यामोयावदीशिष्यसित्वंवरस्तुमेवरणीयःसएव २७ कठ०व० १ ॥

अ० ॥ पूर्व प्रसंग यहहै जब नचकेता को यमराजने वर मांगना कहा तब नचकेताने ज्ञानका कारण उपदेश वर मांगा फिर यमराजने परीक्षा के वास्ते दिव्य नृत्य करनेवाली मधुर गीत गानेवाली दिव्यध्वनि युक्तबाजे बजानेवाली स्त्री समूह दिखलाकर कहा इनसे अपनी सेवा करवावो और इनसे पृथक् दीर्घजीवन पृथिवी का

राज्य प्रभूत सुवर्ण आदिक धन मांगले आत्मज्ञान मत मांग इतनी बात सुनकर नचकेता कहताहै हे(अन्तक) भगवन् यम जो आप मनुष्य के प्रतिभोग देनेको कहते हैं सो संपूर्ण इस दिनसे अगले दिन में रहें अथवा न रहें इससंशय करके ग्रस्तहैं और भोगे हुए सर्व इन्द्रिय अन्तः करण के तेजको नाश करते हैं और मैं तो मनुष्य से लेकर हिरण्यगर्भ पर्य्यन्त जीवनको (अल्प) तुच्छ जानताहूं इस से यह रथ अश्व स्त्री इनका नृत्यगायन तुम्हारे को प्राप्तहो और मनुष्य की तृष्णा वित्त से निवृत्त नहीं होती और कदापि इन वित्तआदिक पदार्थोंसे तृप्त नहीं होता और मैंने विचारसे निश्चय करा है जबतक आप इस यमराज अधिकार में हैं तब तक मैं वित्तको तथा जीवन को प्राप्त होओंगा इस से मेरे को सोई आत्मज्ञान का हेतु उपदेश रूपवर प्रार्थना के योग्यहै॥ और (कीटा अन्दर) यहां से लेकर सोपानकी समाप्ति पर्य्यन्त, एक तो निषिद्ध कर्म के परिशेष से निषिद्ध योनि की प्राप्ति और श्रेष्ठ कर्म के परिशेष से राजसी सात्त्विकी योनि की प्राप्ति कही है दूसरा आरोपित प्रपञ्च से आत्मा के स्वरूप में गुण दोष का अभाव कहा है यह सर्वही अर्थ श्रुतिनिर्णीतहै॥

तथाहि ॥ तद्यइहरमणीयचरणा अभ्याशोहयत्तेरमणीयांयोनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिंवाक्षत्रिययोनिंवा वैश्ययोनिंवाथयइहकपूयचरणा अभ्याशोहयत्तेकपूयांयोनिमापद्येरन्श्वयोनिंवा सूकरयोनिंवा चण्डालयोनिंवा ७ अथैतयोः पथोर्नकतरेणचनतानी मानिक्षुद्राण्यसकृदावर्त्तीनिभूतानिभवन्तिजायस्वम्रियस्वेत्येतत्तृतीयछं स्थानम् छान्दो० अ० ५ खण्ड० १० ॥

अ० ॥ स्वर्ग भोग से पश्चात् जब इस लोकमें आने को होते हैं तब यदि इस संसार मार्ग में श्रेष्ठ कर्मफल देनेवाले जीवों के परिशेष होवें तब उन से शीघ्रही श्रेष्ठ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य योनि को प्राप्त होते हैं और जेकर निषिद्ध कर्म इस लोकमें फल देनेवाले परिशेष होवें तब कूकर सूकर चण्डाल रूप कुत्सित योनि को शीघ्र प्राप्त होते हैं औरजो उपासना शास्त्रीय कर्ममार्ग से भ्रष्ट इन मार्गों करके प्रवृत्ति रहित हैं वह पुनः पुनः क्षुद्र जन्तु भावको प्राप्त होकर बारंबार जन्मते मरते हैं यह जो मार्ग है सो कर्ममार्ग पितृयान उपासना मार्ग अथवा उपा-

सना शुक्लकर्म मार्ग देवयान इनसे तृतीय स्थान कहा जाता है इसमार्ग में वर्तमान जीवनका शीघ्र मोक्ष नहीं होता इसी प्रकार कर्म मार्ग में वर्तमान जीवन का भी सत्संग भगवत् कृपासे विना शीघ्र उद्धार नहीं होता॥ और भगवत् कृपासेही निष्काम धर्म तथा वैराग्यादिक प्राप्त होते हैं॥ अब इसमें इतना और श्रुतिप्रमाण से निर्णेतव्य रहा जोकि आरोपित प्रपञ्च से परमात्मा में कोई गुण अथवा दोष नहीं होसकता इससे इस अर्थका बोधक श्रुति लिखते हैं तथाहि॥ सूर्य्योयथासर्वलोकस्यचक्षुर्नलिप्यतेचाक्षुषैर्वाह्यदोषैः। एकस्तथासर्वभूतान्तरात्मा नलिप्यतेलोकदुःखेनबाह्यः॥ ११ कठ० व० ५॥ अर्थ॥ जैसे सूर्य्य सर्व लोकका प्रकाश से उपकारक चक्षुरूप है सो चक्षु में वर्तमान दोष तथा अशुचिस्पर्श निमित्त बाह्य दोष इन करके लिपायमान नहीं होता इसीप्रकार एक सर्व भूतोंका अन्तरात्मा आरोपित लोक के दुःखादिरूप दोष से लिपायमान नहीं होता क्योंकि सो परमात्मा आरोपितनाम रूपकर्म प्रपञ्च से (बाह्य) बहिर्भूतहै आरोपित सूर्य्यकिरणस्थ जल से जैसे मरुस्थलका स्पर्श

नहीं इसीप्रकार आरोपित वस्तु से परमात्मा लिपायमान नहीं होता इसस्थान में इतना विचारहोरभी जानलेना जोकि इस सोपान में "नानक निरगुण गुणकरे गुणवं-तिया गुणदे" इस वचन से गुण रहित पुरुषों में वैराग्या-दिक गुणों को परमेश्वर अपनी कृपा से पैदा करता है और वैराग्यादिक गुण सहित पुरुषों में ज्ञान गुणको उत्पन्न करता है यह कहा है परन्तु इसमें यह विचार क-र्तव्य है जोकि परमेश्वर किंचित् कारण से कृपा करताहै अथवा विना कारण निमित कृपा करताहै यदि विना निमित्त से कृपा करताहोवे तब सर्व जीवन में मोक्षकारण सामग्री विवेकादिक अथवा भोगकारण सामग्रीके सम्पा-दन में सामर्थ्य को अपनी कृपासे ईश्वरको करनाचाहिये परन्तु करता नहीं इससे ईश्वरकी कृपा सनिमित्तकहै जब ईश्वरकृपा सनिमित्तकहुई तब निष्काम धर्म रूप निमित्त को देखकर निर्गुणपुरुषों में वैराग्यादि गुणों को उत्पन्न करताहै और सकामकर्मरूप निमित्तको देखकर भोग हेतु सामर्थ्य को उत्पन्न करताहै इसी प्रकार वैराग्यादिक गुण रूप निमित्त से गुरु मिलाप उपदेश आदिकद्वारा ज्ञान को उत्पन्न करताहै और आप सर्वथा निर्लेपहै। यह सप्त-मीसोपानका भावार्थहै ७ अवज्ञानका अत्यन्त समीप सा-

धन जो निदिध्यासन तिसका साधन मनन और मनन का साधन श्रवणहै तिसश्रवण मनन में पुरुषकी प्रवृत्ति वास्ते दोनोंकी स्तुति करते हैं। प्रश्न। श्रवण मननकी स्तुतिवत् निदिध्यासनकी स्तुति गुरुजीने क्यों नहीं करी उत्तर। जब श्रवण तथा मनन परिपक्क होता है तब निदिध्यासन उन दोनों का फलरूप अवश्य होजाताहै पृथक् यत्नकी अपेक्षा नहीं करता जब श्रवणादि होवेंगे तब निदिध्यासन तिनका फल अवश्य होजावेगा इसी वास्ते गुरुजीने निदिध्यासनकी न्यारी प्रशंसानहीं करी एकश्लोकमें सर्वज्ञमुनिने निदिध्यासनका स्वरूपकहाहै॥

तथाहि॥ श्रवणमनन बुद्धयोर्जातयोर्यत्फलं तन्निपुणमतिभिरुच्चैरुच्यतेदर्शनाय॥ अनुभवन विहीनायेवमेवेतिबुद्धिः श्रुतमननसमाप्तौ तन्निदिध्यासनंहि १॥ अ०॥ श्रवण तथा मननरूप बुद्धियों के उत्पन्नहुए तिनके फलको दिखाने वास्ते निपुणमति पुरुष कथन करते हैं विना अनुभव से श्रवण मनन की समाप्ति में यह वस्तु इसी प्रकार की है जो ऐसी बुद्धिहै सो निदिध्यासनहै इस निदिध्यासनसे पीछे वस्तुका यथावत् साक्षात्कार रूप अनुभव

होताहै अब प्रथम श्रवणकी प्रशंसा गुरुजी करते हैं॥ **सुणियेसिद्धपीरसुरनाथ**॥ श्रवण करने से सिद्ध पुरुषोंका (पीर) गुरुरूप होताहै जैसे हठ प्रदीपिका ग्रंथ में यह लिखा है जोकि एकसमयपर श्रीशिवजी किसी द्वीपमें भगवती पारवती को योगविद्या श्रवण कराते से और उनके समीप एकजलचर मत्स्यभी श्रवण कर योग विद्या पारगामी होकर स्थिरचित्त होजाताभया तव भगवती ने उसकी स्थिरतादेखकर भगवान् शिवजी से कहा हे भगवन् यह जलचर अत्यन्त चंचल स्वभाव वाला स्थिर कैसेहुआ तव शिवजीने कहा यह श्रवण के प्रभाव से योगविद्या वाला हुआ है तव भगवती के कहने से उस मत्स्यको मनुष्यरूप योगवलसे बनाया उसका नाम मत्स्येन्द्रनाथधरा उसीको मछेन्दरनाथ नामसे भाषाकीवोलचालसे कहते हैं सोमछेन्दरनाथ गोरखआदिक सिद्धनको उपदेश देकर उनका गुरुहोताहुआ यह श्रवण का प्रभावहै और श्रवणके प्रभावसेही इन्द्र (सुर) देवन का (नाथ) स्वामीहोताभया जवतक इन्द्रने प्रजापति गुरु से आत्मविद्याको न श्रवणकरा तवतक बाह्य शत्रुविरोचन आदिक और अन्तर शत्रु काम क्रोध आदिक तिसको दुःख देतेभये जव प्रजापति गुरुसे श्रवणकर आत्मबोध

को प्राप्त हुआ तब बाह्य अन्तर शत्रुओंको जीतकर सुर-नाथभावको प्राप्त भया यह श्रवणका प्रभावहै । यह वार्त्ता श्रुतिमें निर्णीतहै ॥ तथाहि ॥ सयावद्धवाइन्द्रएतमात्मानंनविजज्ञेतावदेनमसुराअभिबभूवुः सयदाविजज्ञेऽथहत्वाऽसुरान् विजित्यसर्वेषाञ्चदेवानांसर्वेषाञ्चभूतानां श्रैष्ठ्यंस्वाराज्यमाधिपत्यंपर्यैत्तथोएवैवं विद्वान्सर्वान्पाप्मनोऽपहत्यसर्वेषांचभूतानां श्रैष्ठ्यंस्वाराज्यमाधिपत्यंपर्यैतियएवंवेद ॥ कौषीतकि० अ० ४ । श्रुति । २० ॥

अ० ॥ सो प्रसिद्ध इन्द्र देवता जबतक सर्वानुभवसिद्ध आत्माको श्रवणादि साधनोंसे न जानता भया तबतक इस इन्द्रको विरोचनादिक तथा कामादिक असुर तिरस्कृत करतेभये औ सो जब आत्माको जान जाता भया तब असुरोंको मारकर तथा जीतकर सर्व देवनका तथा सर्व भूतनका श्रेष्ठस्वतंत्र अधिपति भावको प्राप्त होता भया इसीप्रकार जेकर कोई दूसरा भी जाने तब सर्वपाप को नाशकर सर्वका श्रेष्ठस्वतंत्र अधिपतिभाव को प्राप्त होताहै ॥ इन्द्रने एकोत्तर शतवर्ष गुरुकी सेवाकरके अव-

स्थानमें साक्षीब्रह्मस्वरूप आत्माको श्रवणादि साधनों से जाना यह बात छांन्दोग्यउपनिषद् के अष्टम अध्याय में प्रसिद्धहै देखलेना। इस स्थानमें गुरुजीने प्रमाणान्तर सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथको श्रवणसे प्राप्त प्रभावका तथा इन्द्र को श्रवण से प्राप्त प्रभावका कथनकरके श्रवणकी प्रशं-साकरी है जहां प्रमाणान्तर से विरुद्ध अर्थका कथनकरके किसी गुणका बोधन कराजाय सो गुणवादरूप अर्थवाद होताहै और जहां प्रमाणान्तर निर्णीत अर्थका उपदेश कराजाय सो अनुवादरूप अर्थवाद होताहै॥ और जहां गुणवाद तथा अनुवादकी हानि होवे तहां भूतार्थवाद होताहै अर्थवाद वचन इसप्रकार से तीनप्रकारके होते हैं सुणिये धरति धवल आकाश। सुणिये दीपलो अपाताल। सुणियै पोहि नसकै काल॥ श्रवणक-रने से पुरुष (धरती) पृथिवी के क्षमा गुणयुक्त होजाता है इस स्थान में गुणवादरूप अर्थवादहै क्योंकि श्रवण करताको धरतीरूपता प्रत्यक्ष प्रमाण से बनती नहीं इससें धरती शब्दकी तिसके क्षमा गुणमें लक्षण करने से जैसे धरती किसीपर क्षोभ नहीं करती तैसे श्रवणकरके मुक्त अधिकारी भी किसीपर क्षोभ नहीं करता (धवल) नि-र्मल आकाश जैसे सर्वका आधारहै तैसे श्रवणकर संपा-

दित ज्ञानवान् अधिकारी ब्रह्मरूप से सर्वका अधिष्ठान होजाताहै और जैसे (दीप) दोनों तरफ जलवालादेश रूपद्वीप निर्मलजलों से वेष्टित होताहै तैसे अधिकारी पुरुष श्रवणसे निर्मलचित्त ज्ञानकी इच्छावाले पुरुषों से वेष्टित होताहै और (लोय) प्रकाशयुक्त अन्तरिक्षलोक जैसे सूर्य चन्द्र नक्षत्रनकी किरणों से व्याप्त होताहै तैसे श्रवणयुक्त पुरुष निर्मलचित्त वृत्तियों से सदा व्याप्त रहता है और (पाताल) पृथिवीसे नीचे सप्त पाताल जैसे न-म्रतागुण विशिष्ट हैं तैसे श्रवण से अधिकारी अत्यन्त नम्र होजाताहै मैं बड़ा विद्यावाला सर्वोत्तमहूं इसप्रकारके अहंभावसे रहित होकर संसार में विचरता है यहां सर्वत्र गुणवाद जानना और श्रवण करनेवालेको काल (पोहि न सकै) स्पर्श नहीं करसकता क्योंकि कालनाम मृत्यु काहै सो मृत्यु देहप्राणके वियोगको कहतेहैं जब श्रवण युक्त पुरुषने अपने आपको अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय आनन्दमय कोशन से परेजाना तब मृत्युका स्पर्श उसके आत्माको कैसे होसकता है इस स्थान में अनुवादरूप अर्थवाद हैं क्योंकि श्रुति तथा युक्ति सिद्ध विद्वान्को मृत्युका अस्पर्श कथन कराहै विद्वान् पंचको-शातीत है इस अर्थके स्पष्ट करनेवास्ते श्रुति लिखते हैं॥

सयश्चायंपुरुषे। यश्चासावादित्ये। सएकः। सयएवंवित्। अस्माल्लोकात्प्रेत्य। एतमन्न मयमात्मानमुपसंक्रम्य। एतंप्राणमयमात्मा नमुपसंक्रम्य। एतंमनोमयमात्मानमुपसंक्र म्य। एतंविज्ञानमयनात्मानमुपसंक्रम्य। ए तमानंदमयमात्मानमुपसंक्रम्य। इमांल्लोका न्कामान्नीकामरूप्यनुसंचरन्। एतत्सामगा यन्नास्ते। हा ३ वु हा ३ वु हा ३ वु अहमन्न महमन्नमहमन्नम्। अहमन्नादो३ऽहमन्नादो ३ऽहमन्नादः। अहथ्ठंश्लोककृदहथ्ठंश्लोककृ दहथ्ठंश्लोककृत्। अहमस्मिप्रथमजाऋता ३ स्य। पूर्वंदेवेभ्यो अमृतस्यना ३ माथि। योमाददातिसइदेवमा ३ वाः। अहमन्नमन्न मदन्तमा ३ द्मि। अहंविश्वंभुवनमभ्यभवा ३ म्। सुवर्नज्योतीः। यएवंवेद॥ तैतरीय० ख० १०॥

अ०॥ जो यह आनन्द रूप वस्तु पंचकोश का अ- धिष्ठान व्यष्टिशरीर में है सोई यह आनन्द रूप वस्तु

आदित्य उपलक्षित समष्टि शरीरमें एकरूप है सो प्रसिद्ध जो ऐसे जाननेवाला पुरुष है वह इस लोकसे उत्थान होकर इस स्थूलशरीर समष्टि व्यष्टि अन्नमय कोशको आत्मरूप से प्राप्तहोकर फिर इसीप्रकार समष्टि व्यष्टि प्राणमय कोशको तथा समष्टि व्यष्टि मनोमय, विज्ञानमय आनन्दमय कोशको (उपसंक्रम्य) अर्थात् सर्वाधिष्ठान पुच्छशब्दवोध्य ब्रह्मको अपना आत्मा रूप जानकर इन भूर्भुवः स्वर्महर्जन तप सत्यलोकों को ब्रह्मरूप से संचरणकरता हुआ कामसे अन्नभोक्ता रूप यथेष्टरूपधारी इस वक्ष्यमाण सामको गायनकरता स्थित होता है इस साममन्त्र में जिस वर्ण के आगे जितना अङ्कहोवै उस वर्णको उतनीवार उच्चारणसे गीतिहोती है और गानेवास्ते दीर्घ तथा वर्णान्तर युक्त भी बोलेजाते हैं जैसे ऋतस्य को ऋता ३ स्य और नाभिको ना ३ भायिगाया जाता है अर्थ तो मूल भूत शब्दकाही करते हैं, हावु शब्द अहो इस शब्दवोध्य आश्चर्य्यका वाचकहै तीन वार कथन अत्यन्त विस्मय का वोधक है विद्वान् अपने वास्तव रूपका अनुसन्धान करता हुआ कहता है अत्यन्त अद्भुतप्रभाव है मैं अपने आपही (अन्न) भोग्य रूपहूं और (अन्नाद) भोक्ता, भोजयिता रूपहूं तथा

(श्लोककृत) भोक्ता भोग्यका संघात करताभी मैं हूं और (ऋत) मूर्तामूर्त प्रपंचका करता देवन से प्रथम होनेवाला हिरण्यगर्भ रूप (अमृतस्य) अमृतत्व रूप मोक्षकी (नाभि) अधिष्ठान रूप मैं हूं अर्थात् मेरे को प्राप्तहोने से मोक्षहोती है जो मुझ अन्नरूप को देता है तिसको मैं (इदेव) इसीप्रकार रक्षाकरता हूं तात्पर्य्य यह है जो पुरुष मेरे को अन्नरूप कथन करता हुआ सबकी रक्षावास्ते देता है सो पुरुष मेरे ईश्वररूप से रक्षितहोता है और जो यथायोग्य यथाकाल अन्नरूप मुझको न देकर आपही भोजन करता है तिसको मैं कालात्मा शीघ्र भक्षणकरजाताहूं मैं सूर्य्यवत् स्वयंप्रकाश सर्व विश्वको तिरस्कृतकर वर्तमान हूं जेकर कोई भी अधिकारी साधन संपत्ति सहित होकर आत्मवस्तु को जानेगा उसको भी यथावत् विद्याके सर्वात्मभाव प्राप्ति रूप फलकी प्राप्तिहोवेगी ॥ प्रकरण में वार्ता यह सिद्ध हुई जोकि श्रवण से प्राप्त ज्ञानके प्रभावसे कालका स्पर्श नहीं होता ॥ हे भगवन् सर्वही अधिकारीजन श्रवण करते रहते हैं और फल तो किसी किसी को होता है इसमें क्याकारण है इस शंकाका समाधान करतेहुए सर्व साधनकी पुष्टिकर भक्तिको कहकर तिसके फलका नि-

रूपण करते हैं॥ नानकभगतासदा विगास। सुणियैदूखपापकानाश ८॥ श्रीगुरुजी कहते हैं श्रवण करने से भक्तजनों को (दूखपाप) सहित कारण के दुःख तथा पापोंका नाशहोकर (सदाविगास) सर्वदा आनन्द की प्राप्तिहोती है तात्पर्य यह है जो अधिकारी भक्तियुक्त होकर श्रवणादिक साधन करते हैं वह दुःख पापके कारण अज्ञानकी निवृत्तिकर परमानन्दको सर्वदा प्राप्तहोते हैं और जो भक्ति रहित श्रवणादिक करते हैं वह शीघ्र फलको नहीं प्राप्त होते इसीबात को श्रुति में प्रतिपादन कराहै॥ तथाहि॥ नायमात्माप्रवचनेनलभ्योनमेधयानबहुनाश्रुतेन। यमेवैषवृणुतेतेनलभ्यस्तस्यैषआत्मावृणुतेतनूंस्वाम्। कठउप० वल्ली २। श्रुति० २३॥

अ०॥ यह सर्वानुभव सिद्धआत्मा (प्रवचन) वेद के पठन पाठनकर लभ्य नहीं तथा (मेधा) धारणावती बुद्धिकर और बहुतसे श्रवण करभी प्राप्तहोने को योग्य नहीं (एष) अधिकारी पुरुष (यमेववृणुते) जिस परमात्मा तत्त्वकोही भजता है तात्पर्य यहहै जो परमात्मा से अतिरिक्त वस्तु में प्रेम नहीं करता तिसकरके लभ्य है

अथवा यम इस पदका यः अर्थ है और (एष) इस पदका एतम् यह अर्थ है याते इस परमात्मा को जो भजता है तिस करके लभ्य है इसवास्ते जो इसप्रकार परमात्मा का भजन करता है तिसके प्रति यह भजनकरा हुआ आत्मा अपनी तनू रूप स्वयंप्रकाश मूर्त्ति को (वृणुते) विस्तार करदेता है॥ इस स्थानमें बाह्य विषयमें प्रीति के त्यागपूर्व्वक जो आत्मामें अत्यन्त उत्कटप्रीति है सो भक्ति है यह भक्ति परारूप है॥

नरकेपच्यमानस्तु यमेनपरिभाषितः। किंत्वयानार्चितोदेवः केशवः खेदनाशनः॥ नृसिंहपुरा० अ० ८ श्लो० २१॥ स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले। परिहरमधुसूदनप्रपन्नान् प्रभुरहमन्यनृणांनवैष्णवानाम्॥ विष्णुपु० अंशे ३ अ० ७ श्लो० १०॥

अ०॥ नरकमें पच्यमान जीवको यमराजने कहा जो तेरेको दुःखनाश करनेकी इच्छाथी तब खेदनाशक केशव को तैंने क्यों न पूजनकरा॥ एक समय पर पाशहस्त अपने पुरुषको देखकर यमराज अपने पुरुष के कान में

निश्चयकरके कहता है जो मधुसूदन की शरणागतिको प्राप्त हैं तिनको दूरसे छोड़देना क्योंकि मैं अन्य पुरुषों का प्रभु हूं वैष्णवोंका नहीं ॥ इन श्लोकोंमें भगवत्पूजन तथा भगवत् शरणागतिरूप अपराभक्ति कही है पराभक्ति फल रूप है और अपराभक्ति साधनरूप है इस अष्टमी सोपान में सकारण दुःखकी निवृत्तिपूर्वक परमानन्दकी प्राप्तिका ज्ञानद्वारा कारण पराभक्ति कही है ॥ ८ ॥ **सुणिऐ ईश्वरु बरमा इन्दु । सुणिऐ मुखि सालाहण मन्द ॥**

श्रवण करनेवाला अधिकारी (ईश्वर) शिवतुल्य होताहै जैसे शिवजी कामदेव की सेनासे चलायमान नहीं हुए तैसे श्रवणकर सम्पन्न पुरुषको भी इन्द्रियग्राम नहीं क्षोभ करसकता और ईश्वरशब्द विष्णुका भी बोधक है याते जैसे विष्णुभगवान् के नरनारायण अवतारको इन्द्रकी भेजीहुई अप्सरा सत्त्वगुण से नहीं चलायमान करती भई तैसे श्रवणयुक्त पुरुषको राजसी पदार्थ स्वरूप से नहीं चलायमान करते और बरमा शब्दका मूलशब्द ब्रह्मा है सो जैसे धर्ममर्य्यादा की संसार में स्थिति करताहै तैसे श्रवणयुक्त पुरुषभी ज्ञानमार्गकी स्थितिको अपने उपदेश से करता है और जैसे (इन्दु) चन्द्रमा अपनी किरणों से जीवोंके तापको शान्त करता है इसी

प्रकार श्रवणयुक्त पुरुष स्वशरणप्राप्त अधिकारीके अन्तः करणगत संशयरूप तापको अपने उपदेशरूप किरणों से शान्त करता है और श्रवणयुक्त पुरुषको मुख्य तथा मंदभी (सालाहण) श्लाघा करते हैं॥ इस स्थान में प्रथमपंक्ति में गुणवादरूप अर्थवाद है और द्वितीय पंक्ति में अनुवादरूप अर्थवाद है क्योंकि यह वार्त्ता लोक प्रसिद्ध है जोकि श्रवणयुक्त पुरुषकी मुख्य मंद तथा मध्यमादिक सर्वही श्लाघा करते हैं॥ **सुणिऐजोगजुगतितनभेद॥** श्रवण युक्त महात्मा योगशास्त्र की युक्तिसे शरीर के भेदको यथावत् जान लेताहै जोकि इस शरीर में इतनी नाड़ी हैं और इतने चक्र हैं और इसी प्रकार शरीर के निर्माण प्रकारको योगयुक्ति से जानता है॥ अब इस अर्थके स्पष्ट करनेवाले योग शास्त्रके प्रकार को लिखते हैं॥ **नाभिचक्रेकायव्यूहज्ञानम् २८॥ कण्ठकूपेक्षुत्पिपासानिवृत्तिः॥ २९॥ कूर्मनाड्यांस्थैर्यम्॥ ३०॥ योग० पाद ३। सू०॥**

अ०॥ नाभिचक्र नाम उसका है जो कि शरीर मध्य वर्तमान दशदलपद्म है सोई शरीर का मूलकारण है जिसमें से नाड़ी निकल के शरीर के ऊपर तथा नीचे

को फैली है तिस नाभिकमल में धारणा ध्यान समाधि करने से शरीर के संनिवेश का ज्ञान होताहै तिस शरीर में वातपित्तश्लेष्मारूप तीन दोष हैं और त्वग् रुधिर मांस नाड़ी अस्थि मज्जा शुक्र यह सप्तधातु हैं इन सप्तधातु में सर्व के अभ्यन्तर शुक्र है तिससे वाह्य मज्जा और मज्जासे वाह्य अस्थि है तथा अस्थि से वाह्य नाड़ी समूह है तिनसे वाह्य मांस है मांस से वाह्य रुधिर है तिस से वाह्य त्वक् है नाभिकमलरूप देश में चित्तकी स्थिति रूप धारणा तथा धारणा का जो आलंवन नाभिकमल रूप देश तिसके आकार ज्ञानप्रवाहरूप ध्यान और ज्ञान तथा ज्ञेय के भेदावभासरहित रूप समाधि इन तीनों से पूर्व उक्त शरीर के संनिवेश का यथावत् भान होता है॥ २८॥ और कण्ठकूप में पूर्व उक्त धारणा ध्यानसमाधिरूप संयम से क्षुधा तथा पियास की निवृत्ति होती है, जिह्वा के नीचे तंतु होती है और तंतु के नीचे कण्ठ है और तिस कण्ठके नीचे छाती पर्यन्त कूपाछिद्रहै तिसमें धारणा ध्यान समाधि करनेवाले को भूख पियास की बाधा नहीं होती॥२६॥ कुण्डलाकार सर्पवत् हृदय कमलरूप नाड़ीचक्र का नाम कूर्मनाड़ी है तिसमें पूर्व उक्त धारणा ध्यान समाधिरूप संयम करने से चित्तवृत्ति

स्थिरता को प्राप्त होती है ॥ २० ॥ शतंचैकाचहृदयस्यनाड्यस्तासांमूर्द्धानमभिनिःसृतैका । तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्याउत्क्रमणेभवन्ति ॥ कठ० उप० व० ६ मं० १६ ॥ अर्थ ॥ शत तथा एक इतनी हृदयकमल की नाड़ी हैं तिनमें से एक सुषुम्णा नामवाली नाड़ी मूर्द्धा को भेदन कर निकली है तिस नाड़ीकर जो योगमार्ग से (ऊर्ध्व) ऊपरको (आयन्) गमन करताहै सो ब्रह्मलोकको प्राप्ति द्वारा (अमृतत्व) मोक्षको (एति) प्राप्त होताहै और (अन्याविष्वङ्) दूसरी नाना प्रकारकी नाड़ी (उत्क्रमणे) देहत्याग में निमित्त होती हैं परन्तु उन नाड़ियों से प्राण के त्यागमें संसार की नानाप्रकारकी गति होती है ब्रह्मलोककी प्राप्ति नहीं होती ॥ हृदिह्येषआत्मा। अत्रैतदेकशतंनाडीनां तासांशतंशतमेकैकस्यांद्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणिभवन्त्यासुव्यानश्चरति॥ प्रश्न० उप० तृतीयप्र० श्रु० ६ ॥ अर्थ ॥ हृदयस्थान में यह लिंगशरीरोपहित जीवात्मा रहताहै तिस हृदयस्थान में मुख्य नाड़ी एकोत्तर शत हैं तिन एकोत्तर शत नाड़ी में फिर

एकशत एकशत शाखा नाड़ी हैं फिर उन शाखा नाड़ी में प्रतिशाखा नाड़ी वहत्तर वहत्तर हजार हैं इन सर्व नाड़ी में व्यान विचरताहै मुख्य १ शाखा २ प्रतिशाखा ३ इन सर्व नाड़ियोंकी जेकर गिनती करीजाय तव वहत्तरकरोड़ और वहत्तरलक्ष तथा दशहजार दोसौ एक इतनी होती हैं यह प्रकार उपनिषद में लिखाहै॥ और तन्त्रशास्त्र में षट् चक्रोंका निरूपण करके सप्तम बिन्दु स्थान पद्मका भी निरूपण कराहै एकमूल द्वारमें मूलाधार चक्र है दूसरा लिङ्गका अधिष्ठान स्वाधिष्ठान चक्रहै तीसरा नाभिदेश में मणिपूरनामक चक्र है चतुर्थ हृदय स्थानमें अनाहत चक्रहै पंचम कण्ठ देशमें विशुद्धि चक्र है और छठा भ्रू-मध्यवर्त्ति आज्ञाचक्रहै और ब्रह्मरन्ध्रमध्यवर्त्ति सहस्रदल कमल बिन्दुस्थानहै। इस स्थान में अर्द्धमात्रा से बोधन करे शान्तात्मा का नाम बिन्दुहै॥ अव इन चक्रों के प्रतिपादक श्लोकों को लिखकर तिनका अर्थ लिखते हैं॥

तथाहि॥ **मूलाधारेत्रिकोणाख्ये इच्छाज्ञान क्रियात्मके। मध्येस्वयंभूलिङ्गन्तुकोटिसूर्यसमप्रभम् १॥** अ०॥ त्रिकोणसंज्ञक जो मूलाधार चक्रहै सो इच्छा ज्ञान क्रिया स्वरूपहै तिसके मध्यमें करोड़ सूर्य्यकी प्रभा तुल्य प्रभावाला स्वयंभू अर्थात् अपने आप

होनेवाला लिङ्गहै १ ॥ तदूर्ध्वे कामबीजन्तु कर्णशा न्तीन्दुनादकम् । तदूर्ध्वे तु शिखाकारा कुण्ड लीब्रह्मविग्रहा २ ॥ अ० ॥ तिस लिङ्ग से ऊपर क्लीं यह कामबीज कर्णशान्तीन्दुनादयुक्त है तात्पर्य यह है स्वयंभू लिङ्ग के ऊपर क्लीं इस बीजकी भावनाकरे और तिसके उच्चारणसे कर्णशान्तीन्दुनामक नाद होताहै इस प्रकारकी भवनाकरे तिस कामबीज से ऊपर ब्रह्मविग्रह स्वरूप शिखाकारा कुण्डली है तात्पर्य यह है प्रदीपशि-खावत् प्रकाशमान कुण्डलीनाड़ीकी भावना करे २ ॥ तद्बाह्ये हेमवर्णाभंशशवर्णंचतुर्दलम् । द्रुतहे मसमप्रख्यं पद्मं तत्र विभावयेत ३ ॥ अ० ॥ तिस कुण्डलाकार नाड़ी से बाह्य चतुर्दलपद्म की भावना करे सो चतुर्दल पद्म द्रवीभूत सुवर्ण की प्रख्याति तुल्य प्रख्यातिवाला और सुवर्ण के वर्णवत् प्रभावालाहै तथा (शशवर्ण) खरगोशके वर्णवत् वर्णवालाहै ३ । तदूर्ध्वेऽग्निसमप्रख्यंषड्दलंहीरकप्रभम् ॥ बादिलान्तषड्वर्णेन युक्ताधिष्ठानसञ्ज्ञकम् ४ ॥ अ० ॥ तिस चतुर्दल पद्मसे ऊपर अग्निवत् प्रकाशमान हीरे की प्रभा तुल्य प्रभावाला षड्दल पद्महै और ब भ

म य र ल इन षट् वर्णोंकरके युक्त अधिष्ठानरूपहै तात्पर्य यहहै जो षट् दल पद्महै तिसकी पंखड़ी पंखड़ीपर वकार आदि षट् वर्णोंकी भावना करे ४ ॥ मूलमाधारषट्कानांमूलाधारंततोविदुः ॥ अर्थ ॥ सो मूलाधार चक्र षट् आधारोंका मूलहै अर्थात् जड़है इससे तिसको मूलाधार जानते हैं ॥ तात्पर्य यहहै स्वयंभूलिङ्ग १ कामबीजाक्षर २ कुण्डलाकारनाड़ी ३ चतुर्दलपद्म ४ षड्दलपद्म ५ वादि षट् वर्ण ६ इन षट् आधारों का मूलहै इससे मूलाधार नामसे कहाजाताहै ॥ स्वशब्देनपरंलिङ्गंस्वाधिष्ठानन्ततोविदुः ५ ॥ अर्थ ॥ स्वशब्दकर प्रकृष्ट लिङ्गको कथन करते हैं इसवास्ते मूलाधारचक्र से ऊपर स्वाधिष्ठानचक्रको आचार्य लोक जानते हैं ५ ॥ तदूर्द्ध्वे नाभिदेशेतुमणिपूरंमहाप्रभम् । मेघाभंविद्युदाभञ्चबहुतेजोमयन्ततः ६ ॥ मणिवद्भिन्नंतत् पद्मंमणिपूरंतथोच्यते । दशभिश्चदलैर्युक्तंडादिफान्ताक्षरान्वितम् ७ ॥ शिवेनाधिष्ठितंपद्मंविश्वलोकैककारणम् ॥ अर्थ ॥ तिस स्वाधिष्ठान चक्र से ऊपर नाभिदेश में मेघतुल्य तथा बिजली तुल्य प्रकाशवाला बड़ी प्रभायुक्त मणिपूरचक्र है बहुत से तेज

प्रधानहै इसीसे मणिवत् (भिन्न) पृथक् भूत सो पद्म मणिपूरनाम से कथन करते हैं और वह पद्म दशदलों करके युक्तहै सो दशदल ड ढ ण त थ द ध न प फ इन दशवर्णों से युक्त है ऐसे भावना करे, और सोई पद्म साक्षिरूप शिवकरके (अधिष्ठित) आश्रित हुआ सर्व विश्वरूप लोकोंका मुख्य कारण है ७॥

तदूर्ध्वेऽनाहतंपद्ममुद्यतादित्यसन्निभम् ८ कादिठान्ताक्षरैरर्क १२ पत्रैश्चसमधिष्ठितम्। तन्मध्येबाणलिङ्गन्तुसूर्य्यायुतसमप्रभम् ९ शब्दब्रह्ममयशब्दोऽनाहतस्तत्रलक्ष्यते। ते नानाहतपद्मंतन्मुनिभिःपरिकीर्तितम् १० आ नन्दसदनंतत्तुपुरुषाधिष्ठितंपरम्॥

अ०॥ तिस मणिपूर चक्र से ऊपर हृदय स्थान में प्रथम उदित सूर्य सदृश अनाहत पद्महै और तिस पद्मके सूर्यवत्प्रकाशमान द्वादशपत्र हैं और उन पत्रोंके ऊपर क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ इन ककारादिक वर्णों की भावना करी जातीहैं इस वास्ते द्वादशपत्र तथा द्वादश ककारादिक वर्णों से अधिष्ठित है ऐसे जाने और तिस पद्मके मध्यमें दशहजार सूर्यकी प्रभातुल्य प्रभावा-

ला बाणलिंग है और वह लिंग शब्द ब्रह्मरूप है तिसमें अनाहत शब्द लखाजाताहै इस वास्ते तिस पद्मको मुनियोंने अनाहत नामसे कथन कराहै सो पद्म आनन्द का स्थान है और केवल पुरुषकरके अधिष्ठित है १० ॥

तदूर्द्ध्वन्तुविशुद्धाख्यं षोडशदलपङ्कजम् ११ स्वरैःषोडशभिर्युक्तंधूम्रवर्णंमहाप्रभम् । विशुद्धिंतनुतेयस्माज्जीवस्यहंसलोकनात् १२ विशुद्धंपद्ममाख्यातमाकाशाख्यंमहाप्रभम् ॥

अ० ॥ तिस अनाहत पद्मसे ऊपर कण्ठ देशमें षोड़श दलयुक्त विशुद्ध नामक पद्महै सो षोड़श अकारादिक वर्णयुक्त कृष्ण लोहितवर्ण महाप्रभा युक्तहै जिससे सो आकाशनामक महाप्रभा युक्त विशुद्धचक्र हंसरूप परमात्माके ज्ञानसे जीवकी विशुद्धिको विस्तार करता है तिससे विशुद्ध नामसे कहा जाताहै १२ ॥ **आज्ञाचक्रन्तदूर्द्ध्वन्तुआत्मनाधिष्ठितंपरम् १३ आज्ञासंक्रमणंतत्रगुरोराज्ञेतिकीर्त्तितम् । द्विदलंहलसंयुक्तंबोधनन्तुतदूर्द्ध्वतः १४ एवञ्चशिवचक्राणिप्रोक्तानितवसुव्रत । सहस्राराम्बुजंबिन्दुस्थानंतदूर्द्ध्वमीरितम् १५ ॥** अर्थ ॥ तिस विशुद्ध

चक्रसे ऊपर केवल आत्माकरके अधिष्ठित आज्ञाचक्र है तिस चक्रके भ्रू स्थानमें गुरुकी आज्ञाका (संक्रमण) नियम से धारण कराजाताहै तिससे आज्ञा नामसे सो चक्र कथन करते हैं और तिस आज्ञाचक्र से ऊपर दो दलोंकरके सम्पन्न (बोधन) कमलहै और सो दोनों दलह तथा लवर्ण करके संयुक्त हैं इस रीति से शिव के चिन्तन स्थानरूप चक्र (हे सुव्रत) शिष्य तेरे प्रति कथन करे हैं तिस आज्ञाचक्र से ऊपर (बिन्दु) तुरीय शान्तात्मा का स्थान सहस्रपत्र कमलहै १५ इस स्थानमें चक्र तथा पद्म अम्बुज कमल यह एकार्थक शब्द हैं इस प्रकरण में जितनी चक्र आदिक कल्पनाहै सो सम्पूर्ण चित्तके निरोध वास्ते है इसवास्ते जेकर पद्म तथा तिनके दल कहीं न्यून अथवा अधिक भी होवें तबभी विरोध नहीं इसीवास्ते कहीं कहीं न्यून अधिक भी कमलोंकी गणना करी है और गुरु महाराजजी की वाणी में उलटाति पवनचक्र षट्भेदे ॥ ऐसे लिखाहै इससे ध्यान में उपयोगी जानकर षट्चक्र निरूपण करे हैं सर्वत्र जानलेने ॥ योगविद्याके दो प्रकार हैं एक राजयोग दूसरा हठयोगहै जिस स्थान में प्रथम मनको ध्येयाकार करके फिर तिस ध्येयके आकारमनकी वृत्तिरूप

धारणा ध्यान करके फिर वृत्ति तथा ध्येयकी एकतारूप चित्त वृत्तिका निरोधरूप योगसे चित्तके मलकी निवृत्ति करिये तिसको राजयोग कहते हैं। और जहां षट्कर्म द्वारा प्राणायाम से चित्तको शिथिल करिये सो हठयोग हैं हठयोग की रीतिसे पूर्वउक्त मूलाधार आदिक षट्चक्रों में प्राणायाम से प्राणवायु को लौटाते हैं॥ जितासन पुरुष गुदाको निरुद्धकर आधार चक्रसे वायुको ऊपर उठाकर स्वाधिष्ठान चक्रको तीनवार प्रदक्षिणा करके म-णिपूरक चक्रको प्राप्तहोकर फिर अनाहत चक्रको उल्लं-घकर विशुद्धचक्र में प्राणोंको रोककर आज्ञाचक्रका ध्यान करता तिससे परब्रह्म रन्ध्रस्थान में प्राणों को स्थिरकरे॥ अब हठयोगियोंके षट्कर्मोंका निरूपण करते हैं। तथाहि॥ चतुरङ्गुलविस्तारंसूक्ष्मंवस्त्रं शनैर्ग्रसेत्। ततःप्रत्याहरेच्चैतदाख्यातंधौति कर्म्मतत् १॥ अर्थ॥ चार उंगल विस्तारयुक्त सूक्ष्म गीले वस्त्रको शनैःशनैः खालेवे फिर तिससे निकाले इस को धौतिकर्म्म कहते हैं १॥ नाभिदघ्नेजलेपायुन्य स्तनालोत्कटासनः। आधाराकुञ्चनंकुर्य्यात् प्रख्यातंवस्तिकर्म्मतत् २॥ अर्थ॥ अपने मूल

द्वारमें नालको पाकर आसन श्रेष्ठ बांधकर नाभि प्रमाण जलमें मूलाधार चक्रको संकुचितकर जलको अपने अन्दर डालकर धीरेसे बाहर निकालें इसको वस्तिकर्म कहते हैं २॥ सूत्रंवितस्तिसुस्निग्धंनासानाले प्रवेशयेत्। मुखान्निर्गमयेच्चैषानेतिःसिद्धैर्निगद्यते ३॥ अर्थ॥ भली प्रकार स्निग्ध गिठमात्र सूत्र को नासिका में प्रवेशकर मुखसे निकाले इसको सिद्ध नेति कर्म कहते हैं ३॥ ईक्षतेनिश्चलदृशासूक्ष्मलक्ष्यंसमाहितः। अश्रुसंपातपर्य्यन्तमाचार्य्यैस्त्राटकंमतम् ४॥ अर्थ॥ समाहित होकर निश्चल दृष्टिकर सूक्ष्मलक्ष्यको अश्रुपात पर्यन्त देखे इसको आचार्य त्राटक कर्म कहते हैं॥ इन कर्मन से शरीरमध्यवर्त्ति कफ आदिकों की निवृत्ति होती है ४॥

अमन्दावर्त्तवेगेनतुन्दंसव्यापसव्यतः। नतांसोभ्रामयेदेषानौलीगौलैःप्रशस्यते॥५॥ भस्त्रेवल्लोहकारस्यरेचपूरौससम्भ्रमौ। कपालभातीविख्याताकफदोषविशोषिणी॥६॥ अर्थ॥ अपने पेटको दहनी बाईं तरफ शीघ्र वेगकर

घुमानेको योगीजन नौलीकर्म प्रशंसन करते हैं परन्तु अपने कांधेको नम्रकरके भ्रमण करावै ॥ ५ ॥ जैसे लुहार अपनी खालोंको अत्यन्त शीघ्रतासे पूरणकर क्रमसे खाली करताहै इसीप्रकार दहनी बाईं नासिका में शीघ्र पूरक रेचककरे इसको कपालभाती क्रिया कहतेहैं और सो क्रिया कफ दोषको शोषण करतीहै। गोलनाम योगि पुरुषोंकाहै क्योंकि गोनाम इन्द्रियगणको जो (लान्ति गृह्णन्तियेते गोलाः) ल, ग्रहणकरें वृह गोल हैं ॥ ऐसा अर्थ होनेसे ॥ इसप्रकार धौति १ वस्ति २ नेति ३ त्राटक ४ नौली ५ कपाल भाति ६ इन षट् कर्म्मनका निरूपण जानलेना इससे आदिक अन्य भी योगके अनन्त प्रकार हैं परन्तु गुरु वाणीमें उपयोगि जानकर षट् कर्मका निरूपण कराहै ॥ प्रकरण में यह वार्त्ता निर्णीत होगयी जो कि श्रवण करनेवाला पुरुष योगकी युक्तिसे पूर्व उक्त शरीरका (भेद) विवेचनको जानलेता है ॥ **सुणि्ऐसा सतासिम्रितिवेद** ॥ (सासत) शास्त्र (सिम्रिति) स्मृति श्रवणयुक्त पुरुष शास्त्र स्मृति वेदरूप होताहै तात्पर्य यह है जैसे शास्त्र स्मृति वेदहितका उपदेश करते हैं तैसे श्रवणयुक्त पुरुष भी सबके प्रति हितोपदेश करता है इस स्थानमें भी गुणवादरूप अर्थवाद है क्योंकि श्रवण करने

वालेको शास्त्र स्मृति वेदरूपता प्रत्यक्ष विरुद्धहै इससे हि-
तोपदेशकत्वरूप गुणके वोधन करने में तात्पर्य है॥
न्याय १ वैशेषिक २ सांख्य ३ पातंजल ४ पूर्वमीमांसा ५
उत्तर मीमांसा ६ यह षट् शास्त्रहैं गौतम १ कणाद २ क-
पिल ३ पतंजलि ४ जैमिनि ५ व्यास ६ यह षट् ऋषि
क्रम से इन षट् शास्त्रोंके कर्त्ता हैं स्मृति मनु आदिक
प्रणीत व्यावहारिक पारमार्थिक दोप्रकारके अर्थका वो-
धकहैं मनुस्मृति याज्ञवल्क्यस्मृति आदिक प्रधानता से
व्यवहारका वोधकहैं पुराण गीतादिक स्मृति प्रधानता
से परमार्थका वोधकहैं और मंत्र तथा ब्राह्मण भागरूप
वेदहै जिसमें वेदार्थका स्मरणहोवे सो स्मृतिहै॥ नानक
भगतासदाविगास। सुणियैदूखपापकानाश ९॥ श्रीगुरुजी कहते हैं परमेश्वर के भक्तों को
श्रवण करने से सर्वदा आनन्द होताहै और दुःख
पापका कारण जो अज्ञान तिसका नाश होताहै इस
वाक्यका अर्थ पूर्वप्रमाण से विस्तारपूर्वक निर्णीतहै सो
जानलेना ९॥ **सुणियैसतसंतोषगियान। सुणियैअठसठकाइसनान**॥ श्रवणकरने से सत्यभाषण
तथा संतोष जोकि पूर्वतृष्णाका नाशरूप निर्णीतहै
और सत्यसंतोष धारणा के योग्यहैं इस प्रकारका ज्ञान

तथा धर्मज्ञान ब्रह्मज्ञान इससे आदिलेकर सर्वप्रकार का ज्ञान श्रवण से प्राप्तहोताहै और श्रवण के प्रतापसे (अठसठ) शास्त्रप्रतिपाद्य मुख्यतीर्थोंका स्नानसफलहोता है तात्पर्ययहहै जितने सत्कर्मोंमें विघ्न हैं वह श्रवणयुक्तपुरुषों को नहींहोते क्योंकि श्रवणयुक्त पुरुष तीर्थ फलके तथा नामके विघ्नों को दूरकरके तीर्थकास्नान सेवनकरते हैं इसी प्रकार सर्व सत्कर्म्मों के विघ्नोंको दूरकरने के प्रकारों को जानकर सेवनकरते हैं॥ तीर्थनाम सत्कर्मनके विघ्ननिवर्तक प्रकारकोदिखाते हैं। तथाहि॥ **यस्यहस्तौचपादौच मनश्चैवसुसंयतम्। विद्यातपश्चकीर्त्तिश्चसतीर्थफलमश्नुते १॥** अर्थ॥ जिसके हस्त निन्दितप्रतिग्रह से निवृत्तहैं और पाद गमन के अयोग्य देशमें गमनरहितहैं तथा मन काम क्रोधादि वर्जितहै और तिस तिस तीर्थ के प्रभावका ज्ञानहोना विद्याकासंयमहै अर्थात् तीर्थका प्रभाव ज्ञान पूर्वक सेवन करनायोग्यहै और मांसादिक अभक्ष्यसे रहितहोना तप है और केवल ख्यातिके वास्ते जो तीर्थयात्राहै तिससे रहितहोना कीर्त्तिका संयमहै इत्यादिक नियमसे तीर्थयात्राको श्रवणयुक्त पुरुषही करताहै इसवास्ते सोई मुख्यतीर्थों के स्नानकरने के फलको प्राप्तहोताहै॥ यह

श्लोक महाभारतमें लिखाहै॥ नाम स्मरणके विघ्ननामा-
पराधहैं। तथाहि॥

सतांनिन्दानाम्नांपरममपराधंवितनुतेय
तःख्यातिंयातस्तमुपहसतेगर्हयतिच। तथा
विष्णोरिष्टं यइहगुणनामादिसकलं धियाभि
न्नंपश्येत् सखलुहरिनामाहितकरः १ गुरोरव
ज्ञाश्रुतिशास्त्रनिन्दनं तथाऽर्थवादोहरिनाम्नि
कल्प्यते। नाम्नांबलाद्यस्यहिपापबुद्धिर्नविद्य
ते तस्यशठस्यशुद्धिः२ दिवौकसांगुरोःपित्रो
र्भूसुराणाञ्चगर्हणम्। नामापराधंयत्तत्स्या
द्वैष्णवानांतथान्नृणाम् ३ गोऽश्वत्थतुलसीधा
त्रीर्नृपान्निन्दन्तिनारद। नामापराधीसभवे
न्नामगोविन्दवैष्णवान् ४॥

अर्थ॥ जो सतपुरुषों की निन्दाहै सो नामस्मरणका
परम अपराध है क्योंकि प्रतिष्ठाको प्राप्तहुआ पुरुष नाम
की तथा सत्पुरुषोंकी उपहासी करताहै तथा निन्दा कर-
ताहै इसीप्रकार विष्णुको इष्ट जो गुण तथा नामादिक
संपूर्ण हैं अर्थात् विष्णुभगवान् को शिवके नाम गुण

कर्म इष्टहैं तिनको बुद्धिकरके जो भिन्न देखताहै सो हरि नामका (अहितकर) अपराधी है तथा गुरुकी अवज्ञा और श्रुति शास्त्रका निन्दा करना और हरिनामके माहात्म्यमें अर्थवाद भ्रम यह तीनभी नामापराधहैं और जिसकी नामके बलसे पापमें बुद्धिहै अर्थात् नामके आश्रय से पापमें प्रवृत्तिहै यह जानना जोकि नाम सर्वपापका निवर्त्तकहै इसवास्ते हमको पाप क्या करेगा यह भी नामापराधहै इस नामापराधी मूर्खकी कभीभी शुद्धि नहीं होती और देवता गुरु ब्राह्मणोंकी निन्दा नामापराधहै सो यह नामापराध वैष्णव तथा और पुरुषोंको तुल्य है और हे नारद ! गौ पीपल तुलसी आमलकी राजालोग इनकी जो निन्दाकरते हैं तथा नाम गोविन्द (वैष्णव) साधुजन इनकी जो निन्दाकरताहै वह सभी पूर्वउक्त नामापराधी है॥ ॐ तत्सदितिनिर्देशोब्रह्मणस्त्रिविधःस्मृतः। ब्राह्मणास्तेनवेदाश्चयज्ञाश्चविहिताःपुरा॥ गी॰ अ॰ १७ श्लो॰ २३॥

अर्थ॥ ॐ तत्सत् यह तीनप्रकारका ब्रह्मका (निर्देश) नामहै तिस नाम करके पूर्वकालमें प्रजापतिने ब्राह्मणआदिक कर्ता तथा कर्मसाधन वेद और यज्ञा-

दिककर्म विधानकरे हैं तात्पर्य्य यह है ॐ तत्सत् इसप्रकारका ॐकारवत् तीन अवयवयुक्त एकनामहै इसनाम से यज्ञादिककर्म रचनाकरे हैं इसवास्ते इस एक परमेश्वर के नामसे सर्वकर्मकी विगुणता निवृत्तहोती है॥ प्रकरण में यह वार्त्तानिश्चितहुई जोकि श्रवणके प्रभावसेही मुख्य तीर्थस्नान उपलक्षित नामस्मरण यज्ञदान तप आदिक सर्व कर्मनकी विगुणता निवृत्तहोती है तथा सत्य संतोष शास्त्र ज्ञानआदिक सर्वही श्रवणयुक्त पुरुषको प्राप्तहोते हैं इसवास्ते अपने कल्याण की इच्छावाले को श्रवण अवश्य कर्तव्य है ॥

सुणियैपड़िपड़िपावहिमान । सुणियेलागै सहजधियान॥ नानकभगतासदाविगास । सुणियैदूखपापकानास १० ॥ गुरु मुख से श्रवणकरके पश्चात् (पड़ि पड़ि) पठन पाठनरूप विचार से सर्वत्र विद्वज्जनों के समागममें सन्मानको प्राप्तहोता है और श्रवण के प्रभाव से सहज ध्यानरूप स्वाभाविक समाधि (लागै) लगती है ॥ समाधि दो प्रकारकी होती है एकतो योगशास्त्र की प्रक्रिया से अनेक साधन संपत्ति से निर्विकल्परूप असंप्रज्ञात समाधि है

और दूसरी साक्षीमें जो कल्पित साक्ष्यरूप प्रपंच है सो मिथ्याहोने से नहीं केवल साक्षी स्वरूप चिद्वस्तु सत्य है इस प्रकारका विचारस्वरूप है इसीको सहजसमाधि कहते हैं इसीवास्ते अधिकारी के भेदसे प्रपंचकारण चित्तके अदर्शनवास्ते दो प्रकार वशिष्ठभगवान् ने लिखे हैं॥ तथाहि॥ द्वौक्रमौचित्तनाशस्ययोगो ज्ञानंचराघव ॥ योगोवृत्तिनिरोधोहिज्ञानंसम्यगवेक्षणम् १ असाध्यःकस्यचिद्योगःकस्यचित्तत्त्वनिश्चयः । प्रकारौद्वौततोदेवोजगादपरमःशिवः २॥ अर्थ॥ साक्षीसे पृथक् चित्तके अदर्शनके दो (क्रम) उपायहैं हे राघव एक तो चित्तकी सर्ववृत्तियोंका निरोधरूप निर्विकल्प समाधि है क्योंकि निरोध समाधि कालमें चित्तके अभावहोनेसे साक्षीका असंग बोध और चित्तका नाश होजाता है और द्वितीय ज्ञानस्वरूप उपाय है वृत्ति निरोधरूप योग है और सम्यक् दर्शनरूप ज्ञानहै जगत्के असत्यत्वज्ञाता विचारवान् अधिकारी को योगमार्ग असाध्यहै क्योंकि सो प्रपंचमें मिथ्यात्वदर्शी अधिकारी योगमार्ग से विनाही असंग आत्माका अनुभवकरसकताहै और जगत्

क सत्यत्ववादी अधिकारीको चित्तवृत्ति निरोधरूप यो-
गसे विना असंग साक्षीका ज्ञानहोना दुर्लभहै इसवास्ते
तिसको सहज समाधिका हेतु विचार असाध्यहै इसी से
परम शिवरूप ईश्वर वेदो स्मृति पुराणआदिकों में दो
प्रकारों को कथन करते भये॥ इन पूर्व उक्त श्रवणके फ-
लोंको श्रीगुरुजी कहते हैं परमेश्वरके भक्त प्राप्तहोकर
दुःख पापनको सहित कारण के नाशकर सदा आनंदि-
तरहते हैं १०॥ सुणियैसरागुणाकेगाह ॥ श्रवण
युक्त पुरुष (सरागुणाके) अत्यन्त निर्मल तथा स्निग्ध
गुणनका (गाह) स्थान होजाता है तात्पर्य्य यहहै
मैत्री करुणा मुदिता उपेक्षारूप निर्मल गुणोंकास्थान
और श्रवणरूप भक्तिसे द्रवीभूत चित्तवृत्ति विशिष्टहोकर
परमेश्वर में प्रेमका आश्रयहोजाता है॥ सुणियै से
खपीरपातसाहु॥ श्रवण करनेसे (सेख) प्रधान
(पीर) गुरु (पातसाहु) राजारूप होजाताहै क्योंकि
फारसी में शेखनाम प्रधानकाहै और पीरनाम गुरुकाहै
तथा पातसाहुनाम राजाकाहै यातें श्रवणयुक्त पुरुष प्र-
धान गुरुस्वरूप सर्वकाराजाहोजाताहै सर्वविद्या में प्रधा-
न तथा सर्वविद्याओं का राजा आत्मविद्याहै इससे
तिस विद्या के श्रवण करनेवाला भी सर्व में प्रधान तथा

अपनी विद्याके श्रोताओंका राजवत् नियन्ताहोताहै गीताके दशमअध्याय में (अध्यात्मविद्याविद्या नाम्) इसवाक्यसे सर्वविद्यामें प्रधान (अध्यात्मवि- द्या) है यहकहा है इसवास्ते तिसका श्रवण करनेवाला भी सर्वमें प्रधानहै (सर्वविद्याकेमध्यमें) अध्यात्मविद्या मेरा स्वरूपहै यहगीतावचनका अर्थ है इसीप्रकार सर्व विद्याओंका राजाभी अध्यात्मविद्याकोगीतामें लिखाहै। तथाहि॥ राजविद्याराजगुह्यंपवित्रमिदमुत्तमम्। प्रत्यक्षावगमंधर्म्यंसुसुखंकर्तुमव्ययम्॥ अश्रद्दधानाःपुरुषाधर्मस्यास्यपरंतप। अप्राप्यमांनिवर्तन्तेमृत्युसंसारवर्त्मनि॥ गी॰ अ॰ ९ श्लो॰ २।३॥ अर्थ॥ यह अध्यात्मविद्या सर्वविद्याओं का राजा तथा सर्व गुह्यपदार्थनका राजा है क्योंकि अन्यविद्या किंचित्किंचित् अज्ञानकी नाशकहैं जैसे शब्दशास्त्ररूप व्याकरण प्रमाणशास्त्ररूप न्यायशास्त्र और धर्मबोधक धर्मशास्त्ररूप स्मृति आदिकविद्या यह संपूर्ण शब्दसंस्काराज्ञान प्रमाणाज्ञान धर्माज्ञान इत्या- दिक यत्किंचिदज्ञानकी निवर्तक हैं और यह आत्म- विद्या मूलाज्ञानकी निवृत्ति द्वारा परमानन्दका प्रापक है

इससे सर्वविद्यनका राजाहै तथा अनेक जन्ममें करेहुए पुण्योंका फलरूपहै और बहुतपुरुषों करके अज्ञात है इसवास्ते सर्वगुप्तवस्तुओंसे श्रेष्ठहोनेसे उनका राजा है और पवित्रपदार्थों से यह उत्तम पवित्र है क्योंकि तीर्थ स्नान प्रायश्चित्तकर्म्म आदिक किंचित्पाप के निवर्तक हैं और इनसे निवृत्त हुआ पाप फेर उत्पन्नहोताहै और इस आत्मज्ञान से सर्वही स्थूलसूक्ष्मावस्थापन्न पाप नाशहोतेहैं इसवास्ते यह उत्तम पवित्रहै और अवगमनाम ज्ञान तथा फलका है साक्षी प्रत्यक्षरूपहै प्रमाण जिसमें और साक्षी प्रत्यक्षसिद्धहै अविद्यानिवृत्तिरूप फल जिसका ऐसी आत्मज्ञानरूप राजविद्याहै तात्पर्य्य यहहै मैंने यह वस्तु जानी है इससे इस वस्तुमें मेरा अज्ञान नाशहुआहै यह साक्षीरूप अनुभव सर्वमें प्रसिद्धहै इस प्रत्यक्षज्ञानसे ब्रह्मविद्यामें साक्षीस्वरूप मान तथा तिसका फल अज्ञानका नाशभी साक्षीवेद्यहै यह दो वस्तु सिद्ध हुईं इसवास्ते राजविद्यारूप ब्रह्मज्ञानमें तथा तिसके फलमें साक्षीरूप प्रमाण निर्णीतहुआ। इसप्रकार (प्रत्यक्षावगम) होतेभी (धर्म्य) अनेकजन्ममें संचित पुण्यकर्मनका फलरूपहै और गुरु उपदेश जन्य विचारसहकृत वेदांत वाक्य करके संपादन करने को सुखरूप है तात्पर्य्य यह

है जैसे अन्यकर्म देशकाल निमित्तकी अपेक्षासे फलको पैदाकरते हैं तैसे आत्मज्ञानके साधन आत्मज्ञानकी उत्पत्ति में देश काल व्यवधानकी अपेक्षासे विना आत्मज्ञानको पैदाकरते हैं इसवास्ते ज्ञान करनेको सुखरूप है और अविनाशी मोक्षका जनक होनेसे अव्ययरूप है॥ हे (परंतप) अर्जुन इस आत्मज्ञानकी श्रद्धारहित जो पुरुषहैं वह मेरेको न प्राप्तहोकर मृत्युयुक्त संसार में भ्रमणकरतेहैं॥ प्रकरणमें वार्त्ता यह सिद्ध हुई जो आत्मविद्या को श्रवणकरताहै सो सर्वका राजारूपहोजाता है इस स्थानमें भूतार्थवादहै क्योंकि मैत्री आदिक गुणोंका स्थानहोना तथा प्रधानता गुरूपता राजरूपता श्रवण से होना प्रत्यक्षादि प्रमाणसे विरुद्ध नहीं॥

सुणियैअन्धेपावहिराहु। सुणियैहाथहोवैअसगाहु॥

श्रवण करने से (अन्धे) विचाररूप नेत्रहीन पुरुष भी (राहु) मुक्ति के मार्ग ज्ञानको (पावहि) प्राप्तहोते हैं। तात्पर्य यहहै यदि विचारशून्य भी श्रवणरूप साधन में प्रवृत्तहोवे तब मननादि साधन द्वारा तत्वज्ञानरूप मुक्ति के मार्गको अवश्य प्राप्त होताहै॥ श्रवणका प्रभाव अचिंत्य है क्योंकि जो परमात्मस्वरूप वस्तु (असगाहु) अत्यन्त गम्भीर सर्व इन्द्रियन का अविषयहै सो भी

(हाथ) हस्तगत वस्तुवत् आत्मस्वरूपसे नित्य अपरोक्ष होजाती है ॥ जब सर्व प्रमाणके अविषय वस्तु को साक्षात् करादेताहै तब हम श्रवणका कहां तक प्रभाव कहेंगे इस वास्ते सर्वप्रकारसे अपने महत्त्वकी कामना वाला अवश्य श्रवणकरे इसप्रकार श्रवणमें प्रवृत्ति वास्ते श्रवणकी प्रशंसा करी है ॥ सर्वथा इन्द्रियों के अविषय को श्रवण से हस्तगत वस्तुवत् जान जाताहै इस अर्थ की पुष्टिवास्ते श्रुति लिखते हैं ॥ नतत्रचक्षुर्गच्छति नवाग्गच्छतिनोमनोनविद्मोन विजानीमोय थैतदनुशिष्यादन्यदेवतद्विदितादथो अविदि तादधि । इतिशुश्रुमपूर्वेषांयेनस्तद्व्याचचक्षि रे ॥ केनउ० खण्ड १ श्रुति ३ ॥ अर्थ ॥ ब्रह्ममें चक्षुनहीं गमन करता क्योंकि चक्षुरूपवत् और अपने से भिन्नमें गमन करताहै और ब्रह्मरूपादि रहित तथा चक्षुका भी अन्तरात्माहै इस वास्ते चक्षु इन्द्रिय उपलक्षित सर्वइ- न्द्रियनका ब्रह्म अविषयहै इसीप्रकार ब्रह्ममें वाक्भी नहीं गमन करती क्योंकि जब उच्चारण करा हुआ शब्द अप- ने वाच्यको प्रकाश करता है तब तिस अर्थ में वाग्का गमन कहाजाताहै और ब्रह्म वागिन्द्रिय तथा तिस से जन्य शब्दका भी अन्तरात्माहै इस से ब्रह्म में वाग्नहीं

गमन करती इसीप्रकार मनभी ब्रह्म में नहीं गमन करता क्योंकि मन भी अपने से पृथग्भूत वस्तु का संकल्प तथा निश्चय करता है और ब्रह्म मन का अन्तरात्मा है इस वास्ते मनका विषय नहीं जब ऐसा है तब हम नहीं जानते जो कि ब्रह्म ऐसा है अथवा तैसा है इससे जैसे प्रकारसे इस ब्रह्मको शिष्यके प्रति अनुशासन करें ऐसे प्रकार को विशेष करके हम नहीं जानते इतने प्रबन्ध से अत्यन्त गम्भीररूपता ब्रह्मको निर्णीत हुआ । अब गुरु उपदेशरूप श्रवण से जैसे तिसका साक्षात्कार होता है तैसे गुरु उपदेश को दिखाते हैं सो ब्रह्म विदित प्रपञ्च से अन्य है तथा अविदित प्रपञ्च से (अधि) अन्यत् है यह उपदेश हमने पूर्व आचार्य्यन का सुना है जिन्हों ने हमारे प्रति ब्रह्मका व्याख्यान प्रकार कहा है ॥ तात्पर्य्य यह है प्रत्यक्षादि प्रमाण का विषय विदित कहाजाताहै ऐसा स्थूल सूक्ष्म प्रपञ्च है और जो प्रत्यक्षादि प्रमाणका अविषय है सो अविदित कहाजाताहै ऐसा अविद्यात्मक कारण प्रपञ्च है जब दोनों प्रकार के प्रपञ्च से ब्रह्मको भिन्न कहा तब साक्षीस्वरूप आत्मा ज्ञात अज्ञात से पृथक् नित्य अपरोक्ष ब्रह्मका स्वरूप सिद्ध हुआ क्योंकि ज्ञात अज्ञात से पृथक् नित्यज्ञात अपना स्वरूप है इसप्रकार

जब गुरु उपदेशरूप श्रवणसे जन्मजन्मान्तर कृतकर्म उपासना से अप्राप्य ब्रह्मका आत्मरूपसें साक्षात्कारहु- आ तब श्रवणकी वास्तव प्रशंसाहोगई ॥ **नानकभग तासदाविगास। सुणियेदुःखपापकानाश ११** इनपंक्तियोंका अर्थ पूर्ववत् समझलेना ॥ इसस्थान में यह भी समझना जोकि भगवद्भक्ति तथा दुःखपापकी सहित कारणके, निवृत्तिपूर्वक आनन्दकी प्राप्तिरूप फल का अभ्यास है तिसका कथन भक्ति और उक्तफल में तात्पर्य्यका ग्राहक है क्योंकि अन्य तात्पर्य्यग्राहक लिं गोवत् अभ्यासलिंगभी प्रकरणके तात्पर्य्यका निर्णायक है षट्लिंगमिलित अथवा एक एक वा दो दो आदिक मिलकर तात्पर्य्य के ग्राहक हैं। यह वार्त्ता पूर्व षट् लिं गों के निरूपण में निर्णीत है सावधानता से जानलेना ११॥ हे भगवन्! आपने श्रवणका अद्भुत प्रभाव कहा है अब श्रवण से पश्चात् होनेवाला जो मनन है तिसका भी फल कथनकरना उचित है इस प्रश्नका उत्तर कहते हैं ॥ **मन्नेकीगति कहीनजाय। जेकोकहेपीछे पछुताय। कागद कलम न लिखनहार ॥** मननकरने की जो (गति) फल है सो कहानहीं जाता क्योंकि जो परमात्मस्वरूप वस्तु है सो ज्ञानद्वारा श्रवण

तथा मनन निदिध्यासनका फलहै तिसको वाणी से नहीं कहसके जेकर कोई कहे तब पश्चात्तापही करेगा क्योंकि सर्वप्रकार से अविषयवस्तु को कथन करने से तिसको वाच्यत्व स्वभिन्नत्वदृश्यत्व की प्राप्तिहोने से पश्चात्ताप होताहै जो मननका फल आनन्द स्वरूप वस्तु परमात्मा है सो कलम से कागजपर लिखा नहीं जाता क्योंकि उसका लेशरूप मनुष्यानन्द से लेकर हिरण्यगर्भ के आनन्द पर्य्यंत आनन्दही कलम से लिखाजाता है॥ अब इस अर्थकी पुष्टिवास्ते श्रुतियोंको लिखते हैं॥ तथाहि॥ यतोवाचोनिवर्त्तन्ते। अप्राप्यमनसासह। आनन्दंब्रह्मणोविद्वान्। न बिभेति कुतश्चनेति। तैत्तरीय० उप० ब्रह्मानन्दवल्लीखण्ड० ९॥ अर्थ॥ जिसब्रह्मसे (मनसा) विज्ञानकरके सहित वागिन्द्रिय (अप्राप्य) ब्रह्मको न प्रकाशकर निवृत्त होजाती है सो ब्रह्महै इसप्रकार सर्वथा अविषय ब्रह्मके स्वरूपभूत आनंदको जो जानता है सो सर्वथा निर्भयता विशिष्टपदको प्राप्त होताहै॥ सैषाऽऽनंदस्यमीमांसाभवति युवास्यात्साधुयुवाऽध्यायकः। आशिष्ठोदृढिष्ठोबलिष्ठः। तस्ये

यंपृथिवीसर्वावित्तस्यपूर्णास्यात । सएकोमानुषआनन्दः ॥ अर्थ ॥ ब्रह्मस्वरूप आनंदका जो लेशरूप विषयानंदहै तिसकी यह (मीमांसा) विचारणाहै जो पृथिवी संपूर्णकापति श्रेष्ठगुणयुक्त युवावस्था संपन्न तथा अधीतविद्या होवे और सर्वको शासनाकरे शरीरसे अत्यन्तदृढ़ अतिवलवान्होवे इसप्रकारके राजाकी यह संपूर्ण पृथिवी वित्तकरके पूर्णहोवे तिसको जो आनन्द है सो मनुष्यानंद कहते हैं ॥ तेयेशतंमानुषाआनन्दाः । सएकोमनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः । श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य ॥ अर्थ ॥ और जो शतमनुष्यानंदहैं सो एकमनुष्य गन्धर्वनका आनंदहै जो मनुष्य धर्मानुष्ठानसे गन्धर्वभावको प्राप्तहुयेहैं वह मनुष्य गन्धर्व हैं गन्धर्वन में अन्तर्द्धानादि शक्ति तथा मनुष्यनकी अपेक्षा से शरीर इंद्रिय सूक्ष्मता और क्षुधा पिपासा आदि द्वन्द्वनकी सहनशीलताहै इसवास्ते गन्धर्वन में मनुष्यानंद से शतगुणा अधिक आनंद है और जो (श्रोत्रिय) वेदादि विद्यायुक्तहै तथा मनुष्यानंद में (अकामहत) कामना प्रतिघात वर्जित है तिसको भी मनुष्यानंद से शतगुणा अधिक आनंदकी प्राप्तिहोती है प्रथम मनुष्यानंद केस्थान में जो अकामहतका अग्र-

हण है तिसका तात्पर्य्य यह है जोकि अकामहत सुखकी अधिकताका कारण है जेकर प्रथम पर्य्याय में अकामहत ग्रहणकरते तव उस अकामहत श्रोत्रियको मनुष्यके समान आनंद कहने से अकामहतको विशेष सुखकी कारणता का निश्चयनहीं होता इसवास्ते द्वितीयगन्धर्वानंद के स्थान में ग्रहण कियाहै याते शतगुणा अधिक सुखकी प्राप्ति का कारण अकामहतहै इससे यह निश्चय हुआ श्रोत्रिय तथा मनुष्यानंद अकामहत मनुष्यको मनुष्यानन्द से शतगुणा अधिक आनन्द प्राप्तहोताहै इसीप्रकार सर्वपर्य्यायों में अकामहत पूर्वपर्य्याय पठित आनंद से शतगुणा अधिक आनंदका कारणहै ऐसाजानना ॥

तेयेशतंमनुष्यगन्धर्वाणामानन्दाः। सएकोदेवगन्धर्वाणामानन्दः। श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य॥ अर्थ॥ वह पूर्वउक्त जो मनुष्य गन्धर्वों के शत आनन्द हैं सो एक देवगन्धर्वनका आनन्द है जिनसे गन्धर्व जातिको देवगन्धर्व कहते हैं और जो वेदादि विद्यायुक्त मनुष्य गन्धर्वानन्द से तृष्णा वर्जित है तिसको भी देवगन्धर्वनके समान आनन्दकी प्राप्ति होतीहै॥ तेयेशतंदेवगन्धर्वाणामानन्दाः। सए

कः पितृणांचिरलोकलोकानामानन्दः । श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य ॥ अर्थ ॥ जो देवगन्धर्वन के शतआनन्द हैं सो एक चिरकाल स्थायी लोकवासी पितरोंका आनन्दहै और जो श्रोत्रिय देवगन्धर्वानन्द में कामना वर्जितहै तिसको भी पितरनके समान आनन्द की प्राप्ति होती है ॥ तेयेशतंपितृणांचिरंलोकलोकानामानन्दाः । सएकआजानजानांदेवानामानन्दः । श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य ॥ अर्थ ॥ जो बहुकाल स्थायी लोकवासी पितरनकेशतआनन्द हैं एक स्मार्त्त कर्म से देवस्थान में होनेवाले आजानज देवनका आनन्द है और जो पितरन के आनन्दकी कामना वर्जित विद्वान् है तिसको भी आजानज देवन के समान आनन्द प्राप्त होताहै ॥ तेयेशतमाजानजानांदेवानामानन्दाः । सएकःकर्मदेवानांदेवानामानन्दः । येकर्मणादेवानपियन्ति । श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य ॥ अर्थ ॥ जो आजानज देवनके शतआनन्द हैं सो एक कर्म देवता रूप देवनका आनन्द है जो वैदिक कर्म्म करके देवनको प्राप्तहुए हैं वह कर्म देवहैं और जो आजानज देवनके सुखमें कामना

वर्जितहै तथा वेदविद्याका ज्ञाताहै तिसको भी कर्मदेव-
नके समान आनन्दकी प्राप्ति होतीहै॥ तेयेशतंकर्म
देवानांदेवानामानन्दाः। सएकोदेवानामान
न्दः। श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य॥ अर्थ॥ जो
कर्म देवनके शतआनन्द हैं सो एकते तीस मुख्य देव
नका आनन्दहै और जो कर्म देवनके आनन्दकी का-
मना रहित विद्वान् है तिसको भी मुख्य देवनके आनन्द
के समान आनन्द होताहै॥ तेयेशतंदेवानामान
न्दाः। सएकइन्द्रस्याऽऽनन्दः। श्रोत्रियस्यचा
कामहतस्य॥ अर्थ॥ जो मुख्य देवनके शतआन-
न्द हैं सो एक मुख्य देवनके स्वामी इन्द्रका आनन्द है
और जो मुख्य देवनके सुखकी कामना रहित विद्वान्है
तिसको भी इन्द्रके समान सुख प्राप्त होताहै॥ तेयेश
तमिन्द्रस्यानन्दाः। सएकोबृहस्पतेरानन्दः।
श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य॥ अर्थ॥ जो शतइन्द्र
के आनन्द हैं सो एक बृहस्पतिका आनन्द है और जो
इन्द्र सुखकी कामना वर्जित विद्वान्है तिसको भी बृहस्प-
तिसमान आनन्दकी प्राप्ति होताहै॥ तेयेशतंबृहस्प
तेरानन्दाः। सएकःप्रजापतेरानन्दः। श्रोत्रि

यस्यचाकामहतस्य ॥ अर्थ ॥ जो बृहस्पतिके शत आनन्दहैं सो एक (प्रजापति) विराट्का आनन्दहै और जो बृहस्पतिके आनन्दमें कामना रहित विद्वान् है तिसको भी प्रजापतिके समान आनन्दकी प्राप्ति होतीहै॥ तेयेशतंप्रजापतेरानन्दाः । सएकोब्रह्मणआनन्दः । श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य । सयश्चायंपुरुषे । यश्चासावादित्ये । सएकः । तै० उप० ख० ८॥ अर्थ ॥ जो शतप्रजापतिके आनन्दहैं सो एक (ब्रह्मणः) हिरण्यगर्भका आनन्दहै और जो प्रजापतिके आनन्द में कामना वर्जित विद्वान्है तिसको भी हिरण्यगर्भ के समान आनन्दकी प्राप्ति होतीहै अब इस लेशमात्र आनन्दसे परे जो कागजमें कलमसे नहीं लिखाजाता मनवाणीका अविषयहै तिसका सद्भाव उपाधि के विलापद्वारा बोधनकरतेहैं जो यह पुरुष शरीर में आनन्द है तात्पर्य यह है मनुष्य से लेकर हिरण्यगर्भ शरीर में अकामहत विद्वान करके अनुभूत आनन्द है और जो आदित्यरूप अधिष्ठान में आनन्दरूप वस्तु है सो एक अद्वैतरूप है जिसके जानने से सर्व प्रपंचका विलय होता है ॥ प्रकरण में वार्त्ता यह निर्णीत हुई मननकी (गति) फलनहीं कहाजाता जेकर कोई उसकी

इयत्ता अर्थात् इदन्ता कहे तब पश्चात्ताप करेगा क्योंकि उसका लेशमात्र आनन्द मनुष्यसे लेकर हिरण्यगर्भतक कथन करते हैं परन्तु सो निर्विभाग आनन्द वाणी से कहानहींजाता और कागज में कलम से लिखानहीं जाता॥ हे गुरो मननके फलको यद्यपि पूर्व उक्तप्रकार से मनसहित वचनकी अविषयता है तथापि मननका स्वरूप आप मेरे प्रति कथन करो इस शङ्काके निराशवास्ते कहते हैं॥ **मन्नेकाबहकरनाविचार। ऐसानामानिरंजन होय। जेकोमनिजाणैमनिकोय १२॥**

जो बैठकर विवेकिजन विचारकरते हैं सो मननका स्वरूप है तत्त्वनिर्णयके वास्ते युक्ति चिंतनका नाम मननस्वरूप विचार है सो इस प्रकारके विचारका बोधक (निरञ्जन) परमात्मा का नाम है जिस नाम के विचार से परमात्मा के यथार्थ स्वरूपका साक्षात्कार होता है जेकर कोई भी परमात्मा के नाम ॐकार का तथा सतिनामकरता पुरुष इत्यादि नामनका (मनि) विचारकरना जानता है तिसके आगे केवल शुष्कतर्कका चिन्तनरूप मनन (कोय) क्याहै अर्थात् सो अनात्मा का मनन तिसकी अपेक्षासे अतितुच्छ है इस अर्थमें प्रमाण पूर्वही निर्णीत है क्योंकि केवल शुष्कतर्क से आत्मविषयक मतिकी

प्राप्तिनहीं होती यह वार्ता श्रुतिप्रमाण से (गावैकोवेखे हांदरा हदूर) इस पंक्तिके व्याख्यान में निश्चित है। और ॐकारका व्याख्यान तथा सतिनाम का व्याख्यान पूर्वकरा हैं सोभी मननरूप है परन्तु जिज्ञासुकी बुद्धिके विस्तार वास्ते श्रुतिप्रमाणसे निरञ्जन के नाम ॐकारका प्रकारान्तरसे व्याख्यान करतेहैं (तथाहि) **मात्रामात्राःप्रतिमात्राःकुर्य्यात्** ॥ अर्थ ॥ ॐकारकी सर्व अकारादि मात्राको प्रतिमात्रारूप से अनुसन्धान करे मात्रा तो अकार है तिसकी प्रतिमात्रा उकारहै और इसी प्रकार उकारमात्रा है तिसकी प्रतिमात्रा मकार है और मकारकी प्रतिमात्रा तुरीय प्रणव है जिसमें मात्राकालय चिन्तन करते हैं सो प्रतिमात्रा होती है अकार वाच्य विराट् को उकारवाच्य हिरण्यगर्भमात्र देखे हिरण्यगर्भ को मकारवाच्य ईश्वररूप देखे फिर ईश्वरको अपना आत्मारूप से देखे इस से पश्चात् तुरीयका अनुसन्धान कर्तव्य है सो प्रकार लिखते हैं॥ **अथ तुरीयईश्वरग्रासःस्वराट्स्वयमीश्वरः। स्वप्रकाशश्चतुरात्मोतानुज्ञानुज्ञाऽविकल्पैरोताह्ययमात्मा यथेदंसर्वमन्तकालकालाग्निःसूर्योऽस्रैः ॥**

अ० ॥ अब तुरीयात्मा का निरूपण करते हैं सो तुरीय

वस्तु चैतन्य ईश्वरको भी ग्रस लेता है इस से ईश्वर ग्रासहै और तिसका कोई दूसरा संहारक नहीं इससे सो स्वराट् तथा स्वयंईश्वर है और स्वप्रकाश होनेसे अपने प्रकाश वास्ते प्रकाशान्तर की अपेक्षा नहीं करता सो तुरीयआत्मा भी ओत १ अनुज्ञातृ २ अनुज्ञा ३ अवि-कल्प ४ इन भेदनसे चारप्रकारकाहै तिसमें व्यापक स्वरूप का नाम ओतहै इसको दृष्टान्त से कहते हैं जैसे अन्तःकाल में कालाग्निरूप सूर्य्य (अर्कैः) किरणों करके सर्व को संहार करनेवास्ते सर्ववस्तुमात्र में व्याप्त होता है इसीप्रकार तुरीयआत्मा ईश्वर को संहार करनेवास्ते सतचितरूप रश्मिकरके व्याप्त होता है तात्पर्य्य यह है कारणात्मा में सतचित आनन्दरूप तुरीय वस्तु को अनुस्यूत विचार करनेका नाम ओतयोग है ॥ अनुज्ञाता ह्ययमात्मा अस्यसर्वस्यस्वात्मानन्ददातिदर्शयतिइदंस्वात्मानमेवकरोतियथातमःसविता ॥ अर्थ ॥ अनुज्ञाता (हि) निश्चित (अयम्) आत्मा (यह) आत्मा निश्चयकरके अनुज्ञाता है जो किसी वस्तुको देनेवास्ते सङ्कल्प करता है सो लोक में अनुज्ञाता कहाजाता है सो यह तुरीय आत्मा इस सर्व प्रपंचको अपने आत्मा को देताहै जब सर्वको अपने

स्वरूप चैतन्य से दिखाय देता है तब अपने आपको दाता कहाजाता है तात्पर्य्य यह है स्वतःसत्ताहीन प्रपंच को अपने सत्‌चित् आनन्दरूप से प्रतीति योग्य करताहै भाव यह है जैसे रात्रिकाल के अन्धकार को प्रातःकाल सूर्य्य भगवान् अपना स्वरूपही करलेता है इसी प्रकार सर्व वस्तुको तुरीयआत्मा अपना स्वरूप करलेता है ता-त्पर्य्य यह है प्रपंचको तुरीय स्वरूपसे पृथक् न देखना ऐसे विचारका नाम अनुज्ञातृयोग है॥ अनुज्ञैकरसोह्यमात्मा चिद्रूपएव यथा दाह्यं दग्ध्वा अग्निः॥ अर्थ॥ यह आत्मा अनुज्ञारूप है अर्थ, एकरस चिद्रूपही है जैसे दाह्यरूप काष्ठादिकन को दग्धकरके अग्निस्थित होती है इसीप्रकार सच्चिद्रूप तुरीयवस्तु अपने में अध्य-स्त कारणात्मा को अपना स्वरूपमात्रकरके केवल स-च्चिदानन्द रूपसे शेषरहता है तात्पर्य्य यह है दग्धकृत काष्ठादिक मल अग्निवत् कारणात्मा को स्वस्वरूप में लीनकरेहुए चिन्मात्र का अनुसन्धानरूप विचारको अनुज्ञायोग कहते हैं॥ अविकल्पोह्ययमात्मा अवाङ्मनोगोचरत्वाच्चिद्रूपः॥ न्रृसिंह० उत्तरता० उप० खं० २॥ अर्थ॥ यह आत्मा अवि-कल्परूप है क्योंकि मनवाणी का अविषय होनेसे केवल

चिद्रूपहै तात्पर्य यहहै जैसे अपने दाह्यकाष्ठादिकन को दग्धकर निर्धूम अग्नि होती है तैसा अज्ञान मलको दग्धकर अज्ञानजनित विक्षेप शून्य अनुज्ञा है और जैसे शान्त अग्नि उष्णतादिक गुणरहित स्वरूपावस्थ होती है तैसे शान्तस्वरूप परमात्मा सर्व कल्पना वर्जित अविकल्प कहा जाताहै शान्तस्वरूप परमात्मा का अनुसंधानरूप विचार अविकल्प योगहै इस प्रकारसे निरंजन के नाम ॐकारद्वारा जो परमात्मा का मनन है तिसकी अपेक्षा से अनात्म पदार्थन का मनन तुच्छ है ॥ १२ ॥

मन्नैसुरतिहोवैमनिबुद्धि। मन्नैसगलभवणकी सुधि॥ अर्थ॥ मनन करने से (सुरति) परमात्मामें अत्यन्त प्रेमरूप भक्ति होती है अथवा निदिध्यासनरूप अन्तःकरणकी वृत्ति होती है जो विना अनुभव से इत्थंभाव निश्चयरूप वृत्ति है तात्पर्य यहहै शास्त्र प्रतिपाद्य अपने आत्माका ब्रह्मरूप में संशय नहीं होता यहही मननका फलहै फिर (मनि) अन्तःकरण में (बुद्धि) साक्षात्काररूप वृत्ति होती है जिसको आत्मानुभव कहते हैं पश्चात् मनन के साक्षात्काररूप फल से सर्व प्रपंचकी (सुधि) ज्ञात होती है तात्पर्य यहहै सर्व प्रपंचका उपादान कारण ब्रह्महै तिसके ज्ञानसे सर्व प्रपंचका ज्ञान

होजाता है इस एकके विज्ञान से सर्व के विज्ञानकी रीति वेदमें प्रतिपादन करी है तथाहि॥ यदग्नेरोहितᳬं रूपंतेजस्तद्रूपं यच्छुक्लंतदपांयत्कृष्णं तदन्नस्यापागादग्नेरग्नित्वंवाचाऽऽरम्भणंविकारो नामधेयंत्रीणिरूपाणीत्येवसत्यम् ॥ १ ॥ अर्थ॥ इस छान्दोग्य उपनिषद् में तीन भूतनसे सृष्टि कही है तेज जल पृथिवी इन कारणों के ज्ञान से सर्व कार्यमात्रका ज्ञान होजाता है इस वास्ते प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध अग्नि १ सूर्य्य २ चन्द्र ३ विद्युत् ४ इन चार पदार्थन में कारणरूप भूतत्रयके ज्ञानसे इन चार पदार्थन को अवस्तुत्व निश्चय कराते हैं इस से इन भूतत्रय से भिन्न सर्व कार्य वस्तुमात्र में अवतुत्व जानना॥ जो अग्नि का (रोहितᳬंरूपं) लालरूपहै सो तेजका रूपहै तथा जो शुक्लरूपहै सो जलका रूपहै जो कृष्णरूपहै सो (अन्न) पृथिवी का रूपहै इस से अग्नि में से अग्नित्व दूरहुआ वाचारम्भणमात्र विकारहै तीन भूतनके रूपही सत्यहैं, तात्पर्य यहहै इस अग्निके कारण रूपनके विचारसे इनसे न्यारी अग्नि कुछवस्तुनहीं ऐसा जाननाचाहिये॥ यदादित्यस्यरोहितᳬंरूपंतेजसस्तद्रूपं यच्छु

क्लं तदपांयत्कृष्णंतदन्नस्यापागादादित्यादादित्यत्वं वाचारम्भणंविकारोनामधेयंत्रीणि रूपाणीत्येवसत्यम् २॥ अर्थ ॥ जो आदित्य का लालरूपहै सो तेजका रूपहै जो शुक्लहै सो जलका रूप है जो कृष्णरूप है सो पृथिवी का इस प्रकारके विचार से आदित्यसे आदित्यत्व दूरहुआ वाचारम्भणमात्र विकारहै तीन रूपही सत्य हैं॥ यच्चन्द्रमसोरोहितछं रूपंतेजसस्तद्रूपंयच्छुक्लंतदपांयत्कृष्णं तदन्नस्यापागाच्चन्द्राच्चन्द्रत्वं वाचारम्भणंविकारोनामधेयंत्रीणिरूपाणीत्येवसत्यम् ३ ॥ अर्थ॥ जो चन्द्रमा का लालरूपहै सो तेजका रूप है जो शुक्लहै सो जलका रूपहै जो कृष्णहै सो पृथिवी का रूपहै इसप्रकारके विचार करने से चन्द्रसे चन्द्रत्व दूरहुआ वाचारम्भणमात्र विकारहै तीन भूतनके रूपही सत्यहैं॥ तात्पर्य यहहै कारणसत्तासे कार्य की पृथक् सत्ता नहीं किन्तु कारणही सत्य है॥ यद्विद्युतोरोहितछंरूपं तेजसस्तद्रूपंयच्छुक्लंतदपां यत्कृष्णंतदन्नस्यापागाद्विद्युतो विद्युत्त्वंवाचारम्भ

एवंविकारोनामधेयं त्रीणिरूपाणीत्येवसत्यम् ॥ ४ ॥ एतद्धस्मवैतद्विद्वाꣳसआहुःपूर्वे महाशालामहाश्रोत्रियानर्नोऽद्यकश्चनाश्रुतममतमविज्ञातमुदाहरिष्यतीति ह्येभ्योविदां चक्रुः ॥ ५ ॥ छां० उप० अ० ६। खं० ४॥ अ० ॥ जो विद्युतका लालरूपहै सो तेजका रूपहै जो शुक्लहै सो जलका रूपहै जो कृष्णहै सो पृथिवी का रूप है इसप्रकार के विचारसे विद्युतका विद्युतपना निवृत्त हुआ वागालम्भन मात्र विकारहै तीनरूपही सत्यहैं इसी बातको अत्यन्त धर्मात्मा विद्वान्कृत साक्षात्कार कहते भये हमारे संप्रदाय में अब कोई भी अश्रुत अमत्त अविज्ञात को नहीं कथन करेंगे वह इन कारणों के ज्ञानसेही जानते भये ॥

सोम्यान्नेनशुङ्गेनापोमूलमन्विच्छाद्भिः सोम्यशुङ्गेनतेजोमूलमन्विच्छ तेजसासोम्य शुङ्गेनसन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाःसोम्येमाः सर्वाः प्रजाःसदायतनाःसत्प्रतिष्ठाः ४। छां० उप० अ० ६। खं० ८॥ अ० ॥ उद्दालकऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतुसे कहते हैं हे सोम्य (अन्न) पृथिवी

रूप (शुङ्ग) विकार करके आपको मूलकारण जान और जलरूप विकार करके तेजको मूलकारण जान तथा तेजरूप विकारकरके सत्रूप ब्रह्ममूल कारण (अन्विच्छ) जान इस वास्ते हे सोम्य यह संपूर्ण प्रजा सत् ब्रह्मरूप मूलकारणवाली हैं तथा सत्ही इन प्रजायों का (आयतन) स्थितिका स्थानहै और सत्ही (प्रतिष्ठा) लयका आधारहै जो वस्तु उत्पत्तिकाल में जिससे उत्पन्न होवे तथा स्थिति कालमें जिससे स्थितहोवे और प्रलय कालमें जिसमें लीन होवे सो वस्तु तिसका स्वरूप होती है जैसे मृत्तिकासे उत्पत्ति तथा मृत्तिकामें स्थिति और मृत्तिका में लीनता होनेसे घटादिक मृत्तिकाका स्वरूपहैं इसीप्रकार सर्व प्रजा सत्रूपहैं तिस सत्के ज्ञानसे सर्वका ज्ञान होताहै। प्रकरण में यह वार्त्ता निर्णीत होगई जो कि मनन करने से ज्ञानद्वारा सकल भवनों की ज्ञाति होतीहै सो पूर्वउक्त श्रुतिजन्य बोधसे सत्के ज्ञानद्वारा सर्व का ज्ञान होताहै॥ मन्नैमुहचोटानखाय। मन्नैयमकेसाथिनजाय। ऐसानामुनिरंजनहोय। जेकोमन्नजाणैमनिकोय॥ १२॥ मनन करने से (मुह) मुखपर यमदूतोंकी ताड़नारूप चोटनको नहीं खाता क्योंकि मननके प्रभावसे यमराज के दूतोंके साथ

नहीं जाता इसप्रकारका पूर्वउक्त (निरंजन) परमेश्वर का नामहै जेकर मननकरे तिस मननके सामने शुष्क तर्कनकरके मनन करना क्याहै अर्थात् परमेश्वरके नाम का जो मननहै तिसकी अपेक्षासे अनात्मजालका मनन करना अत्यन्त तुच्छहै इस स्थानमें इतना विचार कर्त्तव्यहै॥ जो यमराजका होना तथा तिसके दूतनका होना है तिसमें प्रमाणका निरूपण करते हैं॥ तथाहि॥ वैवस्वतंसंगमनंजनानां यमंराजानंहविषादुवस्यत॥ अ०॥ सूर्य भगवान्का पुत्र जो यमराज है तिसके प्रति पापात्मा आदि सर्व जनोंका संगमन होता है इस वास्ते हे जनो हविकरके यमराजको (दुवस्यत) तृप्तकरो इस ऋग्वेदके मंत्रसे यमराजका होना सिद्ध होताहै (तथा) कठउपनिषद्में यमराज तथा नचिकेता का संवाद प्रसिद्धहै संयमनी नगरीमें नचिकेताका जाना भी उसी उपनिषद्में निर्णीतहै उस उपनिषद्में यहश्रुतिहै नसाम्परायःप्रतिभातिबालंप्रमाद्यन्तंवित्तमोहेनमूढम्। अयंलोकोनास्तिपरइतिमानीपुनःपुनर्वशमापद्यतेमे॥ कठउप० व० २ श्रु० ६ अर्थ॥ अज्ञजनरूप बालको (सांपरायः) परलोक प्राप्तिसाधन नहीं प्रतीत होता क्योंकि चित्तके मोहसे मूढ़

तथा प्रमादीहै यह लोकहै परलोक नहीं ऐसे माननेवाला पुनः पुनः मेरे वशको प्राप्त होताहै। इस श्रुतिवचन से यमराजका लोक सिद्ध होताहै॥ **संयमनेत्वनुभूयेतरेषामारोहावरोहौतद्गतिदर्शनात्॥शा० अ० ३ पा० १ सू० १३॥** अ०॥ जो निषिद्धकर्म करनेवाले हैं वह यमके स्थानमें यमदूतनकी ताड़नाको अनुभव करके निषिद्धकर्मकारी जीव पृथिवीलोक में आतेहैं तिन जीवनका यातना अर्थात् ताड़नाके भोग वास्ते उस लोकमें (आरोह) गमन होताहै और निषिद्धयोनि अथवा उत्तमयोनिकी प्राप्तिवास्ते इस लोक में (अवरोह) आगमन होताहै क्योंकि पूर्वउक्त श्रुतिमें तिन जीवनकी यमके वशतारूपी गतिका दर्शन है॥ इतने प्रबन्ध से यमराजका तथा तिसके लोकका सद्भाव सिद्ध होगया अब यमराजकी पुरीका निरूपण करते हैं दक्षिणदिशा तथा दक्षिण पश्चिमकी नैर्ऋतिकोणके मध्य संयमनी पुरीहै वह सर्वहीपुरी वज्रमयहै देवता तथा दैत्यनसे नहीं भेदन करीजाती चतुरकोणहै चार तिसके द्वारहैं और एकहजार योजन तिसके विस्तारका प्रमाण है तिस पुरीमें चित्रगुप्तका मंदिर पचीस योजन विस्तार युक्तहै और दश योजन ऊंचाहै चारों तरफ लोहेके कोटसे

युक्तहै और चित्रगुप्त सर्व मनुष्यनकी आयु तथा पुण्य पापकी गणना करताहुआ कदापि मोहको नहीं प्राप्त होता तिस चित्रगुप्तके स्थानसे बीसयोजन फरक से धर्म-राजका मन्दिर अत्यन्त शोभायुक्तहै तिसका दोसौ यो-जन लम्बापन तथा दोसौ योजन चौड़ापनहै तिस मन्दिर में सूर्यवत् प्रकाशमान सो योजन विस्तारवाली सभाहै तिस सभामें धर्मराज दशयोजन विस्तृत दिव्य आसन में बैठाहै अप्सरागण गन्धर्वगणोंयुक्त अनन्त शोभायुक्त होरहाहै पितर मुनिजन ब्रह्मऋषि तथा राजऋषि उसस-भामें बैठते हैं परन्तु जो पापी जीव दक्षिणके द्वारसे अ-नेक क्लेशनको भोगतेहुए संयमनी पुरीमें गये हैं वह उस सभाको नहीं देखते किन्तु क्लेशकोही अनुभव करते हैं जिन्होंने ब्राह्मणको हनन कराहै और सुराको पान करते हैं गौओंको मारते हैं तथा जो बालकनको मारते हैं स्त्रीको हनन करते हैं गर्भको पतन करते हैं तथा जो प्र-च्छन्न पाप करतेहैं और जो गुरुदेव ब्राह्मणके द्रव्य की चोरी करते हैं तथा स्त्री बालक के द्रव्यको हरलेतेहैं॥ और जो ऋणको लेकर नहीं देते तथा धरोवरको नहीं देते और जो विश्वासका घात करतेहैं तथा विषयुक्त अन्नसे मारते हैं और जो दोषको ग्रहण करते हैं तथा गुणनकी

श्लाघा नहीं करते और गुणवानों में मत्सर करते हैं और जो सत्संगसे पराङ्मुख होकर नीचनमें राग करते हैं तथा तीर्थ सज्जन सत्कर्म गुरुदेवनकी निन्दा करते हैं और पुराण वेद मीमांसा न्याय वेदान्त इनमें दोष लगानेवाले हैं और दुःखीको देख हर्ष करते हैं तथा हर्षवालेको दुःख देते हैं जो दुष्टचित्त दुःखदायक वचन कहते हैं और जो हितको नहीं सुनते तथा शास्त्रकी बातको नहीं सुनते और जो अपनीही श्लाघा करते हैं अपने आपको पंडित माननेवाले हैं इन पापोंवालियों को तथा और पापियों को यमराज के दूत ताड़ना करते २ लेजाते हैं परन्तु जिन जीवनको ताड़ना करनी होती है उनका एक ताड़ना देनेवाला शरीर बनता है जो सर्वप्रकारकी ताड़ना से नाश नहीं होता यह सर्वही पूर्व उक्त पापी जीव यम के मार्ग में क्लेशों को सहारते हुए संयमनी पुरी के दक्षिण के दरवाजे में जाते हैं और पुण्यात्मा जीव पूर्व पश्चिम उत्तर के दरवाजे से यमराज की सभा में सुखपूर्वक प्रवेश करते हैं उनका यमराज दिव्यरूप से सत्कार करता है ॥ यह यममार्ग का अतिसंक्षेप से निरूपण करा है जिसको विशेष विस्तार देखना होवे सो गरुड़पुराण में से देखलेवे ॥ परमेश्वर के नाम को

मनन करनेवाला इसदुःखदायक मार्गको नहीं देखता१३॥

मन्नैमारगिठाकनपाय। मन्नैपतिसिउपरगट जाय। मन्नैमगुनचलैपन्थ। मन्नैधरमसेती सनबन्ध॥ ऐसानामुनिरञ्जनुहोय। जेको मनिजाणैमनिकोय १४॥ मननकरनेवाला परलोकके मार्ग में (ठाक) रोकको नहीं प्राप्तहोता तात्पर्य यह है जेकर मनन करनेवाले को निदिध्यासन द्वारा स्वरूप का साक्षात्कारहोजाय तबतो किसीलोक को उसके प्राण गमन नहीं करते इसी वास्ते श्रुतिमें यह लिखाहै जो कि विद्वान्‌के प्राण कहींको गमन नहीं करते किन्तु ब्रह्मस्वरूप हुआही व्यापक ब्रह्मभाव को प्राप्तहोता है और जेकर स्वरूपका ज्ञान न होवे बीचमेंही मरजाय तब उत्तमलोकन को प्राप्तहोता है उस उत्तमलोक में प्राप्तिवाले को मार्गमें निरोध मननके प्रभावसे नहीं होता किन्तु मनन करनेवाला पुरुष (पतिसिउ) सत्कारसे प्रत्यक्ष गमनकरता है और सोई पुरुष मनन के प्रभावसे (मगु) मार्गको (पन्थनचलै) पैदल नहीं जाता किन्तु सत्कार से दिव्ययान में बैठकर गमन करता है इसीप्रकार मननके प्रभावसे धर्मराज के साथ सम्बन्ध होता है आगेकी

दो पंक्तिका अर्थ पूर्वनिर्णीत है ॥ पूर्वउक्त अर्थ में प्रमाणका निरूपण करते हैं ॥ **नतस्यप्राणाउत्क्रामन्त्यत्रैवसमवनीयन्ते ब्रह्मैवसन्ब्रह्माप्येति ॥ नृसिंह० उत्तरता० खं० ५** ॥ अर्थ ॥ तिस विद्वान्के प्राण तथा इन्द्रियगण देहसे उत्थानहोकर कहीं को नहीं जाते किन्तु (अत्रैवसमवनीयन्ते) इसीस्थान में लीनहोते हैं जीवन्मुक्ति दशामें ब्रह्मस्वरूप हुआही (ब्रह्माप्येति) ब्रह्ममें लीनहोता है ॥ **धर्मराजपुरेगन्तुंचतुर्मार्गाभवन्तिच। पापिनांगमनेपूर्वसतुतेपरिकीर्त्तितः ४१** ॥ अर्थ ॥ धर्मराज के पुरमें गमनकरने को चार मार्ग हैं पापीजीवन के गमन करने वास्ते दक्षिणकी तरफका मार्ग पूर्व कथन करा है जिस मार्गमें अनेक क्लेशहोते हैं. तिसमार्ग का संक्षेप यहहै छियासीहजार योजन विस्तार है यमके मार्गका परन्तु वैतरणी नदीको छोड़के और पाक तथा रुधिरवत् तप्ततैल सदृश जलवाली वैतरणीनदी सौ योजन विस्तारवाली है ॥ तिसमार्ग में अत्यन्त पापियोंको क्लेश देनेके स्थान षोड़शपुर आते हैं सौम्य १ सौरिपुर २ नगेन्द्रभवन ३ गन्धर्वशैल ४ आगमपुर ५ क्रौंचपुर ६ क्रूरपुर ७ विचि-

त्रभवन ८ बह्वापद ९ दुःखद १० नानाक्रन्दपुर ११ सुतप्तभवन १२ रौद्रपुर १३ पयोवर्षण १४ शीताढ्य १५ बहुभीतिपुर १६, इन षोड़श पुरोंमें पापियों को यमदूत अत्यन्त क्लेश देते हुये प्राप्तकरते हैं, यह दक्षिण मार्गका संक्षेप से निरूपण कराहै ४९ ॥ पूर्वादिभिस्त्रिभिर्मार्गैर्येगताधर्ममन्दिरे ॥ तेहिसुकृतिनःपुण्यैस्तस्यांगच्छन्तितांच्छृणु ५० ॥ अर्थ॥ जो पूर्व उत्तर पश्चिम के तीनमार्गों करके धर्म्मराज के मन्दिर में प्राप्तहुये हैं वह सुकृतजन पुण्योंकरके तिसधर्म्मराज की सभा में गमनकरते हैं तिनको श्रवणकर ५० ॥ पूर्वमार्गस्तुतत्रैकःसर्वभोगसमन्वितः ॥ पारिजाततरुच्छायाच्छादितो रत्नमण्डितः ५१ ॥ अर्थ ॥ तिस यमपुरी में एक पूर्वकी तरफ़का मार्गहै सर्व भोगों करके समन्वितहै तथा कल्पवृक्षकी छाया करके आच्छादित रत्नों करके मंडितहै ५१ ॥ विमानगणसंकीर्णोहंसावलिविराजितः ॥ विद्रुमारामसंकीर्णपीयूषद्रवसंयुतः ५२ ॥ अर्थ ॥ विमानों के समूहों करके व्याप्त है तथा हंसोंकी पंक्ति से शोभायमान है विशेष वृक्षनके बगीचों से संकीर्ण

तथा अमृतके द्रवकरके संयुक्त है ५२ ॥ **तेनब्रह्मर्षयो यान्तिपुण्यराजर्षयोऽमलाः। अप्सरोगणगन्धर्वविद्याधरमहोरगाः ५३** ॥ अर्थ ॥ ब्रह्मऋषि पवित्र तथा निर्मल राजऋषि और अप्सरन के तथा गन्धर्व विद्याधरन के गण तथा बड़े बड़े दिव्यरूपधारी सर्पन के गण उस धर्मराज की पुरीमें तिस पूर्व के मार्ग करके प्रवेश करते हैं ५३ ॥ **देवताराधकाश्चान्ये शिवभक्तिपरायणाः। ग्रीष्मेप्रपादानरता माघेकाष्ठप्रदायिनः ५४** ॥ अर्थ ॥ देवताओं का आराधन करनेवाले तथा अन्य शिवभक्तिपरायण पुरुष और ग्रीष्मकाल में प्याऊ के लगानेवाले तथा माघ में काष्ठन का दान करनेवाले उस पूर्व के मार्ग से जाते हैं ५४ ॥ और जो वर्षाकाल में विरक्त पुरुषों को दान मान से विश्राम कराते हैं तथा दुःखित को देखकर परमेश्वर स्वस्थ अमृत करे ऐसे कथन करते हैं और जो दुःखी को आश्रम देते हैं और जो सत्यसंभाषण में प्रीतिवाले हैं तथा जो क्रोध लोभ से रहित हैं और पिता माता के भक्त हैं गुरु की सेवा से नहीं उत्थान होते और भूमि १ गृह २ गौ ३ विद्या ४ इनको देते हैं और पुराण के

वक्ता तथा श्रोता हैं पारायण के परायण हैं यह पुण्यात्मा तथा इनसे अन्य भी पुण्यात्माजन पूर्व के मार्ग से जाते हैं॥ और एक उत्तरका मार्ग अनन्त महारथों से तथा नर-यानों से युक्त हरिचन्दन से मंडितहै अर्थात् उस मार्ग में नरयान पालकी आदिक तथा महारथ पुरुष भी निवास करतेहैं और उस मार्ग में अमृतद्रव से पूर्ण सरोवरहै उस सरोवरमें हंस सारस चक्रवाक आदिक पक्षियोंकी अत्य-न्तशोभाहै तिस मार्ग करके यह वक्ष्यमाण मनुष्य धर्मकी सभा में गमन करते हैं जो वैदिक कर्म करते हैं तथा जो अभ्यागतन का पूजन करते हैं और जो दुर्गा तथा सूर्य का भजन करते हैं और जो पर्वन में तीर्थ स्नान करते हैं और जो धर्मयुद्ध में तथा अनशनव्रतकर मृत्यु हुये हैं॥ और जो काशी में मरेहैं और गौओंके स्थान में तथा विधिसे तीर्थ जल में मरे हैं, और जो ब्राह्मण के वास्ते तथा स्वामी के कार्य्य वास्ते तथा तीर्थक्षेत्रों में मरे हैं, और जो देवमंदिर के नाश में तथा योगाभ्यास में मरे हैं और जो सत्पात्र का पूजन करतेहैं तथा महा-दानमें रतहैं यह संपूर्ण उत्तर मार्ग से धर्मकी सभा में प्रवेश करते हैं॥ और एक पश्चिम का मार्ग है अनन्त रत्नों से भूषितहै अमृतरसयुक्त जलपूर्ण जलाशयकर

शोभितहै और ऐरावतके कुलमें होनेवाले मत्तहस्तियों करके सो मार्ग व्याप्त होरहाहै और उच्चैःश्रवा अश्वनके तुल्य अश्वोंकरके युक्तहै इस मार्ग करके जो अध्यात्म शास्त्र के चिन्तनसे आत्मपरायणहैं वह सभा में प्रवेश करते हैं और जो विष्णु के अनन्यभक्त हैं तथा जो गायत्रीमंत्रका जप करतेहैं वह भी धर्मसभामें प्रवेशकरते हैं, इसीभावसे श्रीगुरुजी मननकी प्रशंसा करते हुये, मन्नैजम केसाथ न जाय,मन्नैधर्म सेतीसनबंध,,इत्यादि पाठसे मनन करनेवालों की उत्तम गति कहते हैं और जो परहिंसा परद्रव्य परकी निन्दा इनसे पराङ्मुख हैं और जो परस्त्रीविमुख हैं तथा अग्निहोत्र कर्मके करनेवाले हैं और निष्काम वेदपाठ करनेवाले हैं ब्रह्मचर्य्य व्रतके धारण करनेवाले वनमें तप करनेवाले लोष्ट कांचन पाषाण को सम देखने वाले संन्यासी लोग ज्ञान वैराग्य संपन्न सर्व भूतन के हितमें रत शिव विष्णु के व्रत करनेवाले ब्रह्ममें सर्व कर्मनको समर्पण करनेवाले तीन ऋणों से वर्जित पंच यज्ञमें प्रीतिवाले पितरनको श्राद्ध करनेवाले विहितकाल में सन्ध्या करनेवाले नीचन के संगको त्यागकर सत्संग परायण यह पूर्वउक्त संपूर्ण अप्सरनके गणों से युक्त अमृत पान करतेहुये श्रेष्ठविमानन पर बैठकर धर्मराजको

सभामें प्रवेश करते हैं उस कालमें धर्मराजे चतुर्भुज होकर बड़े सत्कार से पेशवाई में जाताहै आइये बड़ा आनन्द हुआ ऐसे २ शब्दन से सत्कार करताहै,, यह सर्वही विस्तारपूर्वक गरुड़पुराणमें प्रतिपादन कराहै १४ हे भगवन् जो श्रवण मनन करते हुये स्वरूप साक्षात्कार से वर्जित बीच में मरगये हैं तिनकी उत्तमगति आपने कही और जिसको साधन संपत्ति से ज्ञानहुआ है तिसकी व्यवस्था कहो तिसपर कहते हैं ॥ **मन्नैपाव हिमोषदुआर । मन्नैपरवारैसाधार ॥ मन्नैतरै तारैगुरुसिष । मन्नैनानकभवैनाभिख ॥ ऐसा नामानिरंजनुहोय । जेकोमन्निजाणैमनिकोय** १५ मननके प्रभाव से निदिध्यासनद्वारा मोक्षका द्वार जो ज्ञानहै तिसको प्राप्त होताहै फिर (सा) सो पुरुष (परवारै) ज्ञानकी संप्रदायको (धार) धारण करताहै तिसके पश्चात् अनात्मजाल से (तरै) अर्थात् संसारसे पर पार आनन्दस्वरूप आत्मवस्तु को प्राप्तहोता है और आप (गुरु) उपदेशक होकर शिष्यन को संसार से तारे है श्रीगुरुजी कहते हैं (भिख) दीन होकर संसार में (भवैन) भ्रमण नहीं करता तात्पर्य यहहै

ज्ञानके होने से अज्ञानके वशहुआ पुनःपुनः जन्म मरण रूप विनाश को नहीं प्राप्तहोगा, इसी अर्थ को श्रुति बोधन करती है तथाहि ॥ इहैवसन्तोऽथविद्मस्तद्वयं न चेदवेदिर्महतीविनष्टिः । यएतद्विदुरमृतास्तेभवन्त्यथेतरेदुःखमेवापियन्ति ॥ बृह० उप० अ० ४ ब्रा० ४ श्रु० १४ ॥ अर्थ ॥ इस अनेक दुःख स्थान देहमें वर्त्तमान हुयेही अज्ञान निद्रा मोहित होनेसे वड़े भारी क्लेश से हमने तिस ब्रह्मतत्त्व को आत्मरूप से जानाहै (चेत) जेकर न जानते तब जन्म मरण प्रवाहरूप बहुत वड़ा विनाश होता जिन्हों ने ब्रह्मतत्त्वको आत्मरूपसे जानाहै वह जन्ममरण प्रवाह से रहित हुये हैं और इतरजीव केवल दुःख कोही प्राप्त हुये हैं ॥ इस श्रुति से यह सिद्धहुआ जोकि आत्मज्ञान से संसार में दीनवत् भ्रमण नहीं करता । इस वास्ते मनन अत्यन्त प्रशस्त है अवश्य करना योग्यहै १५ हे भगवन् आपने मननको अवश्य कर्तव्य प्रतिपादनकरा परन्तु अब तिस मननका विषय वस्तु भी कहो जिसके जानेसे तिसका निदिध्यासन भी करों इसशंकासे सोलहवीं सोपानका आरम्भ करते हैं ॥ पंचपरवाणपंच

परधान ॥ पंचेपावहिदरगहिमानु । पंचेसोहहिदरिराजानु । पंचाकागुरुएकधियानु ॥

हे शिष्य जो वस्तु मननका विषयहै सो गन्धर्व पितर देवता असुर राक्षस इन पंचन से (पर) परे है अर्थात् इन पंचनका अधिष्ठानहै अथवा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र निषाद इन पंचनका अधिष्ठान रूप पर है और (वाण) केवलहै अर्थात् अद्वैत रूप एकरसहै वाण नाम केवल काभी कोशमें लिखाहै इसीप्रकार (पंच) पूर्वउक्त गन्धर्वादिक पंच अथवा ब्राह्मणादिक पंच इनसे परे जो अव्याकृत रूप आकाश तिसका (धान) अधिष्ठानहै स्थिति के स्थानका नाम धान है इस वास्ते पूर्वउक्त गन्धर्वादिक पंचउपलक्षित संपूर्ण प्रपंचका अधिष्ठान रूप पर जो अव्याकृत तिसकी स्थितिका स्थान आत्मवस्तु मनन का विषय है इसमें इतना और भी जानना जो कि गन्धर्वादिक पंचका अधिष्ठान आत्मापरम्परा से है और पंचपरधान शब्दसे बोध्य अव्याकृत रूप आकाश का साक्षात् आत्मा अधिष्ठान है हे भगवन् तिसका अनुभव रूप ज्ञान कैसे होताहै इस शंकासे गुरु कहते हैं (पंचेपावहि दरगहिमानु) पंचे दरगहिमानु पावहि यह अन्वय है हे शिष्य वाक १ मन २ चक्षु ३ श्रोत्र ४ घ्राण ५ इन

पंचन को (दरगहि) द्वारग्रहण करके (मानु) ज्ञानको (पावहि) प्राप्तहोते हैं तात्पर्य यहहै वागादिक इन्द्रिय जन्य ज्ञानसे सो आत्मवस्तु प्रकाशित नहीं होती किन्तु इन्द्रियजन्य ज्ञानादिक तिस आत्मा से प्रकाशित होते हैं इस प्रकारका जो साक्षीस्वरूप ब्रह्महै सो मननका विषयहै। हे भगवन् जो इन्द्रियजन्य ज्ञानका प्रकाशक रूप वस्तु जनायाहै सो मनन के विषय आत्मा से पृथक् होगा इस शंका के होनेपर कहते हैं (पंचेसोहहिदररा-जानु) इस स्थानमें पंचनाम विस्तृत वस्तुकाहै क्योंकि पचि विस्तारे इस धातुसे पंच शब्द वनताहै तिसमें जेकर भावमें प्रत्यय कराजाय तव तो विस्तार का वोध होताहै और जो कर्ममें प्रत्यय कराजाय तव विस्तृतवस्तु का वोध होताहै और जेकर कर्त्तामें प्रत्ययकराजाय तव विस्तारकर्ता का वोधहोता है प्रकरण अनुसार जैसा वनपड़े तैसा अर्थ जानलेना और पंचसंख्या युक्त वस्तुका वोधक पंचशव्द कोशसे निश्चितहै प्रकरण में यह निश्चय हुआ हे शिष्य वह जो (राजानु) सर्व विद्याओंका राजारूप ज्ञान मोक्षका (दर) दरवाजाहै सो (पंचे) विस्तृत व-स्तुमें (सोहहि) शोभताहै तात्पर्य यहहै जो सर्व वृत्ति-योंका साक्षीहै तिसको ब्रह्मरूपता निर्णीतहै सो ब्रह्म

रूपता विनाशी तथा परिच्छिन्न वस्तु में बनती नहीं तथा सर्वज्ञानों की राजारूपता भी व्यापक अविनाशी ज्ञात होकर सर्वदुःख निवर्तकताविशिष्ट जो विषय तिस विषयक होनेसे बनती है इसवास्ते सर्व ज्ञान का प्रकाशक वस्तुही मनन का विषय है॥ और जो संसारका विस्तार करनेवाले ब्रह्मा आदिक तथा इतिहास पुराण स्मृतिशास्त्रका विस्तार करनेवाले व्यासादिक पंच हैं तिनका उपदेशक होनेसे गुरुहै और एक अर्थात् सजाति विजाति आदिकों के भेद से रहितहै तिसका हे शिष्य ध्यान कर्तव्यहै॥ इतने प्रबन्ध से मनन तथा निदिध्यासन के विषयका निरूपण करके तिसके निदिध्यासन का उपदेश शिष्य के प्रति कराहै। परन्तु यह व्याख्यान श्रुति सम्मत है इससे इस स्थान में श्रुति वचनोंको लिखकर तिनका व्याख्यान लिखते हैं॥ तथाहि॥

यस्मिन्पञ्चपञ्चजना आकाशश्च प्रतिष्ठितः।
तमेव मन्य आत्मानं विद्वान्ब्रह्मामृतोऽमृतम्॥

बृह० अ० ४ ब्रा० ४ श्रु० १७॥ अर्थ॥ जिस वस्तु में पूर्वउक्त गन्धर्वादि रूप पंचजन तथा माया तत्त्व रूप आकाश स्थितहै तिस अमृत आत्माको मैं अमृत स्वरूप विद्वान् ब्रह्मरूप मनन करके जानताहूं। तात्पर्य

यह है पूर्वकाल में अज्ञान से मर्त्यरूप आत्मा को मान-
ताथा अब ब्रह्मज्ञानसे अपने आपको अमृतरूप जानाहै॥

यद्वाचानाभ्युदितंयेनवागभ्युद्यते । तदेव
ब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते १ यन्मनसा
नमनुतेयेनाहुर्मनोमतम्। तदेवब्रह्मत्वंविद्धि
नेदंयदिदमुपासते २ यच्चक्षुषानपश्यतियेन
चक्षूंषिपश्यति। तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदि
दमुपासते ३ यच्छ्रोत्रेणनशृणोतियेनश्रोत्रमि
दंश्रुतम्। तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपा
सते ४ यत्प्राणेननप्राणितियेनप्राणःप्रणीय
ते। तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते ५
केन० उप० खं० १ अर्थ॥ इन श्रुतिवचनों में प्र-
त्यगात्मा को ब्रह्मरूपता वाक् आदिकन को द्वार मानके
बोधनकरी है और उपाधि करके भेद विशिष्ट ईश्वर तथा
प्राणआदिक उपास्य को मुख्य ब्रह्मरूपताका निषेधकरा
है श्रुत्यर्थ। जिस चैतन्य ज्योतिको वागिन्द्रियजन्य श-
ब्दकरके (अनभ्युदितं) नहीं प्रकाश करसकते और
जिस चैतन्य ज्योतिकरके वागिन्द्रिय सहित शब्द (अ-
भ्युद्यते) प्रकाशित होता है हे शिष्य तिसकोही तू

ब्रह्मज़ान और जो अपने आत्मज्योति की दृश्यउपाधि विशिष्ट ईश्वर शब्दआदिक इदंरूप से उपासना करेजाते हैं सो ब्रह्म नहीं किन्तु दृश्यकोटि प्रविष्टअनात्मरूप हैं मनन निदिध्यासन का विषय नहीं हैं, इसीप्रकार जिस दृक्वस्तु आत्मा को अन्तःकरण रूप मनकरके (नम-नुते) न तो कोई संकल्प करता है और न निश्चयकरता है किन्तु असङ्ग उदासीन तिस चैतन्यकरके संशयवृत्ति तथा निश्चय वृत्ति विशिष्ट अन्तःकरण को (मतम्) प्रकाशित ब्रह्मवेत्ता पुरुष कथन करते हैं तिसीको तू ब्रह्मजानकर मनन कर तिससे भिन्न इदंकरके उपास्यको ब्रह्म मतजान॥ तथा चक्षुजन्य वृत्तिकरके जिस चैतन्य को कोई (नपश्यति) नहीं जानता और जिस चैतन्य करके (चक्षूंषि पश्यति) अनेक चक्षुजन्य वृत्तियों को लोक जान लेता है तिसको तू ब्रह्म जान यह पूर्ववत् जानलेना इसी रीतिसे जिस चैतन्यको श्रोत्रजन्य वृत्ति करके कोई नहीं विषय करता और जिस चैतन्यकरके श्रोत्रजन्य वृत्ति प्रकाशित होती है तिसको ब्रह्मजान, और पूर्ववत् जानना और जिस चैतन्य को कोई भी (प्राणेन) घ्राणजन्यवृत्तिकरके (न प्राणिति) गन्धवत् नहीं जानता और जिस चैतन्यकरके, गन्ध विषय में

घ्राणवृत्ति को उत्पन्न करनेवास्ते (प्राण:प्रणीयते) घ्राणप्रेरणा कराजाता है तिसीको हे शिष्य ब्रह्मजानकर मननकर तथा तिसका ध्यानकर यह पूर्ववत् जानलेना॥ इतने विचारसे मनन के विषय का जो ज्ञान तिसकी उत्पत्तिमें द्वारका निरूपणकरा और इस विषयमें ज्ञानको जैसे सर्व विद्याओं की राजरूपता है तैसे (सुणियैसेप पीरपातसाहु) इस पंक्तिके व्याख्यान में निर्णीतहै अव जो एक धियान, इस पाठसे एकका ध्यान कर्तव्य कहा है तिसमें प्रमाण लिखते हैं। **एकधैवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमयध्रुवम्। विरजः पर आकाशादज आत्मा महान्ध्रुवः॥ तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः। नानुध्यायाद्बहूञ्छब्दान्वाचो विग्लापनं हि तदिति॥ बृ० अ० ४ ब्रा० ४ श्रु० २०।** २१॥ अर्थ॥ मनन निदिध्यासन से पश्चात् एक प्रकारसे द्रष्टव्य है सो यह आत्मवस्तु (ध्रुवं) नित्य (अप्रमयं) प्रमेयतासे रहित है और (विरजः) धर्माधर्म से रहित माया तत्त्वसे परजन्मवर्जित है तथा अविनाशी सर्वसे व्यापक आत्मा)का स्वरूप है तिसीको धीर पुरुष जानकर अपने आपको ब्रह्मभावकी इच्छावाला ब्राह्मण

शब्द से प्रतिपादित जिज्ञासु (प्रज्ञांकुर्वीत) निदिध्यासन करे और वाणी के श्रमके कारण बहुतसे अनात्मजालके कथन करनेवाले शब्दनको न चिन्तनकरे ॥ इस निदिध्यासनका स्वरूप पतञ्जलिऋषि ने अपने सूत्र में लिखाहै तथाहि ॥ तत्रप्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ यो० पा० ३ । सू० २ ॥ अर्थ ॥ तिसलक्ष्य में जो (प्रत्ययैकतानता) लक्ष्याकार वृत्तिका प्रवाह है सो ध्यान है ॥ और जो ब्रह्माआदिक सृष्टिका विस्तार करता है तथा वेदस्मृति आदिकन के विस्तार करता व्यासादिक हैं तिनका एकस्वरूप ईश्वर गुरु है यह पूर्व कहा है इसमें प्रमाण लिखते हैं ॥ सएषपूर्वेषामपिगुरुःकालेनानवच्छेदात् ॥ यो० पा० १ सू० २६ ॥ अर्थ ॥ सो यह सर्वका अन्तर्यामी ईश्वर (पूर्वेषामपिगुरुः) जो सृष्टिके आदिकाल में होनेवाले ब्रह्मा प्रजापति मनुआदिक व्यासादि हैं तिन सर्वका गुरुहै क्योंकि कालकृत गिनतीरूप परिच्छेदसे रहित होने से यावत् ज्ञानके उपदेशक आचार्य हैं वह बहुत से बहुत द्विपरार्द्ध पर्यन्त कालतक रहेंगे जब द्विपरार्द्ध अवस्था भोगकर ब्रह्मा परमात्मा में लीन होवेगा तिससे पश्चात् द्वितीय सृष्टिकी रचना में कोई विद्याका उपदे-

शक नहीं इसवास्ते उस काल में अन्तर्यामी कालकृत गिनती रहितही सर्वको उपदेश करता है श्रुतिमें भी ब्रह्मा के प्रतिविद्याका उपदेश करना ईश्वरको कहाहै॥

तथाहि ॥ योयोनियोनिमधितिष्ठत्येको विश्वानिरूपाणियोनीश्चसर्वाः । ऋषिप्रसूत कपिलं यस्तमग्रेज्ञानैर्बिभर्त्तिजायमानंचप श्येत् ॥ श्वेता० अ० ५ । श्रु० २ । योब्रह्मा णंविदधातिपूर्वंयोवैवेदांश्चप्रहिणोतितस्मै । तंहदेवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वैशरणमहंप्र पद्ये । श्वेता० अ० ६ मं० १८ ॥ अर्थ ॥ जो परमेश्वर (अयोनियोनिं) कारणरहित मूल प्रकृतिका सत्ता स्फुरति प्रदान करता एकही अधिष्ठाता है और सर्व शरीरोंका अधिष्ठाता है तथा शरीरन के कारण जो आकाशादिक हैं इन सर्व प्रकृतियोंका अधिष्ठाता है और (कपिल) कनकवत् वर्णवाले हिरण्यगर्भरूप अथवा कपिलदेवरूप सृष्टिके आदिकाल में (प्रसूत) उत्पन्न ऋषिको वेदार्थज्ञान तथा ज्ञानवैराग्यादिकों करके (बि- भर्त्ति) धारण पोषण करता है और अवान्तर सर्गकी रच- ना पालना के वास्ते जायमानकोही (पश्येत्) देखता

भया॥ और जो परमेश्वर (पूर्व) सृष्टिके प्रथमकालमें ब्रह्माको (विदधाति) उत्पन्नकरता भया तथा वेदसम्प्रदायकी प्रवृत्ति के वास्ते वेदनको उसके हृदय में प्रादुर्भाव करता भया तिसी देवस्वरूप अपनी बुद्धिके प्रकाशरूपके प्रति मैं मुमुक्षु शरणागतिको प्राप्तहोताहूं, इसस्थानमें प्रथम मन्त्र में कपिल शब्द कनकवर्ण ब्रह्माका बोधक है अथवा पुराण वचनानुसार कपिलदेवजी का बोधक है क्योंकि पुराण में विष्णुका अवतार कपिलदेव लिखा है। तथाहि॥ कपिलर्षिर्भगवतः सर्वभूतस्यवैकिल। विष्णोरंशोजगन्मोहनाशायसमुपागतः १ कृतेयुगे रंज्ञानंकापिलादिस्वरूपधृत्। ददातिसर्वभूतात्मासर्वस्यजगतोहितम्॥ २॥ अर्थ॥ सर्वभूतरूप भगवान् विष्णुका निश्चय करके अंशरूप कपिलऋषि जगत् के मोहनाशवास्ते सतयुग में (समुपागतः) प्राप्तहोकर प्रादुर्भाव हुआ तिससे पश्चात् सर्वभूतनका आत्मारूप कपिलादि स्वरूपधारी परमेश्वर सर्व जगत् के हितरूप श्रेष्ठज्ञानको देताभया॥ प्रकरण में यह निश्चय हुआ जो कि जगत् का तथा वेदशास्त्रका विस्तार करनेवाले पंचनका परमेश्वर गुरु है यह अर्थ श्रुति स्मृति प्रमाणसे निर्णीत होगया इतने

प्रबन्ध से मननादिकन के विषयका तथा निदिध्यासन का स्वरूप निरूपण कराहै॥ अब निदिध्यासनके क्रम को निरूपण करनेवास्ते तिसके कारण मननकी कर्त व्यताका उपदेश करते हैं ॥ जेकोकहैकरै बीचार॥ हे शिष्य सेवासे प्रसन्न हुआ आचार्य जेकर (कहै) उप देशकरे तब शिष्य (वीचार) मननको करे तात्पर्य यह है ब्रह्मका अनुभव ज्ञानवान् अनन्त उपदेशकों में कोई ही होता है जे करसो जिज्ञासु के भाग्यसे प्रसन्नहोकर उपदेशकरे तब जिज्ञासुको तत्परहोकर श्रद्धासे मनन कर्तव्य है जिस मनन से निदिध्यासन द्वारा साक्षात्कार होताहै इतने से यह क्रम जनाया जोकि प्रथम गुरुका उपदेश फिर तात्पर्य का अवधारण पश्चात् तर्कानुस न्धान से मनन फिर निदिध्यासन होता है॥ हे भगवन् जिन साधनों से प्रसन्नहोकर गुरु अधिकारी को उपदेश करते हैं सो साधन मेरेको कहो जिनके सेवनसे उपदेश का पात्र होजावों इस प्रकारकी जिज्ञासा से कहते हैं ॥ करतेकैकरणैनाहीसुमार॥ हे पियारे अधिकारी रूप करते के (करणै) साधनों की (सुमार) गिनती नहीं तात्पर्य यह है अनन्त शास्त्र स्मृति पुराणआदिक ग्रन्थों में अनन्तही साधन कथन करे हैं कुछ गणना

नहीं करी जाती ॥ गीताके त्रयोदशवें एक अध्याय में वीससाधन कथन करे हैं और अन्य शास्त्रन के कहे साधनों की क्या गणना करें गीतामें साधनोंका स्वरूप यह है ॥ तथाहि ॥ अमानित्वमदाम्भित्वमाहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ॥ आचार्य्योपासनंशौचंस्थैर्य्यमात्मविनिग्रहः ७ इन्द्रियार्थेषुवैराग्य मनहङ्कारएवच ॥ जन्ममृत्युजराव्याधि दुःखदोषानुदर्शनम् ८ असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ॥ नित्यंचसमचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ९ मयिचानन्ययोगेनभक्तिरव्यभिचारिणी ॥ विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि १० अध्यात्मज्ञाननित्यत्वंतत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्॥ एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानंयदतोऽन्यथा ११ ॥ गी० अ० १३ ॥ अर्थ ॥ जो विद्यमान तथा अविद्यमान गुणों करके अपनी श्लाघा करे सो मानी होताहै तिससे रहित होना अमानित्वरूप ज्ञानका साधनहै १ और जो लाभ पूजा तथा ख्यातिके वास्ते अपने धर्मको प्रकट करे सो दम्भिहै तिससे रहित होना अदम्भित्वरूप ज्ञान का

साधनहै २ शरीर वाक् मनकरके प्राणियोंको पीड़ाकरना हिंसाहै तिससे रहित होना अहिंसारूप ज्ञान का साधन है ३ किसीके अपराधसे चित्तमें विकार न होना क्षान्तिहै यह क्षान्ति रूप ज्ञानका साधन है ४ कुटिलता रहित होना आर्जव रूप साधन है ५ मोक्ष साधन का उपदेशक इस स्थलमें आचार्य्य है तिसका सेवन ज्ञानका साधन है ६ और शरीर मल तथा विषय वासनारूप चित्तमलकी मृत्तिका जलसे तथा विपर्य्य दोषदर्शन से निवृत्ति करनी यह शौचरूप ज्ञानका साधन है ७ और मोक्षमार्ग से विघ्न करने चलायमान होना यह स्थैर्य्य रूप ज्ञानका साधन है ८ और देह इन्द्रियों की मोक्ष साधन से अन्यमें प्रवृत्तिका निरोधरूप आत्मविनिग्रह ज्ञानका साधन है ९ और दृष्टादृष्ट विषयों की इच्छा रहितरूप इन्द्रियार्थन में वैराग्य साधन है १० आत्मश्लाघा से रहित होने परभी जो मनमें मैं सर्वोत्कृष्टहूं इस प्रकार का अहंकार तिससे रहित होना ज्ञानका साधन है ११ और जन्म मरण जरा ज्वर आदिक व्याधि त्रिविध दुःख वातपित्त कफरूप दोष इन सर्वको शरीरमें देखना यहभी वैराग्य का कारण होनेसे ज्ञानका साधन है १२ और पुत्र दारादिक तथा गृह धन आदिकों में

(असक्ति) प्रीति न होनाभी ज्ञानका साधन है १३ और जो पुत्रादिकनके सुखी दुःखी होनेसे अपने आपभी सुखीदुःखी होताहै तिसका पुत्रादिकों में अत्यंत प्रीति रूप अभिष्वङ्ग होताहै तिससे रहित होना अनभिष्वङ्ग भी ज्ञानका साधन है १४ और अपने इष्टकी प्राप्ति में हर्ष और अनिष्टकी प्राप्ति में शोक इन से रहित होना समचित्तत्व रूप ज्ञानका साधन है १५ और जो सर्वान्तर्यामी ईश्वरमें अत्यंत अचल प्रीतिरूप भक्तिहै सोभी ज्ञानका साधन है १६ और एकान्त देशका सेवन करना यहभी ज्ञानका साधन है १७ और कुसंगी बहिर्मुख जनोंकी सभामें प्रीतिसे रहित होनाभी ज्ञानका साधन है १८ और अध्यात्मशास्त्रका नित्य विचार तथा श्रवण करना भी ज्ञानका साधन है १९ और तत्त्वज्ञानका जो सर्व दुःखकी निवृत्तिपूर्वक आनन्दकी प्राप्तिरूप फल है तिसको देखनाभी ज्ञानका साधन है २० इन बीसको ज्ञानके साधन होनेसे ज्ञान कथन करे हैं और इनसे अन्यथा अर्थात् इनसे विपरीत मानित्व दंभित्व आदिक ज्ञानके असाधन होनेसे अज्ञान हैं सो त्यागने योग्यहैं इनसे अन्य अभय सत्त्वसंशुद्धि आदिक दैवी संपत्ति रूप अनंत साधन हैं॥ हे भगवन् ऐसी

कृपाकरो जोकि जितने साधनहैं यह सर्वही जिनके अन्तरगत होजावें ऐसे संक्षिप्त साधनों का उपदेश करो इस शिष्यकी जिज्ञासा पर गुरु उपदेश करते हैं॥ धौल

धरमुदयाकापूत। संतोषथापिरखियाजिन सूत॥ हे शिष्य दया तथा दयाके सहकारी दम दान इनसे जो उत्पन्न हुआहै (धौल) शुद्ध निर्मल धर्म और जिस दमदान दयाके (सूतनाम) पुत्रने संतोष को (थापिरखिया) स्थापन कर रखाहै हे शिष्य तिनकी धारणाकर जिन से सर्व साधन संपत्ति होजावेगी॥ तात्पर्य्य यह है दम दान दया इन तीन साधनों से निर्मल धर्म होताहै और तिससे संतोषकी प्राप्ति होनेसे सर्वही साधन प्राप्त होजाते हैं॥ इस वास्ते हे मित्र इनका सेवन कर तात्पर्य्य यहहै यह दम दान दयारूप तीन साधनही आसुरी संपत्तिमें प्रधान काम क्रोध लोभ इनको निवृत्त करते हैं जब आसुरी संपत्तिके तीन सरदार निवृत्त होगये तब दैवी संपत्तिका निष्कंटक राज होगया पश्चात् तृष्णा क्षयरूप परम सुखका कारण संतोषभी अप्रचलित होगया तब सर्व सामग्री की पुष्कलताके होनेसे परमानंदकी प्राप्ति होतीहै॥ यह दम दान दयारूप साधन वेदमें निर्णीतहैं॥ **तथाहि**॥

त्रयाःप्राजापत्याःप्रजापतौपितरिब्रह्मचर्य्यमू षुर्देवामनुष्याअसुराउषित्वाब्रह्मचर्यं देवाऊचुर्ब्रवीतुनोभवानिति तेभ्योहैतदक्षरमुवाचद इति ॥ बृह० अ० ५ ब्रा० २ ॥ अ० ॥ प्रजापति के संतान तीनही अपने पिता प्रजापतिके समीप ब्रह्मचर्य्य पूर्वक निवास करते भये देवता मनुष्य तथा असुर ब्रह्म- चर्य्यपूर्वक सेवन करके देवता कहते भये हे भगवन् आप हमारे वास्ते उत्तम साधन कथन करो तब प्रजाप- तिने तिनके वास्ते द इस अक्षरका उपदेश करा और कहा इसको विचारकर हमको सुनाना तुमने इस दकार वर्ण से क्या जानाहै इसी प्रकार क्रमसे तीनों ने पूछा और विचारकर देव मनुष्य असुरों ने पृथक् २ कहा देवनने कहा हमारे प्रति आपने दमका उपदेश कराहै मनुष्यों ने दानका और असुरों ने दयाका उपदेश समझकर कहा प्रजापति ने स्वीकार करके कहा इन तीनों से तुम्हारा कल्याण होवेगा यह सर्व के प्रति दम दान दयाका उपदेश करना योग्य है यह सर्व प्रकार बृहदारण्यक उपनिषद् के पञ्चम अध्याय में निर्णीत है और गीतामें सर्व आसुरी संपत्ति में तीन प्रधान योद्धा

हैं यह कहाहै तथाहि॥ त्रिविधंनरकस्येदंद्वारंना शनमात्मनः। कामःक्रोधस्तथालोभस्त स्मादेतत्त्रयंत्यजेत्॥ एतैर्विमुक्तःकौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः। आचरत्यात्मनःश्रेय स्ततोयातिपरांगतिम्॥गी० अ० १६ श्लो० २१।२२ अर्थ॥ तीन प्रकार का आत्माके नाश करनेवाला नरक का द्वारहै काम १ क्रोध २ लोभ ३ इस वास्ते इन तीनों को त्यागकरे इन तीन तमके द्वारों करके हे कौन्तेय अर्जुन जो मनुष्य विमुक्तहै सो अपने कल्याण के साधन करके परम गतिको प्राप्त होताहै। और जो पूर्वदेव तथा मनुष्य और असुर कथन करे हैं वह मनुष्यही विषय सेवापरायण देव कहे जाते हैं और तमोगुणी हिंसापरायण असुरहै और जो लोभकरके केवल द्रव्यसंचयपरायणहैं सो मनुष्य हैं यह तीनही जब प्रजापतिके पासगये तब इनको दकारका उपदेशकरा इसका तात्पर्य्य यहहै जब पुरुष अपने दोषनिवर्तक साधनको अपने आप जाने तब दोषको शीघ्र निवृत्तकरताहै जब तीनप्रकारके मनुष्यों ने अपने अपने दोषनको समझकर दकारसे साधनों का निश्चय

करा तब प्रजापतिने सबके उपकारक जानकर स्वी-
कारकरा देवनने जाना हमारे में कामरूप दोपहै तिसका
निवर्तक दमहै इससे दकारसे दमका उपदेश करा होवे-
गा और मनुष्यों ने जाना हमारे में लोभ बड़ा भारी
दोपहै तिसका निवर्तक जो दानहै तिसका उपदेशक-
राहोवेगा और असुरों ने जाना हमारे में क्रोध बड़ादोष
है तिसकी निवर्तक दयाहै इसवास्ते हमको दकार से
दयाका उपदेश कराहोवेगा इस प्रकारसे एक उपदेशको
भिन्न भिन्न अर्थका बोधक अपने अपने दोषनको देखकर
वर्णनकरा प्रजापतिका आसुरी संपत्तिके प्रधान काम
क्रोध लोभके निवर्तक दम दया दान साधनों के से-
वनकराने में तात्पर्य्य है इसीवास्ते तिस आख्यायिका
से पीछे यह कहाहै जो कि यह तीनों मनुष्यमात्रको
उपदेश करने योग्यहैं और इसीभावसे गुरुजीने दयाक-
रके उपलक्षित दम दान दया से जन्य निर्मल धर्मकी
धारणा बोधनकरी है और संतोष तिसका द्वारपाल है
क्योंकि जब संतोष द्वारपाल सावधानरहे तब आसुरी
संपत्तिको दूरसे तिरस्काकरतारहैगा तिस संतोषका ल-
क्षण पतंजलिऋषिनेलिखाहै और व्यासजी ने तिसका
व्याख्यानकराहै तथाहि ॥ संतोषादनुत्तमः सुखला

भ०॥यो०पा०२सू०४२॥यच्चकामसुखंलोकेय च्चदिव्यंमहत्सुखम्।तृष्णाक्षयसुखस्यैतेनार्हतः षोडशींकलामिति॥ अर्थ॥ प्रारब्धवशासे प्राप्तपदार्थ से अधिककी अनिच्छाका नाम संतोषहै अर्थात् तृष्णाकी निवृत्तिका नाम संतोषहै इसीवास्ते व्यासजी श्लोकरूप व्याख्यानमें तृष्णाक्षयका नाम संतोषकहते हैं इस संतोषसे (अनुत्तम) सर्वोत्तम सुख का लाभ होताहै श्लोकका यह अर्थ है जो इस लोकमें कामका सुखहै और जो (दिव्य) स्वर्गलोक में होने वाला अत्यन्त बड़ाआनन्दहै यह संपूर्ण तृष्णाक्षयजन्य सुखकी सोलहवींकलाको भी नहीं प्राप्त होते इसवास्ते यह संतोष संपूर्ण आसुरीसंपदाको दूरसे तिरस्कारकरताहै॥ इतने प्रबन्धसे अधिकारीका निरूपणहुआ॥ अब फल का निरूपणकरते हैं॥ जेकोबुझैहोवैसचियार। धवलैऊपरकेताभार॥ हे शिष्य जेकर पूर्वउक्त साधनसंपन्न (को) कोई उत्तम मुमुक्षु (बुझै) अपने निज रूपको जाने तब (सचियार) सत्यवादी परमात्माका स्वरूपहोवे, तात्पर्य्य यह है परमात्माके ज्ञानसे विना न तो व्यवहारमें सत्यवादी होसकता है और न परमार्थ

तत्त्वरूप सत्यकावक्ताहोसक्ताहै किन्तु परमतत्त्वकोजाने से परमार्थकावक्ता तथा सत्यसंकल्प सर्वकरके पूजनीय परमात्मा सदृश जीवताही होजाता है इसी अर्थको श्रुतिभी वोधनकरती है। तथाहि॥ यंयंलोकंमनसा संविभातिविशुद्धसत्त्वः कामयतेयांश्चकामान्। तंतंलोकंजयतेतांश्चकामांस्तस्मादात्मज्ञंह्यर्चयेद्भूतिकामः १ सवेदैतत्परमंब्रह्मधामयत्रविश्वंनिहितंभातिशुभ्रम्। उपासते पुरुषंयेह्यकामास्तेशुक्रमेतदतिवर्तन्तिधीराः २ द्वि॰मु॰खं॰१ सयोहवैतत्परमंब्रह्मवेदब्रह्मैवभवति। नास्याब्रह्मवित्कुलेभवति। तरतिशोकंतरतिपाप्मानंगुहाग्रन्थिभ्योविमुक्तोऽमृतोभवति॥मुण्डक॰उप॰द्वि॰मु॰खं॰२॥ अर्थ॥ आत्मज्ञान करके (विशुद्धसत्त्वः) शुद्धान्तःकरणपुरुष जिस जिस लोकको मन करके (संविभाति) संकल्प करताहै जो कि मुझको अथवा मेरे प्रेमीजन को यह लोक प्राप्त होवे इस प्रकारकी कल्पना करताहै और इसी प्रकार वह क्षीण क्लेश पुरुष जिस जिस भोगको अपने वास्ते तथा अन्य के वास्ते प्रार्थना करताहै तिस

तिस लोकको तथा तिस तिस संकल्पित भोगको (जयते) प्राप्त होताहै इस वास्ते नमस्कार पादप्रक्षालन आदिकनसे (भूतिकाम) विभूतिकी कामनावाला आत्मज्ञरूप सचियारका अर्चनकरे, इसमें कारण यहहै सो क्षीण क्लेश पुरुष ब्रह्मरूप परमधाम शुद्धस्वरूप को जानता है और जिस ब्रह्ममें स्थित सर्व विश्व प्रतीत होतीहै तिस को सो पुरुष प्रत्यक्ष आत्मरूप से जानताहै इससे सो पूजनके योग्यहै जो निष्काम मुमुक्षुजन तिसको परदेव रूप जानकर उपासना करते हैं वह धीरजन शुक्रको अतिक्रमण करते हैं भाव जन्म आदिक क्लेशन से विमुक्त होते हैं जो कोई सहस्रनमें एक प्रसिद्ध विवेकी ब्रह्मको जानता है सो ब्रह्मस्वरूप होता है, और इस विद्वान्‌की संप्रदायरूप कुलमें ब्रह्मके न जाननेवाला नहीं होता और जीवताही इष्टवियोगजन्य मानस संतापरूप शोकको तर जाताहै तथा पुण्य पापकर्मरूप पाप को तरजाताहै और (गुहाग्रन्थिभ्यः) अन्तःकरण आश्रित अनन्त वासनासे विमुक्तहुआ अमृत स्वरूप होजाताहै ॥ इस पूर्वउक्त अर्थको श्रीगुरुजी आगेकी पंक्तिसे स्फुट करते हैं ॥ धवलै ऊपर केताभार, इस स्थान में दमदान दयाके सेवनसे जो शुद्धधर्म पूर्व कहाथा

तिससे जन्य ज्ञानका नाम धवलहै तिसपर शोक पाप वासना दूरकरना कितना (भार) बोझहै अर्थात् इनके दूर करने में तिसको कुछ भी यत्न नहीं तात्पर्य्य यह है जो जन्मान्तर में अभ्यस्त अनन्त योग तप यज्ञआदिक साधनों से न नाशहोनेवाला मूलाज्ञान है जब उस शुद्धधर्म्मजन्य ज्ञानने उसीको ऐसा दूरकरा जिसका खुरखोजभी न रहा तब तिसको शोक मोह पापवासना के नाशकरने में क्या यत्न है इस तत्त्वज्ञान की अवस्था को चतुर्थी भूमिका कहते हैं और इस से पूर्व्वकी तीनभूमिका ज्ञानकी साधनरूप है और पंचमी षष्ठी सप्तमी यह तीनही जीवन्मुक्त की अवस्था विशेष हैं ॥ इसवास्ते सर्वत्र व्याख्यान में उपयोगी जानकर सप्तभूमिका का निरूपण करते हैं ॥ तथाहि ॥ **ज्ञानभूमिःशुभेच्छाख्याप्रथमापरिकीर्तिता। विचारणाद्वितीयास्यात् तृतीयातनुमानसा १॥** अर्थ ॥ मोक्ष इच्छारूप शुभेच्छाख्या प्रथम भूमिका है भाव साधन चतुष्टय सम्पत्तिरूप पहली भूमिका है फिर गुरुकी शरणहोकर वेदान्तवाक्यन का विचारकरना तात्पर्य्य यह है श्रवण तथा मननकी सम्पत्ति रूप विचारणानामक द्वितीय भूमिकाहै और श्रवण मननका फल

जो निदिध्यासन इत्थम्भाव निश्चयरूप है सो तनुमानसारूप तृतीय भूमिका है १॥ **सत्त्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततोऽसंसक्तिनामिका। पदार्थाभावनीषष्ठीसप्तमीतुर्य्यगास्मृता २॥** अ०॥ तत्त्वसाक्षात्कार रूप सत्त्वापत्ति चतुर्थी भूमिका है इसमें इतना विचार है तीनभूमी तो जाग्रत् रूप हैं क्योंकि जाग्रत् में यथावत् भेदबुद्धि से पदार्थन की प्रतीति होती है और चतुर्थीभूमी में जगत्की स्वप्नवत् मिथ्यारूप से प्रतीति होती है ऐसे विद्वान् को ब्रह्मवित् कहते हैं और सविकल्पक समाधि के अभ्यास से निर्विकल्प समाधि दशा असंसक्ति नामक पंचमी भूमिका है इसको सुषुप्ति कहते हैं और चतुर्थी को स्वप्न बोलते हैं जैसे चतुर्थी भूमिकावाले को ब्रह्मवित् कहते हैं तैसे सुषुप्तिरूप पंचमी भूमिका में ब्रह्मविद्वर ऐसे बोलते हैं तिस निर्विकल्प समाधिरूप पंचमी भूमिका से अपने आपही उत्थान होता है और पदार्थभावनीनामक गाढ़ सुषुप्ति रूप चिरकाल निर्विकल्प समाधि के अभ्यास से होनेवाली षष्ठीभूमिका है इस भूमिकावाला दूसरे के प्रयत्नसे उत्थान होता है इस अवस्थावाले को ब्रह्मविद्वरीयान् कहते हैं। इससे पर सप्तमी भूमिका है जिसमें दूसरे के प्रयत्नसे भी

नहीं उत्थान होता इसका व्यवहार परमेश्वर प्रेरित प्राण-वायुसे तथा अन्यों से होता है इस दशावाले को ब्रह्म-विद्वरिष्ठ कहते हैं ॥ यह भूमिका के बोधकश्लोक यो-गवाशिष्ठ ग्रन्थ में लिखेहैं ॥ प्रकरणमें यह वार्त्ता सिद्धहुई जो पूर्व्वउक्त दम दान दयाके सेवन से निर्मल धर्मवाला सन्तोषी अधिकारीहै तिसको सत्त्वापत्तिरूप ज्ञानभूमिका की प्राप्तिरूप फलका निरूपणकरा अब जो केवल राजसी तामसी रूप अनधिकारी हैं तिनको ज्ञान भूमिका की अप्राप्ति कहते हैं ॥ धरतीहोरपरेहोरहोर । तिस तेभारतलेकवणजोर ॥ जीयजातरङ्गाकेनाव । सभानालिखियावुड़ीकलाम ॥ यद्यपि धरती शब्द भूमिकामात्रका बोधकहै तथापि प्रकरण अनुसार इस स्थानमें सत्त्वापत्ति रूप चतुर्थी ज्ञान भूमिका बोधक है इससे मूलपंक्ति का यह अर्थहुआ जो कि (होर) तामसीहिंसा प्रधानजीव हैं तिनको सो धरतीरूपज्ञान भूमिका (परे) अत्यन्त दूरहै इसीप्रकार जो (होरहोर) उन तामसीजनोंसे होर राजसी हैं तिनको भी सो ज्ञान भूमीपरे है परे इस पदका देहली दीपवत् दोनोंतरफ स-म्बन्ध है और तले पद नीचेका बोधक होता है परन्तु इस स्थान में रहित इतने अर्थको जनाता है यांते जो

तिस साधनरूप तीन भूमिका के (भारते) बोझसे (तले) रहित हैं तिनको ज्ञान भूमीकी प्राप्ति में क्या (जोर) बलहै, तात्पर्य्य यह है साधनों के सेवन से विना किसी को फलकी प्राप्तिनहीं होती इससे ज्ञानकी इच्छावाले को रजोगुण तमोगुण के त्यागपूर्व्वक साधनभूमिका का संपादन करनाचाहिये ॥ हे भगवन् महानन्द की प्राप्तिका कारण जो ज्ञान है तिसको सर्व मनुष्य क्यों नहीं साधन से संपादन करते इसपर कहते हैं हे शिष्य (जीयजात) सम्पूरण मनुष्यमात्र रङ्गनाम नील शुक्लादिक गुणोंका है प्रकरण में तीनगुणन का बोधक है इस से सम्पूर्ण मनुष्यमात्र (रङ्गाके नाव) गुणोंके नामवाले हैं अर्थात् तमोगुण से तामसी और रजोगुण से राजसी तथा सत्त्वगुण से सात्त्विकी कहेजाते हैं इसवास्ते कोई सहस्रों में एकही नित्यसुखकी कामनावाला ज्ञानके साधनों में प्रवृत्तहोता है। यह गुणकृत नामसर्व आचार्यों ने लिखेहैं तथा (बुड़ी) वृद्ध (कलाम) वाणीमें भी लिखा है। अर्थात् वेदमें भी देव मनुष्य असुरनाम गुणोंसे लिखे हैं॥ सो वेदवाक्य लिखकर तिसका व्याख्यान हमने पूर्वही लिखदिया है॥ और सत्त्व आदिक गुणों से सात्त्विक आदिकनाम तथा सत्त्वआदिक

गुणवालियों की गतिभी गीतामें लिखी है ॥ तथाहि ॥

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्तिराजसाः ॥ जघन्यगुणवृत्तिस्थाअधोगच्छन्ति तामसाः । गी० अ० १४ श्लो० १८ ॥

अर्थ ॥ जो सत्त्वगुण से जन्यवृत्तिरूप शास्त्रीय ज्ञान तथा शास्त्र बोध्यकर्म्म में स्थित हैं वह ऊपरके लोकनमें गमनकरते हैं और जो रजोगुण के कार्य में आशक्त हैं सो मध्यलोक रूप मनुष्यों में स्थित होते हैं और जो (जघन्यगुण) निकृष्ट तमोगुण की (वृत्ति) कार्य में स्थितहैं वह अधोगति को प्राप्तहोते हैं तात्पर्य यह है किसी भी कर्म से उत्तम जन्मको प्राप्तहोकर तामसीजीव फिर चण्डाल पशु पक्षि वृक्ष लता आदिक भावरूप नीचे नीचे योनिको प्राप्तहोता है। इस स्थान में सत्त्वगुण से सात्त्विक और रजोगुण से राजस तथा तमोगुण से तामस कहते हैं ॥ और साधु कर्म जे पुरुष कमावेनाम देवता जगतकहावे। कुत्सित करम जे जगमें करहिनाम असुर ताको सब धरही ॥ यह दशम गुरुजी का वचन है ॥

एहुलेखालिखजाणैकोय। लेखालिखियाकेताहोय॥ हे शिष्य जो पूर्व अनेक प्रकार के देवमनुष्य

असुरसात्त्विक राजस तामस नामवाले पुरुष कहे हैं तिनके मध्य में कोई एकही इन ज्ञानके साधन तथा विषय औ फलके विचाररूप लेखे को अपने अन्तःकरण में लिखने जानता है और जब भलीप्रकार इस लेखेको लिखता है तब सो आपही (केता) मुक्तिका गृह होता है कोशमें केतन शब्द गृहका वाचक लिखाहै तिसकी बदलकेता शब्द इस स्थान में लिखा है इससे यह अर्थ हुआ जो पुरुष साधन सम्पत्ति से ज्ञानको अपने अन्तःकरण में स्थिर करता है सो ब्रह्मभाव को प्राप्तहुआ मुक्तिका धामहोजाता है क्योंकि जब सो ब्रह्मस्वरूप होगया तब सर्व मुमुक्षुओं करके प्राप्यस्थान होने से केतानाम से कहाजाता है। जो ब्रह्मको जानता है सो आप ब्रह्मस्वरूप होता है इस अर्थ में प्रमाण श्रुति वचन (जे को बुझै होवै सचियार) इस पंक्तिके व्याख्यान में निर्णीत है ॥ अब जो मुक्तपुरुष करके प्राप्य ब्रह्म है तिसका प्रभाव निरूपण करते हैं शिष्यप्रश्न के व्याज से प्रश्न। मुक्तका स्वरूप जो आपने निरूपण करा है तिसके स्वरूप को स्मरणकराओ तथा तिसकी दातका वर्णन करो इस प्रश्नके उत्तरको अवाच्य कहते हैं॥

केताताणसुयालिहुरूप। केतीदातजाणैकउ

णकूत ॥ हे शिष्य जो तूं कहता है (सुयालिड)
स्मरण कराओ तिस मुक्तके रूप स्वरूपभूत ब्रह्म को
सो हमारे में कितना (ताण) बलहै जो उसको कथन
करके स्मरण करावें। भाव न तो तिसको इदंता से जा-
नसकें और न अंगुली निर्देश से कथन करसकें और
उसकी सर्वजीवन के प्रति करी दातकों केती है और
कितनी उसकी (कूत) परीक्षाहै ऐसे कौनजाणै अर्थात्
कोई नहीं जाणता इस स्थान में कूतनाम परीक्षाका है
बंगदेशीलोक परखका नाम कूत बोलते हैं॥ कीताप

साउएकोकवाउ। तिसतेहोएलखदरीयाउ॥

तिसका अभाव यह है जोकि एक (कवाउ) संकल्प
बोधक शब्दहै तिससे समग्र (पसाउ) पसारा (कीता)
कराहै क्योंकि तिसी संकल्पबोधक शब्दसे लक्ष अर्थात्
अनन्त (दरीयाउ) समुद्रकी लहरीवत् सृष्टियां हुईं
हैं तात्पर्य यह है जैसे समुद्र में लहर उठकर अस्तहोती
है इसीप्रकार समुद्ररूप परमात्मा से अनन्त सृष्टियां उ-
त्थानहोकर लीन होती हैं॥ अब इस अर्थ के विस्तार
करनेवास्ते श्रुतिरूप प्रमाण लिखते हैं॥ तथाहि॥

**सोकामयत। बहुस्यांप्रजायेयेति। सतपोऽत
प्यत। सतपस्तप्त्वा। इदंᳪसर्वमसृजत॥**

तै० ब्रह्मवल्ली। खण्ड ६॥ अर्थ॥ जो ज्ञानवान् का स्वरूपभूत आत्मा है सो (अकामयत) संकल्प करताभया तिस संकल्प का स्वरूप यह है (बहुस्यां प्रजायेयेति) इस में इतिशब्द संकल्प के स्वरूपका बोधक है मैं अपने आप बहुत होकर प्रजायेय उत्पन्नहोवां तात्पर्य यह है प्रथमकाल में जो अभिव्यक्ति रहितनाम रूपथे तिनकी अभिव्यक्तिकरों इस प्रकारका संकल्पकरके सो परमात्मा (तपोऽतप्यत) आलोचन को करताहुआ अर्थात् सृष्टिकी रचना प्रकारको देखा इस स्थान में तप नाम आलोचनका है इस प्रकार देखकर (इदꣳसर्वम्) सर्व प्राणिसमूहकर सर्व देश सर्वकाल में रूपसे तथा नामकरके अनुभूत वस्तु मात्रको (असृजत) रचता भया। इसप्रकार एक संकल्प बोधक शब्दसे सर्व प्रपंचके विस्तार को तिसने कराहै इसवास्ते क्या तिसका प्रभाव निरूपण करें॥ हे भगवन् जितना प्रभाव आप जानते हो उतना तो कहो इसपर कहते हैं॥ **कुदरतिकवण कहाविचार॥ वारियानजावाएकवार॥** हे शिष्य तिसकी कौनसी (कुदरति) शक्तिको विचारकर कहों तात्पर्य्य यह है तिसकी अनन्त शक्तिहैं हम कहां तक विचारकरेंगे इसीप्रकार कहना बनता है जोकि सो

परमेश्वर अनन्त शक्ति है तिसकी शक्तिकी गणना नहीं करसकते और हे शिष्य हमने तो आत्मनिवेदन रूप तिसकी भक्तिसेही कल्याण देखा है सोई कहते हैं मैं तिस परमेश्वरपर एकवार नहीं (वारिया) समर्पण करना जानता किन्तु अनन्तवार समर्पण करना जानता हूं तात्पर्य यह है सर्व प्रकार से परमात्मा के आराधन में तत्पर रहनाही कल्याणका रस्ता है॥ अव इस अर्थ के विस्तार करने वास्ते प्रमाण लिखते हैं तथाहि॥

इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपईयतेयुक्ताह्यस्यहरयः शतादशेतिअयंवैहरयोऽयंवैदशचसहस्राणि वहूनिचानन्तानिच॥ वृह० अ० २ ब्रा० ५

अर्थ॥ (इन्द्र) परमैश्वर्यसम्पन्न परमेश्वर (मायाभिः) अपनी अनन्त शक्तियों करके (पुरुरूप) वहुरूप (ईयते) प्रतीत होता है और (अस्य) इस परमेश्वर के रचित (हरयः) इन्द्रिय समूह समष्टि व्यष्टि देह में (शता) अनन्त (दशा) दशसंख्यावाले नियुक्त हैं तात्पर्य यह है जैसे रथमें वहुत तथा थोडे अश्व नियुक्त होते हैं तैसे समष्टिव्यष्टि शरीरों में रूपरस आदिक ज्ञानवास्ते और गमनादिक्रिया वास्ते परमेश्वर रचित इन्द्रियरूप अश्व नियुक्त हैं और यह परमात्मा आपही दश तथा सहस्र

और सहस्र से अधिक अनन्त (हस्य) इन्द्रिय तथा विषयरूप हैं ॥ इतने से परमात्माकी (कुदरति) शक्तियां अनंतसिद्ध होगई ॥ महात्मानस्तु मां पार्थ दैवी प्रकृतिमाश्रिताः ॥ भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ १३ ॥ सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ॥ नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते १४ गी० अ० ९ ॥ अर्थ ॥ जो आसुरी संपत्ति में प्रधान काम क्रोध लोभके वशवर्त्ती हैं वह दुर्गति को प्राप्त होते हैं और जो महात्मापुरुष पूर्व उक्त दम दान दयाजन्य निर्मल धर्म तथा सन्तोषकी धारणारूप दैवी प्रकृतिके आश्रित हैं वह अनन्य मनकरके सर्व भूतनका कारण निर्विकार जानकर परमेश्वर को भजते हैं १३ और भगवान् कहते हैं निरन्तर मेरा कीर्तिनकरतेहुए तथा अहिंसाआदिक दृढ़ व्रतों करके यत्न करते और गुरुरूप मेरेको नमस्कारकरतेहुए मेरे में अत्यन्त प्रेमरूप भक्तिकरके नित्ययुक्त आत्मनिवेदन करना रूप उपासना करते हैं १४ इसप्रमाण से सर्वसाधन संपत्ति के करनेवाली भक्तिका निरूपणकरा जानना ॥ हे भगवन् आपने ज्ञानी के स्वरूप परमात्माका तिसके प्रभाव निरूपण व्याज से निर्णयकरा परन्तु मैं पूंछताहूं जोकि

मैं संसार में भटकता फिरताहूं मेरा वास्तवस्वरूप क्या है और मेरेको कर्तव्य क्या है इस शंका के निरासवास्ते गुरु कहते हैं ॥ जो तुधभावै साईभलीकार । तू सदा सलामत निरंकार १६, हे शिष्य (सदा सलामत) सर्वकालमें एकरस रहनेवाला जो निरंकार अर्थात् सर्वमायिक आकार वर्जित ब्रह्महै सो तूं हैं तात्पर्य यह है सो तेरा आरोपितरूपन से पृथक्भूत स्वरूप है आगे जो तेरेको कर्तव्य श्रेष्ठ प्रतीत होवे (साई भलीकार) सो अच्छा है ॥ भाव गुरुजीका यह है जैसे पूर्व उक्त प्रजापति के उपदेशरूप वेद वचन में देव मनुष्य असुरनको दकारका उपदेश करके विचारका उपदेश करा उन तीनों ने अपने अपने विचार से अपने दोष निवर्तक साधनका सेवन करा है इसीप्रकार हमने तो जो उपदेश करना था सो करा है तुम अपने गुण दोषका विचार करके साधनको धारणाकरले, इसप्रकार का उपदेश सर्वोत्तम होताहै क्योंकि जो अपने दोषको आप विचारकर तिसदोष के निवर्तक साधनको सेवन करता है सो अत्यन्त यत्न से दोष दूरकर गुणवान् होजाता है, इसीवास्ते ईश्वर तथा गुरुकृपावत् आत्मकृपा भी परमार्थकी प्राप्तिमें कारण कहते हैं ॥ इसप्रकार इस सोलवीं सोपान

में मनन निदिध्यासनका विषय तथा अधिकारी और फलका प्रधानता से निरूपण हुआ जानना॥१६॥ जेकर शिष्य अपने मनमें यह कहे जोकि वैसेही गुरुजी मेरेको टालते हैं किसी धारण योग्य साधनका उपदेश नहीं करते यह शिष्यका भाव मन में समझकर सर्वक-ल्याण के साधनों को निरूपण करतेहुए परमात्माकी पूर्ववत् अंत महिमा कहकर पूर्वउक्त उपदेश को फिर करते हैं क्योंकि वारंवार कथनसे शिष्य को दृढ़ता होती है॥ **असंखजपअसंखभाउ। असंखपूजा असंखतपताउ॥** इस परमेश्वरकी पूर्वकथित सृष्टि में (असंख) अनन्त जप करनेवाले हैं और अनन्तही प्रकारका प्राणियों के भेदसे जपहै इसीप्रकार (भाउ) प्रेम अनन्तहै औरप्रेमीभक्तभी अनन्तहै अनन्तही पूजन करनेवाले हैं और उनकी पूजाभी अनन्त प्रकारकी है और तपका जो ताउनाम तेज तिस तेजवाले भी अ-नन्तहैं॥ इस स्थान में क्षुधापिपासा शीत उष्णका सहना उठकर खड़े रहना अथवा स्थिर बैठे रहना काष्ठमौन अर्थात् काष्ठवत् चेष्टा से भी अपने भावका न प्रकाश करना और आकारमौन अर्थात् वाणीका निरोधमात्र यह सर्वही तपहै और इस तपका जो फलहै सो ताउ

शब्द से बोधन कराहै तपका फल पतंजलिऋषिने एक सूत्रमें लिखाहै ॥ तथाहि ॥ कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥ योग० पा० २ सू० ४३ ॥ अर्थ ॥ तपका सेवन करने से चित्तकी अशुद्धि का क्षय होताहै अर्थात् पापरूप मलकी निवृत्ति होती है और तिसकी निवृत्तिहोने से कार्यसिद्धि तथा इन्द्रियसिद्धि होती है, अणिमा १ लघिमा २ महिमा ३ प्राप्ति ४ प्राकाम्य ५ वशित्व ६ ईशितृत्व ७ यत्रकामावसित्व ८ यह अष्ट सिद्धिरूप कार्यसिद्धि है और दूरसे श्रवण मनन दर्शनादिककी सामर्थ्य इन्द्रिय सिद्धि है अणिमा सिद्धिसे अत्यन्त सूक्ष्महोनेकी सामर्थ्य होजाती है और लघिमा सिद्धि से लघु होने की सामर्थ्य होती है और महिमा से महान् होजाताहै और प्राप्ति सिद्धिवाला अंगुली के अग्रसे चन्द्रको स्पर्श करसकताहै और प्राकाम्य सिद्धिसे इच्छाका अप्रतिघात होताहै अर्थात् जैसे इच्छा करे तैसेही होजाती है जैसे जलमें गुप्त होताहै जेकर इच्छाकरे तब जलवत् पृथिवी में गुप्तहोकर निकल आवताहै और वशित्व सिद्धिवाले के भूत तथा भूतिन के कार्यवश होते हैं और आप किसी के अधीन नहीं होता और ईशितृत्वसिद्धि से भूत भौतिक के मूलभूत प्रकृति

को वशीकर भूत तथा भौतिक प्रपंचका उत्पत्ति नाश तथा तिनको अपनी इच्छा से स्थित करसकताहै और यत्र कामावसायित्व सिद्धिसे सत्यसंकल्प होजाताहै ॥ असंख गरंथमुखवेद पाठ । असंख जोग मनरहहि उदास ॥ अनन्त पुरुष सर्वग्रन्थों में मुखनाम प्रधान जो उपनिषद विद्यारूप वेद तिसका पाठही करते हैं और अनन्त मनुष्य चित्तवृत्ति का निरोधरूप जो योगहै तिस में मनवाले संसारसे उदास रहते हैं तात्पर्य यहहै योगके साधनों का अनुष्ठान करते हैं ॥ इस स्थानमें सर्व ग्रन्थों में मुख्य उपनिषद रूप वेदहै इसमें प्रमाणका निर्णय कर्तव्य है तथा योगका स्वरूप तथा साधन का भी प्रमाणकर संक्षेप से निर्णय कर्तव्यहै इसवास्ते इन दोनों का निरूपण करते हैं ॥ प्रथम सर्व विद्या से पराविद्यानाम से उपनिषद कथन करी है तिसका निरूपण करते हैं । तथाहि ।

ॐ ब्रह्मादेवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्यकर्त्ता भुवनस्यगोप्ता । सब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठा मथर्वायज्येष्ठपुत्रायप्राह १ अथर्वणेयांप्रवदेत ब्रह्माथर्वातांपुरोवाचाङ्गिरेब्रह्मविद्याम् । स भारद्वाजायसत्यवहायप्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे

परावराम् २ शौनकोहवैमहाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्नःपप्रच्छ । कस्मिन्नुभगवोविज्ञातेसर्वमिदंविज्ञातंभवतीति ३ तस्मैसहोवाच । द्वेविद्येवेदितव्येइतिहस्मयद्ब्रह्मविदोवदन्तिपराचैवापराच ४ तत्रापरा ऋग्वेदोयजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदःशिक्षाकल्पोव्याकरणंनिरुक्तंछन्दोज्योतिषमिति । अथपराययातदक्षरमधिगम्यते ५ ॥ अर्थ ॥ ब्रह्मा सर्व देवन में (प्रथम) मुख्य होताभया और सर्वविश्वका करता तथा भुवनकी रक्षा करनेवाला है। सो सर्वविद्यनकी प्रतिष्ठा जो ब्रह्मविद्या है तिसको अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा के प्रति कथन करताभया। किसी ब्रह्माकी सृष्टिमें प्रथम अथर्वाहुआथा इससे सो ज्येष्ठ पुत्रहै १ और जिस ब्रह्मविद्याको ब्रह्माजी अथर्वा के प्रति कथन करतेहुये तिसको अथर्वा अङ्गिर के प्रति पूर्वकाल में कथन करताभया सो अङ्गिर भारद्वाज गोत्रवाले सत्यवह नामक ऋषिके प्रति कथन करता भया औरतिसतेपश्चात् सो भरद्वाज गोत्रवाला सत्यवह अपने शिष्य अथवा पुत्र अङ्गिरसके प्रति तिस परावर ब्रह्मविद्याको कहताभया (परस्मात्पर-

स्मात् अवरेणप्राप्ता परावरा) परपरगुरुसे अवर अवर शिष्य करके प्राप्तहुई है इस से परावर नामक विद्याहै। २। शौनक नामक ऋषि (महाशाल) अत्यन्त धर्मके सेवन करनेवाला अङ्गिरसनामक गुरुकी शरणको प्राप्त होकर विधिवत् प्रश्न करताहुआ हे भगवन् किस वस्तु के जानने से यह सर्ववस्तु विज्ञात होजाती हैं जब इस प्रकारका प्रश्नकरा तब शौनक के प्रतिकहा हे शौनक दो विद्या जानने को योग्य हैं यह ब्रह्म के ज्ञाता कहते हैं परा तथा अपरा तिन दोनों में अपरा तो यह है जोकि ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद यह चारवेद और शिक्षा १ कल्प २ व्याकरण ३ निरुक्त ४ छन्द ५ ज्योतिष ६ यह षट् वेदके अङ्ग हैं और पराविद्या उपनिषद है जिसकरके तिसनाश रहितरूप अक्षरका ज्ञान होताहै यह विद्याही मोक्षकामार्ग सर्वसे मुख्य है इसीका गुरुजी पाठ बोधन करते हैं॥ इस पराविद्या करके प्रतिपाद्य अक्षरपरमात्मा के ज्ञानसे सर्वका विज्ञान होता है॥ और गुरुवाणी में जेकर किसी स्थान में वेदमें आक्षेप है तब भी पराविद्या से पृथक्भूत जो अपरा विद्याहै तिसको चित्तका विक्षेपक जानकर आक्षेप करा है और अक्षर परमात्मा की बोधक विद्याकी स्तुतिहै (वेदपाठ मति

प्रपातवाय) इत्यादिक वचनों से इसवास्ते यह विद्याही मुमुक्षुको ग्रहण करने को योग्य है ॥ अब योगशास्त्रकी रीति से योगका लक्षण लिखते हैं ॥ **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः । यो० पा० १ । सू० २ ॥** अर्थ ॥ चित्तकी वृत्तिसमूह दो प्रकारका होताहै एक तो क्लेशका कारण होता है जो राजसी तथा तामसी वृत्तिसमूह है सो जन्म मरण आदिक क्लेश को देता है और दूसरा जो आत्माका पंचकोश तथा तीन अवस्था से विवेचन करनेवाली सात्त्विकी समूह है सो सुखका कारण है उस को अक्लिष्ट कहते हैं क्योंकि तिसवृत्ति समूह से क्लेशकी निवृत्ति होती है सो चित्तवृत्ति निरोधरूप योग दो प्रकारकाहै एक संप्रज्ञात तथा एक असंप्रज्ञात जिसमें राजस तामस वृत्तिसमूह का निरोधहोवे सो संप्रज्ञात योग है और जिसमें सर्वप्रकार की वृत्ति समूह का अभाव होवे सो असंप्रज्ञात योग होता है इस सूत्र में दोनों प्रकारके योगका लक्षण है क्योंकि जब राजसी तामसी वृत्तियों का निरोध सात्त्विक वृत्तिसे हुआ तबभी चित्तवृत्ति के निरोधरूप लक्षणका सद्भाव है और जब सर्वही प्रकार की वृत्तिका निरोध हुआ तबभी चित्तवृत्तिका निरोधरूप लक्षण है इससे यह एकही सूत्र दोनों प्रकारके योगका

लक्षण है॥ अब इन वृत्तियोंके निरोधके साधन कहते हैं॥
अभ्यासवैराग्याभ्यान्तन्निरोधः॥ यो०पा०१ सू० १२॥ अर्थ॥ अभ्यास तथा वैराग्यकरके सर्व प्रकारकी वृत्तियों का निरोध होता है॥ भाव यह है चित्त रूपी नदी दो तरफको चलती है एक तो संसार की तरफको चलती है और एक मोक्षकी तरफको चलती है जो विवेक मार्गसे रहित संसार के रागद्वेष प्रवन्ध से पाप कर्म में प्रवृत्ति है सो संसार की तरफ चलती है सो यह प्रवृत्ति तो अनादिकाल से स्वतःसिद्ध तथा कुसङ्ग से होरही है और जो मोक्षमार्ग में विवेक विचार आदिक प्रवन्ध में अत्यन्त यत्न सत्संग के प्रभाव से प्रवृत्ति है सो मोक्षकी तरफको चलती है इसमें इतना विचार है जिस तरफको अधिक प्रवाह चित्तरूप नदीका होताहै उधर कोही झुकपड़ती है अब मुमुक्षुको संसार के पापप्रवाह को निवृत्त करना उचितहै इसवास्ते वैराग्य से सांसारिक विषय प्रवाह को अल्पकरा जाताहै और अभ्यास करके विवेक मार्ग के प्रवाह को प्रवलकरा जाता है अभ्यास का स्वरूप यह है जोकि परमार्थ मार्ग का अत्यन्त यत्न से दीर्घकाल और निरन्तर सत्कार से सेवन करना और वैराग्य अपर तथा परभेद से दो प्रकारकाहै अपर वैराग्य

के चारभेदहैं यतमान १ व्यतिरेक २ एकेन्द्रिय ३ वशीकार ४ यह तिनके नाम हैं रागद्वेष आदिक दोषनको निवृत्त करने में यत्न करने की उत्कट इच्छासे उनकी निवृत्तिमें यत्नका नाम यतमान वैराग्यहै १ फिर अपने मनमें विचारकरना जोकि इतने दोष दूरहुए और इतने परिशेष रहते हैं इस विचार का नाम व्यतिरेक नाम वैराग्य है २ पश्चात् यत्न करतेहुए ऊपरसे इन्द्रियन की प्रवृत्ति में असमर्थ होनेपर भी मनमें विषय भोगमात्र का किंचित् उत्साह होनेका नाम एकेन्द्रिय वैराग्यहै ३ पश्चात् यत्न करते करते दैवयोग से विषयकी समीपता में उसकी उपेक्षाका नाम वशीकार वैराग्यहै ४ परन्तु यह वशीकार वैराग्य विषयों में दोषदर्शनके पुनः पुनः अभ्यास से दृढ़ होता है और यावत् गुणन के कार्य अणिमाआदिक सिद्धिहैं इनमें भी इनको इन्द्रजालवत् मिथ्यामानकर तृष्णा रहित होनेका नाम परवैराग्य है परन्तु यह वैराग्य अपने असङ्ग उदासीन आनन्द स्वरूप आत्मा के ज्ञानसे पीछे होता है इससे यह फलरूप वैराग्य ज्ञानकी परअवस्थाहै और पूर्व उक्तचार प्रकारका वैराग्य योगका साधनहै। प्रकरण में यह निश्चय हुआ जोकि असंख्यात पुरुष योग में मनकर के तिसके साधन वै-

राग्य में लगे हुए उदासीन रहते हैं॥ असंखभगत गुणगियानवीचार। असंखसतीअसंखदातार॥ असंखसूरमुहभखसार। असंखमोनिलिवलायतार। कुदरतिकवणकहावीचार। वारियानजावाएकवार॥ जोतुधभावैसाईभलीकार। तूसदासलामतिनिरंकार १७॥ असंख्यातही परमेश्वरमें प्रीति करने वाले भक्तजन हैं॥ चतुर्विधाभजन्तेमांजनाः सुकृतिनोऽर्जुन॥ आर्त्तोजिज्ञासुरर्थार्थीज्ञानीचभरतर्षभ॥ गी० अ० ७ श्लो० १६॥ अर्थ॥ हे अर्जुन पूर्वजन्ममें जिनों ने पुण्यकर्म का संचय कराहै वह सुकृतिजन सफल जन्मवाले मेरेको (भजन्ते) सेवन करते हैं उनमें तीन तो सकामहैं और एक निष्काम है इस प्रकारसे (चतुर्विधा) चारप्रकारके हैं जो शत्रुव्याधि आदिक आपदा से ग्रस्तहुआ तिसकी निवृत्तिके वास्ते परमेश्वर की शरणागति से तिसका भजन करताहै सो आर्त्तभक्त है जैसे जब श्रीकृष्णभगवान् ने इन्द्रका यज्ञ भंगकरा तब आपदा से ग्रस्त ब्रजवासी जन इन्द्रके कोपसे अतिवृष्टि के क्लेशकी निवृत्तिवास्ते त्राहि त्राहिकर कृष्णभगवान्

का भजन करते भये १ और जरासन्धकी कैदमें पड़े राजासमूह और राजसभामें गृहीतवस्त्र द्रौपदी तथा ग्राह-ग्रस्त गजेन्द्र यह सर्वही आर्त्तभक्त हैं और ज्ञानकी इच्छा-वान् जिज्ञासुभक्तहै जैसे राजामुचुकुन्द जनक उद्धव यह जिज्ञासुभक्तहैं और जो इस लोकमें भोगोंकी इच्छावाला अथवा परलोक में भोगों की इच्छावाला है सो अर्था-र्थी है इस लोकमें भोगनकी इच्छावाला जैसे सुग्रीव और विभीषण है और परलोक में भोगकी वाञ्छावाले जैसे ध्रुवआदिक भक्तहैं वह सर्वही अर्थार्थी भक्त हैं और भगवत्तत्त्व के साक्षात्कारवाला ज्ञानी भक्त है और ज्ञानी च इस चकारसे निष्काम प्रेमीभक्तन का ज्ञानी में अन्तर्भाव जानना निष्कामभक्त ज्ञानी जैसे सनकादिक नारद प्रह्लाद पृथुराज शुकदेव आदिक हैं शुद्धप्रेमिभक्त जैसे गोपिकागण और अक्रूर युधिष्ठिर आदिक हैं इस प्रकार से यद्यपि चारप्रकार के भक्तहैं तथापि अनन्त ब्रह्माण्ड की अनन्त सृष्टिहैं और भूत भविष्य वर्त्तमान काल भेदसेभी भक्तआदिकोंकी गणना नहीं करीजाती इसवास्ते गुरुजी ने असंख्यात भक्त कहे हैं फिर वह भक्त (गुण) शम दम आदिक गुणयुक्त हैं तथा ज्ञानका कारण जो विचारहै तिसकरके युक्तहैं और असंख्यातही

अनर्थ के अकारण सत्यवचन के बोलनेवाले हैं भाव यह है जिस सत्यवचन से किसी प्राणीको दुःखहोवे सो नहीं कहना चाहिये क्योंकि तिस सत्यवचन का अधर्म में पर्य्यवसान होता है इसवास्ते परीक्षाकरके सर्व भूतनको हितरूप सत्यवचन कहनेवाले अनन्त हैं और असंख्या-तही इस सृष्टिमें (दातार) दान करनेवाले हैं अपनी ममता छोड़कर दूसरेकी ममता करवायदेने का नाम दान है और असंख्यातही युद्धभूमिका में उत्तम गतिकी वा-ञ्छाकरके (मुह) मुखपर (सार) शस्त्रनकी वर्षाको (भख) सहारते हैं॥ युद्धमें सन्मुख मरणे से अत्यन्त उत्तमगति की प्राप्ति स्मृति में कही है॥ तथाहि॥ द्वाविमौपुरुषौ लोकेसूर्य्यमण्डलभेदिनौ। परिव्राड्योगयुक्त श्चरणेचाभिमुखोहतः॥ अर्थ॥ इस लोक में दो पुरुष सूर्यमण्डल का भेदनकरके ब्रह्मलोक में गमनकरते हैं एक तो वशीकार वैराग्यकर योगमें जुड़नेवाला और रणमेंसन्मुख होकर मराहुआ॥ और असंख्यातही पूर्व्व उक्त काष्ठमौन तथा आकारमौन को धारण करनेवाले हैं और अनन्तही (लिवलायतार) ब्रह्माकारमनकी (लिव) वृत्तिको (तार) तैलधारावत् (लाय) लगाते हैं, आ-गेको तीनपंक्ति का अर्थ पूर्व्वही निर्णीत है जानलेना॥१७

इस रीतिसे इस सतारवीं सोपान में परमेश्वर की प्राप्ति के योग्य पुरुष कथनकरे अब आगेकी सोपान में संसारचक्र में भ्रमणके योग्य राजसी तामसी पुरुषन का निरूपण करते हैं॥ क्योंकि जबतक त्यागने योग्य और ग्रहण करनेयोग्य अर्थका निरूपण नहीं करेंगे तबतक जिज्ञासु की दोषके त्याग में और गुण के ग्रहण में प्रवृत्ति नहीं होती इसवास्ते पूर्वउक्त सतारवीं सोपान में गुणनका निरूपण करके अब दोषनका निरूपण करतेहैं॥

असंखमूरखअन्धघोर । असंखचोरहराम खोर।असंखअमरकरिजाहिजोर।असंखगल वढ़हत्याकमाहि। असंखपापीपापकरजाहि। असंखकूडियारकूडेफिराहि । असंखमलेछ मलभखखाहि । असंखनिन्दकसिरकरहि भार। नानकनीचकहैवीचार। वारियानजा वाएकवार। जोतुधभावैसाईभलीकार। तूम दासलामतिनिरंकार १८॥ इस परमेश्वरकी सृष्टि में असंख्यातही (अन्धघोर) अत्यन्त तमोगुणी (मूरख) शास्त्र के श्रवणादिशून्य हैं और असंख्यातही (हराम) शास्त्रकर निषिद्ध पदार्थनको (खोर) भोगनेवाले चोर

हैं और असंख्यातही (ज़ोर) अन्यायकारी बलसे (अम्र) प्रजापर शासनाको करके यमके द्वारमें जाते हैं यह वार्ता शास्त्रमें प्रसिद्धहै जोकि विना विचार से राजालोक प्रजाको दुःखितकरते हैं वह राजालोक यमकी ताड़नाको अवश्य प्राप्त होते हैं ॥ तथाहि ॥ एतेतेपृथिवीपालाःसम्प्राप्तामत्समीपतः ॥ स्वकीयैः कर्म्मभिर्घोरैर्दुष्प्रज्ञाबलदर्पिताः १ ॥ अर्थ ॥ यमराज अपने भृत्यनसे कहता है सो यह पृथिवी के पालक राजालोक मेरे समीप प्राप्तहुए हैं सो यह अपने घोर कर्म्मों करके दुष्टबुद्धि और दुष्ट बल से अहंकार करके मदमत्त थे १ ॥ भोभोनृपादुराचाराःप्रजाविध्वंसकारिणः ॥ अल्पकालस्यराज्यस्यकृतेकिंदुष्कृतंकृतम् २ ॥ अर्थ ॥ हे हे नृपाः दुराचार तथा प्रजाके विध्वंस करनेवालो अत्यन्त अल्पकाल राज्य के वास्ते तुमने क्यों दुष्कृतकर्म करेथे २ ॥ राज्यलोभेनमोहेनबलादन्यायतःप्रजाः ॥ विध्वंसिताःफलंतस्यभुञ्जध्वमधुनानृपाः ३ ॥ अर्थ ॥ राज्य के लोभ करके तथा (मोह) अज्ञानता करके और बल से तथा अन्याय से प्रजा विध्वंसकरी इससे अब

तिसके फलको हे नृपाः भोगो ३ ॥ क्वतद्राज्यंकल त्रंचयदर्थमशुभंकृतम् ॥ तत्सर्वंसंपरित्यज्य यूयमेकाकिनःस्थिताः ४ ॥ अर्थ ॥ कहां सो राज्य और स्त्रीआदिक पदार्थ हैं जिनके वास्ते अशुभकर्म करे थे तिन सर्वको परित्याग करके तुम एकले स्थितहो ४ ॥ पश्यामस्तद्बलंवोनोयेनतद्दण्डिताःप्रजाः ॥ यमदूतैस्ताड्यमानाअधुनाकीदृशंभवेत् ५ ॥ अर्थ ॥ जिसकरके तुमने हमारी प्रजाको दण्ड करा है तिस बलको हम देखेंगे सो तुम आज यमदूतों करके ताड़न करेजातेहो देखें कैसा होता है ५ ॥ एवंबहुवि धैर्वाक्यैरुपालब्धायमेनते ॥ शोचन्तःस्वानि कर्म्माणितूष्णींतिष्ठान्तिपार्थिवाः ६ ॥ अर्थ ॥ इसप्रकार बहुत प्रकार से वाक्यों करके यमराज ने ल- ज्जित करे अपने २ कर्म्मों को शोच करतेहुए तूष्णी भावसे स्थित होते हैं ६ ॥ इतिधर्म्मसमादिश्यन्नृ पाणांधर्मराट्पुनः ॥ तत्पापपङ्कशुद्ध्यर्थमिदं वचनमब्रवीत् ७ ॥ अर्थ ॥ इसरीति से धर्म्म का उपदेश करके फिर धर्म्मराज नृपों के पापरूप मलको शोधन वास्ते यह वचन कहता भया ७ ॥ भोभोश्च

एडामहाचण्डागृहीत्वान्नृपतीनिमान् ॥ विशोधयध्वंपापेभ्यः क्रमेणनरकाग्निना ८ ॥ अर्थ ॥ हे चण्डाः हे महाचण्डाः इन नृपतियों को ग्रहण करके पापों से शोधनकरो फिर क्रम करके नरक की अग्नि करके शोधन करना ८ ॥ ततःशीघ्रंसमुत्थाय नृपान्संगृह्यपादयोः ॥ भ्रामयित्वातिवेगेन निक्षिप्योर्द्धप्रगृह्यच ९ ॥ अर्थ ॥ तिस धर्मराज की आज्ञा से पीछे शीघ्र उठकर नृपों को पादों में ग्रहण करके अत्यन्त वेग करके भ्रमण कराकर फेंका फिर ग्रहण करा ९ ॥ सर्वप्राणेनमहताप्रतप्तेऽथशिलातले ॥ आस्फालयन्तितरसावज्रेणेवमहाद्रुमम् १० ततःसराजदेहान्तः प्रविष्टाजर्जरीकृतः ॥ निःसङ्गःसतदादेहीनिश्चेष्टश्चप्रजायते ११ ततःसवायुनास्पृष्टःशनैरुज्जीवतेपुनः ॥ ततःपापविशुद्ध्यर्थंक्षिप्यतेनरकार्णवे १२ विष्णुपुराणं० २ अं० ६ अ० ॥ अर्थ ॥ फिर सर्वबल करके और बड़े यत्न से प्रतप्त शिलातल में वेग करके ताड़न करते हैं जैसे वज्र करके महान् वृक्षको ताड़न करते हैं तिस ताड़ना से राजों के देह में प्रविष्ट

जीवात्मा जीर्ण होकर निःसंज्ञाको प्राप्तहोकर चेष्टारहित होजाता है फिर वायुकरके स्पृष्टहुआ शनैः शनैः जीवन को फिर प्राप्तहोता इसप्रकारकी ताड़ना करके फिर पापों के शोधनेवास्ते नरकसमुद्र में डालेजाते हैं॥ यह श्लोक विष्णुपुराण के द्वितीय अंश के षष्ठाध्याय में लिखेहैं। इस तात्पर्य्य से राजालोगों के प्रबोध वास्ते गुरुजी लिखते हैं (असंख अमरकरजाह जोर) तात्पर्य्य यह है अनन्त ही राजालोग प्रजापर जोरका (अमर) हुक्म करके यमकी ताड़ना को पाते हैं॥ इसी वास्ते गुरुजीका दूसरा वचन है (राजेचुलीन्यायकी) राजाको केवल धर्म न्याय करनाही चुली अर्थात् परमदान है॥ और भी गुरुवचन है॥ दानंपरापूर्वेणभुंचंतेमहीपते। विपरीतिबुद्धयंमारतलोकहनानकाचिरंकालदुःखभोगते॥ अर्थ॥ पूर्वके दानके प्रभाव से राजालोग सुख भोगते हैं और विपरीत बुद्धिकरके प्रजाका विध्वंस करते हैं श्रीगुरुजी कहते हैं विपरीत बुद्धिवाले राजालोग बहुतकाल दुःखको भोगते हैं॥ इस स्थान में गुरुजीका तात्पर्य्य यह है जिनको पूर्व कर्म्म से राज्य प्राप्तहोवे वह धर्म्म से राज्यपालना करें नहीं तो अवश्य पूर्वउक्त यमकी ताड़ना के अधिकारी होवेंगे और

असंख्यातही जीवनके गले काटकर (हत्या कमाहि) हिंसाजन्य पापको सम्पादन करते हैं और असंख्यातही पूर्वजन्म के पापी जीव फिर पाप को करतेही निषिद्ध योनियों में जाते हैं और असंख्यातही (कूडियार) मिथ्याबोलनेवाले तथा कपटी ठगीकरनेवाले (कूडेफिराहि) शूकर कूकर योनियों में भ्रमण करते हैं और अनन्तही (मलेछ) चण्डालादिक मलके भक्षण करनेवाले जीवन को खाते हैं और असंख्यातही निन्दक आप पापका भार उठाकर जिनको सुनाते हैं तिनके सिरपर भार करते हैं यह निन्दक सर्वसे निषिद्ध हैं क्योंकि जिनकी निन्दा करते हैं तिनके पापको भी अपने सिरपर उठालेते हैं दोष कथनका नाम निन्दाहै॥ **सदसद्वापरिवादोब्राह्मणस्यनशस्यते। नरकप्रतिष्ठास्तेस्युर्यएवंकुर्वतेजनाः॥** यह भारतमें श्लोक लिखाहै॥ अर्थ॥ सत्परिवाद अथवा असत्परिवाद अर्थात् विद्यमान दोषन का कथनरूप परिवाद नाम निन्दा और अविद्यमान दोषन का कथन अर्थात् किसी में दोषोंका आरोप करके कथन करना रूप परिवाद नाम निन्दा यह किसी को भी (नशस्यते) प्रशस्त नहीं और ब्राह्मण को तो सर्वथा प्रशस्त नहीं जो जन ऐसे निन्दा करते हैं वह (नरक-

प्रतिष्ठाः) नरक में स्थिति को प्राप्तहोते हैं ॥ श्रीगुरुजी कहते हैं यह विचारके नीच कहे हैं क्योंकि इस प्रकारके दोष जिज्ञासु को त्यागने योग्य हैं इस तात्पर्य से नीचन का निरूपणकराहै ॥ इस सोपान में (कुदरतिकवण कहावीचार) इस पंक्तिका पाठ नहीं है परन्तु तिसके अर्थ की संगतिहै याते पूर्व्वकी व्याख्याके समान इस स्थान में भी व्याख्यान जानना ॥ अथवा जेकर शिष्य कहे कि हे भगवन् आप उनको नीच कर्मन से निवारण करो तिसपर कहते हैं हे शिष्य हमतो एकवार भी तिनको (वारियानजावा) वारण करने के वास्ते उनके समीप नहीं जाते तात्पर्य यह है वह तो परमेश्वर के मार्ग से अपने पूर्व्वकर्म से भ्रष्टहैं कभी सत्संग आदिक में आतेही नहीं तव दूसरे निरपेक्ष विद्वान् को क्या जरूरत है जो उन बहिर्मुखों को जाकर निवारण करे अर्थात् ऐसे पापात्माओं की उपेक्षाही करनी उचित है जेकर शिष्य कहे मेरा स्वरूप तथा मुझ को कर्तव्य निरूपण करो तिसपर कहते हैं (जो तुधभावैसाई भलीकार । तूसदासलामति निरंकार) इन दो पंक्तिका अर्थ पूर्व्वकराही जानलेना १८ जो पूर्व्व (असंखजप) इत्यादि सोपान में शास्त्र प्रतिपाद्य साधनों का सेवनकरते हैं वह सात्त्विकी होने

से देवता कहेजाते हैं और जो (असंख मूरख) इत्यादिक सोपान में शास्त्रविमुख कथन करे हैं वह राजसी तामसी होने से असुर कहे जाते हैं इनमेंही राक्षसों का अन्तर्भाव है॥ अब इन सर्वके नामन को तथा इनके रहनेवाले स्थानों को अनन्त बोधन करते हैं॥ **असंखनावअसंखथाव। अगम्यअगम्यअसंखलोय। असंखकहहिसिरभारहोय। अखरीनामअखरीसालाह॥** पूर्वकहे देवनके तथा असुरन के अनन्तही नामहैं और इनके रहनेके स्थान भी अनन्त हैं और इनके (लोय) लोकभी अनन्त हैं वह लोक इनको परस्पर अगम्य हैं क्योंकि सात्त्विकी पुरुषोंको प्राप्तहोने को योग्य लोक स्वर्गादिक तामसी आदिकन को अगम्य हैं और तामसी आदिकों करके गम्य नरकरूप तामसी स्थान सात्त्विकी पुरुषों को अगम्य हैं॥ आपने जेकर इन जीवनके स्थान तथा लोक अनन्त कथनकरे तब शास्त्रकारन के चतुर्दश लोकन के जो प्रतिपादक वचनहैं तिनका विरोधरूप भार आपके सिरपर रहेगा यह शङ्का (असंख कहहि सिर भारहोय) इस पंक्ति करके इसका उत्तर कहते हैं (अखरीनाम अखरीसालाह) अर्थ यहहै अक्षरनाम परमेश्वर काहै तिसका साक्षात् अथवा परंपरा से बोधक होने से

अक्षरीनाम वेदका है याते वेद और वेदार्थप्रकाशक ग्रन्थन से असंख्यात नाम तथा स्थान और लोकन को कथन करते हैं और उन नाम और स्थान तथा लोकन की वेदादिक से (सालाह) स्तुति करते हैं और इसी प्रकार निन्दाभी करते हैं, तात्पर्य यह है शास्त्रमार्ग में प्रवृत्तिवालों के नाम स्थान लोकन की स्तुति करते हैं और शास्त्रके मार्ग से भ्रष्टनकी वेदादिकसे निन्दा करते हैं स्थानका और लोकका यह भेदहै जोकि किसी एक के निवासकरने योग्य होवे सो स्थान और जहां अनन्त स्थानहोवें उसको लोक कहते हैं जैसे अनेक गृहोंके समुदायका नाम ग्राम है और तिस ग्राम के एक अवयव का नाम गृह है ॥ अब इसमें प्रमाण का निरूपण करते हैं (तथाहि) महातल १ रसातल २ अतल ३ सुतल ४ वितल ५ तलातल ६ पाताल ७ भूर्लोक ८ भुवर्लोक ९ स्वर्लोक १० महर्लोक ११ जनलोक १२ तपोलोक १३ सत्यलोक १४। योगशास्त्र के तृतीयपाद के पच्चीसवें सूत्रके व्याख्यान में व्यासजी ने यद्यपि यह चतुर्दश भुवन कहे हैं तथापि व्यासजी एक ब्रह्माण्ड के निरूपण को करते हैं और श्रुतिपुराण वचनसे अनन्त ब्रह्माण्डन का निश्चय होता है इसवास्ते गुरुजी ने अनेक ब्रह्मा-

ण्डोंको जानकर नाम तथा स्थान और लोकों को असं-
ख्यात कथन करा है॥ तथाहि॥ यथासुदीप्तात्पाव-
कादिस्फुलिङ्गाःसहस्रशःप्रभवन्तेसरूपाः।
तथाक्षराद्विविधाःसौम्यभावाःप्रजायन्तेतत्र
चैवापियन्ति॥ द्वि० मु० खं० १ श्रु० १॥
अर्थ॥ जैसे अत्यन्त प्रज्वलित अग्नि से समानरूपवाले
(सहस्रशः) अनन्त प्रकारके (विस्फुलिङ्ग) चनगारे
होते हैं तैसे अक्षर परमात्मा से-हे सौम्य! (विविधाः)
नानाप्रकार के (भावाः) पदार्थरूप नाम स्थान लोक
उत्पन्न होते हैं और उसी अक्षर में लीन होते हैं॥
अण्डानान्तुसहस्राणांसहस्राण्ययुतानिच।
ईदृशानांतथातत्रकोटिकोटिशतानिच॥ वि-
ष्णुपुराणवाक्य॥ अर्थ॥ परमेश्वरकी शक्ति में ब्र-
ह्माण्डोंके सहस्रहैं उन सहस्रों के फिर सहस्र अयुत हैं फिर
उन अयुतों के करोड़हैं और फिर उन करोड़ों के सौ करोड़
हैं। भाव जो परमेश्वर की शक्ति में ब्रह्माण्ड हैं उनकी गि-
नती नहीं करसकते इस बातको समझकर श्रीगुरुजी ने
असंख्यात नाम आदिक कहे हैं इस स्थानमें अनेक नाम
और अनेक स्थान तथा अनेक लोकन के स्वरूप दिखाने

वास्ते संक्षेपसे एक ब्रह्माण्ड का निरूपण करते हैं॥ तथाहि॥ इस पृथिवीमण्डल के मूल में एक आवीचि नामक नरक है तिसमें लेकर सुमेरु पर्वतकी पीठपर्यन्त भूर्लोकहै परन्तु आवीचिनरकसे ऊपर ऊपर षट् महानरक स्थानहैं महाकाल १ अम्बरीष २ रौरव ३ महारौरव ४ कालसूत्र ५ अन्धतामिस्र ६ यह तिनके नाम हैं महाकालनरक शिलाके टुकड़ियों के मध्यमें स्थित है और अम्बरीषनरक जल के मध्यमें स्थित है और रौरवनरक अग्नि के मध्यमें स्थित है और महारौरव वायुके मध्यमें स्थित है और कालसूत्र नरक आकाश के मध्यमें स्थित है और अन्धतामिस्र नरक अन्धकार के मध्यमें स्थित है यह महानरक हैं और कुम्भीपाक आदिक उपनरक अनन्तहैं वह भी उसी स्थान में स्थित हैं इन नरकों में क्लेश भोगनेवास्ते निषिद्ध कर्म के करनेवाले जीव दीर्घ अवस्थावाले शरीरों को ग्रहण करते हैं और तिस आवीचि नरक से नीचे सर्व पातालों के हेठ महातल १ है तिससे ऊपर रसातल २ है इसी प्रकार ऊपर अतल ३ सुतल ४ वितल ५ तलातल ६ पाताल ७ हैं और भूमि यह अष्टमी है इस भूमि के सप्तद्वीपहैं और इस भूमि के मध्य में सर्व पर्वतनका राजा सुमेरु सुवर्ण

का पर्वत है तिसके दक्षिण के पास में जम्बु का वृक्ष है इसवास्ते लवण के समुद्रकर वेष्टित जम्बु नामका द्वीपहै तिसके नव खण्ड हैं तिनका स्वरूप नवांखण्डा विच जाणिये इस पंक्तिके व्याख्यान में पूर्व निर्णीत है यह सौहज़ार योजन जम्बुद्वीप इस से दूने लवण समुद से लपेटा है तिससे उत्तर उत्तर दूने दूने शाकद्वीप २ कुश-द्वीप ३ क्रौञ्चद्वीप ४ शाल्मलिद्वीप ५ गोमेधद्वीप ६ पुष्करद्वीप ७ यह द्वीपहैं जिसके चारोंतरफ जल होता है तिसका नाम द्वीपहै इन द्वीपन के विभाग करनेवाले सप्तसमुद अनेक प्रकार के पर्वतों से युक्त हैं तात्पर्य्य यह है इन सप्तसमुदों के किनारेपर अनंत शृंगयुक्त पर्वत हैं और इनके जल क्रमसे लवण १ इक्षुरस २ सुरा ३ घृत ४ दधिमण्ड ५ क्षीर ६ स्वादूदक ७ इसप्रकार के हैं इन सप्त समुद्रोंका लोकालोक पर्वत कोट है जिसके एक तरफ़ सूर्यका लोक प्रकाश है और दूसरी तरफ अलोक अप्र-काश है तिसको लोकालोक कहते हैं सो यह पृथिवी मण्डल पंचाशतकरोड़ योजनकाहै सो अण्ड के मध्य में रचना से स्थित है और सो अण्डकटाहप्रधानका अत्यन्त सूक्ष्म अवयव है जैसे आकाश में खद्योत होताहै तैसे प्रधानरूप मायातत्त्व में अण्डकटाह है और पाताल स-

सुद्र पर्वतों में देवनिकाय असुर गन्धर्व किन्नररूप किंपुरुष यक्षराक्षस भूतप्रेत पिशाच अपस्मारक अप्सरा ब्रह्मराक्षस कूष्माण्ड विनायक इन नामोंवाले जीव निवास करते हैं और सर्वद्वीपों में देवता तथा पुण्यात्मा मनुष्य निवास करते हैं और सुमेरु पर्वत त्रिदश नामवाले देवनकी सैल करनेकी भूमि है तिस सुमेरु पर्वतपर मिश्रवन नन्दन चैत्ररथ सुमनिस यह उद्यानहैं और सुधर्मानामक देवनकी सभाहै सुदर्शन पुरहै वैजयन्तनामक प्रासाद है इसप्रकार का भूलोक है इससे लेकर ध्रुव पर्यंत ग्रह नक्षत्रगणन से संकीर्ण भुवर्लोक है २ इससे पर माहेन्द्रलोक है इसीको स्वर्ग कहते हैं केचित् इससे लेकर ऊपरले सर्वलोकन को स्वर्गही कहते हैं इस माहेन्द्रलोकमें षट्देवनिकाय अर्थात् देवजाति हैं त्रिदश अग्निष्वात्त याम्य तुषित अपरिनिर्मित वशवर्ती परिनिर्मित वशवर्ती यह सर्वही सत्यसंकल्प हैं और अणिमा आदिक अष्टसिद्धि से संपन्न हैं कल्पपर्यन्त आयुवाले हैं वृन्दारक इस नाम से कहे जाते हैं और यह स्वर्गलोकनिवासी देवगण काम भोग प्रधान हैं और मातापिता के संयोग से विना देहनको अपने संकल्प से उत्पन्नकर नाश करदेते हैं और वह देव उत्तम अनुकूल अप्सरागणों से परिवारित रहते

है और महर्लोक में पंचप्रकार के देवनिकाय अर्थात् देवजाति हैं निकायशब्द जातिका वाचक है सर्वत्र जानलेना कुमुद १ ऋभु २ प्रतर्दन ३ अञ्जनाभ ४ प्रतिताभ ५ यह सर्वही महाभूतन के वश करनेवाले हैं अथ इनकी इच्छा से महाभूत परिणाम को प्राप्तहोते हैं और ध्यानमात्र से तृप्त रहतेहैं सहस्रकल्प पर्यन्त आयु वाले हैं और जनलोक में चारप्रकारकी देवजाति हैं ब्रह्मपुरोहित १ ब्रह्मकायिक २ ब्रह्ममहाकायिक ३ अजरामर ४ यह सर्वही भूत तथा इन्द्रियनको वशकरेहुए हैं अर्थात् इनकी इच्छासे भूत तथा इन्द्रिय परिणामको प्राप्त होते हैं और इनकी भी सहस्रकल्प की साधारण आयु है परन्तु पूर्व पूर्वकी अपेक्षा से उत्तर उत्तरको दूनी आयु है जैसे ब्रह्मपुरोहित देवनकी सहस्रकल्प की अवस्था है और उनसे दूनी ब्रह्मकायिकनकी अवस्था है इनसे दूनी दूनी उत्तर उत्तरकी जानलेनी ५ और तपोलोक में तीन प्रकार की देवजाति है आभास्वर १ महाभास्वर २ सत्यमहाभास्वर ३ यह सर्वही भूत इन्द्रिय अहंकाररूप प्रकृति इन के वश करनेवाले हैं अर्थात् इनकी इच्छा से भूतादिक परिणाम को प्राप्तहोते हैं यह तीन देवभी पूर्व पूर्व की अपेक्षा से आगे के दूनी दूनी आयुवाले हैं महल्ले

आभास्वर सहस्रकल्पकी आयुवाले हैं दूसरे दोसहस्रक-ल्पकी तीसरे तीन सहस्र कल्पकी आयुवाले हैं ध्यान से तृप्तरहते हैं ब्रह्मचर्य संपन्न हैं और सत्यलोक में चारप्रकार की देवजाति है अच्युत १ शुद्धनिवास २ सत्याभ ३ संज्ञासंज्ञी ४ इन देवन ने अपने रहने वास्ते भुवनकी रचना नहीं करी केवल अपने आपमें स्थित हैं और प्र-धान इन के वश है यह भी समाधिजन्य सुखसे तृप्तरहते हैं ब्रह्माकी आयुके समान इनकी आयुहै यह सर्वप्रसंग व्यासजीने योगभाष्य के तृतीयपाद में लिखाहै ॥ प्रक-रणमें यह वार्त्ता निर्णीतहुई जोकि अक्षरोंनाम वेद तथा शास्त्र और स्मृति पुराण से असंख्यात नामनकी प्रतीति होती है और इनकी (सालाह) स्तुति होती है और स्तुति को उपलक्षण मानकर निन्दा भी जानलेनी ॥ सो जैसे वेदमें श्रेष्ठनकी स्तुति और नीचनकी निन्दा लिखी है सो दिखाते हैं ॥ तथाहि ॥ त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञो ऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्र ह्मचार्य्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमा त्मानमाचार्य्यकुलेऽवसादयन्सर्वे एते पुण्य लोका भवन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति ॥ छा० अ० २ खं० २३ श्रु० १ ॥ अर्थ ॥ धर्म के

(स्कन्ध) विभाग तीनहैं अग्निहोत्र आदिक यज्ञ वेद का अध्ययन दान यह गृहस्थ आश्रमरूप प्रथमस्कन्ध है अर्थात् धर्म का एक स्कन्ध है और द्वन्द्वसहनरूप तप उपलक्षितवान् प्रस्थधर्म धर्मका दूसरा स्कन्ध है और ब्रह्म- चर्य्यरूपधर्म धर्मका तीसरास्कन्ध है सो ब्रह्मचारी दोप्र- कार का होता है एक तो वेदके पठनपर्यन्त आचार्यकुल में वास करनेवाला और दूसरा अत्यन्त आचार्य के कुल में शरीरको शोषण करनेवाला नैष्ठिक ब्रह्मचारी है जो जन्मपर्यन्त गुरुकी सेवाकरे सो नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहाजा- ताहै यह सर्वही धर्मात्मा पुरुष पुण्य स्थान स्वर्गलोक जनलोक महर्लोक तपोलोक सत्यलोकों को प्राप्तहोते हैं और जो इनमें से कोई ब्रह्ममें स्थितहै सो (अमृतत्व) मोक्षको प्राप्त होता है यह श्रुति तो उत्तम पुरुषों को उत्तम फल बोधनकरती हुई पुण्यवान् पुरुषों की स्तुति करती है और एक मन्त्र निषिद्ध कर्म करनेवालों की निन्दाकरताहुआ उन दुराचारियों को निषिद्ध लोकन की प्राप्ति कहताहै, तथाहि ॥ अनन्दानामतेलोका अन्धेनतमसाऽऽवृताः। ताꣳस्तेप्रेत्याभिग च्छन्त्यविद्वाꣳसोऽबुधाजनाः ॥ वृ० अ० ४ ब्रा० ४ श्रु० ११ ॥ अर्थ ॥ (ते) जो लोक समृद्धि

वर्जित अन्ध तम करके (आवृत) आच्छादितहैं वह पुरुष मरके तिन लोकों को प्राप्त होते हैं जो जन सामान्य से अज्ञातहैं और विशेष करके आत्मज्ञानवर्जित हैं ॥ इस मन्त्र में अज्ञजनों की निन्दा और तिनको प्राप्त होनेवाले लोकन की निन्दा है ॥ इसप्रकार अक्षरी नामक वेदही सतकर्म सतज्ञानवानों की स्तुति और तिनको प्राप्ति योग्य स्थानों की स्तुतिकरता है और अज्ञन की तथा तिनको प्राप्य स्थानों की निन्दा करता है ॥

अखरीज्ञानगीतगुणगाह ॥ और अक्षरीपद बोध्य वेदनेही अद्वैत ज्ञान को (गीत) गायन कराहै और (गुणगाह) गुणन को गाहन करनेवाला मुमुक्षुजन तथा मुक्तजन भी गायन कराहै तात्पर्य्य यह है अद्वैत ज्ञानका बोधक तथा मुक्तमुमुक्षुका बोधक भी वेद है ॥

यस्मिन्सर्वाणिभूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः । तत्रकोमोहःकः शोकएकत्वमनुपश्यतः ॥

ईश० मं० ७ ॥ अर्थ ॥ जिस ज्ञानकी प्राप्तिकाल में ब्रह्मके साक्षात्कारवाले मुक्तके सर्वभूत आत्मस्वरूप होगये क्योंकि परमार्थस्वरूप ब्रह्म के ज्ञान से अज्ञानकी निवृत्ति होने पर अज्ञान कल्पित प्रपञ्च का त्रिकालाभाव निश्चय होने से केवल आत्माही परिशेष रहता

है तिस ज्ञान दशा में एकत्वदर्शी विद्वान्को क्या मोह तथा क्या शोक है देह में आत्मत्व भ्रमकानाम मोहहै जिसके प्रभाव से यह कहता है मैं मरगया मेरे पुत्र वित्त आदिक नहीं और इष्टके वियोगजन्य दुःखरूप वृत्ति विशेष का नाम शोक है इन दोनों का अज्ञान काल में सद्भाव होता है जब अज्ञान दूरहुआ तब इनकी सहेत मूलके निवृत्ति होने से फिर होने की अत्यन्त असम्भवता है॥ इसीवास्ते (को मोहः कः शोकः) इस किम् शब्द से आक्षेप कराहै किम्शब्दकी आक्षेप अर्थ में भी शक्ति है, इस वेद वचन में अद्वैत ज्ञानका तथा जीवन्मुक्त का कथन है इस से दोनों में प्रमाणहै और मुमुक्षुका निरूपण (पंचपरवाण) इस सोपान में अधिकारी के निरूपण प्रसंग में प्रमाणकर करा है जानलेना॥ अखरीलिखणबोलणबाणि॥ जो कुछ धर्म प्रतिपादक वाणी का (बोलण) उच्चारण करके देव मनुष्य तथा व्यासादिक ऋषिलोक लिखते हैं सो सर्वही अक्षरनामक वेद प्रमाण से लिखते हैं क्योंकि वेद मूलकही धर्म आस्तिकनको आश्रय करना योग्य है॥ इस में प्रमाण मनुवचनहै तथाहि॥ वेदोऽखिलोधर्ममूलंस्मृतिशीलेचतद्विदाम्। आचारश्चैवसाधू

नामात्मनस्तुष्टिरेवच॥मनु० अ० २ श्लो० ६॥
अर्थ ॥ सम्पूर्ण वेद धर्म में मूल अर्थात् प्रमाण है और वेदार्थ ज्ञाता पुरुषों के वचनरूप स्मृति भी धर्म में प्रमाण है और राग द्वेष रहित तत्त्वरूप जो शीलहै सो भी धर्म में प्रमाण है भाव यह राग द्वेष वर्जित पुरुष का वाक्य भी धर्म में प्रमाण है, ब्रह्मण्यता १ देवपितृभक्तता २ सौम्यता ३ अपरोपतापिता ४ अनसूयता ५ मृदुता ६ अपारुष्यं ७ मैत्रता ८ प्रियवादिता ९ कृतज्ञता १० शरण्यता ११ कारुण्यं १२ प्रशान्ति १३ इन त्रयोदश गुणों को कोई शील कहते हैं इससे इन त्रयोदश गुण युक्त का वचन भी धर्म में प्रमाण है और साधु पुरुषन का जो आचार है सो भी धर्म में प्रमाण है और जेकर धर्म में विकल्प होवे तव आपनी तुष्टि भी प्रमाणहै जिस पक्षको अन्तरात्मा स्वीकार करे सो भी धर्महै इस वास्ते प्रकरण में यह वार्त्ता सिद्धहुई जो कि धर्मसम्बन्धी लेख वेदादिक प्रमाण मूलकही स्वीकार करने को योग्य है तिससे पृथक् त्याग के योग्य है॥ अखरासिरसंजोगवखाण । जिन्हइहलिखेतिसासिरनाहि ॥
और तिस वेद में सर्व अक्षरन का शिरवत् शिर अर्थात् कारण जो ओंकार है तिसका शवल तथा शुद्ध के साथ

जो (संयोग) वाच्यवाचकभाव तथा लक्ष्यलक्षकभाव सम्बन्ध है तिसका (वखाण) कथन है और जिस परमेश्वर ने (इह) जगतमें धर्ममार्ग की प्रवृत्ति वास्ते ब्रह्माद्वारा वेदरूप अक्षर लिखे हैं तिसका यह ॐकार शिर शब्द बोध्य कारण नहीं है क्योंकि सो परमेश्वर ॐकारसहित सर्व वेदका कारण है॥ अब इस स्थान में ॐकार को सर्व वर्णों की कारणता और परमेश्वर को ॐकार सहित सर्व वेदकी कारणता में प्रमाण का निरूपण कर्त्तव्य है सो करते हैं॥ तथाहि॥ प्रजापति र्लोकानभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयी विद्या संप्रास्रवत्तामभ्यतपत्तस्या अभितप्ताया एतान्यक्षराणि संप्रास्रवन्त भूर्भुवःस्वरिति २ तान्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यॐकारः संप्रास्रवत्तद्यथा शङ्कुना सर्वाणि पर्णानि संतृणान्येवमोङ्कारेणसर्वावाक्संतृणोङ्कारएवेदꣳ सर्वम्। छान्दो॰ अ॰ २ खं॰ २३॥ अर्थ॥ ॐकारकी प्रशंसा करने वास्ते एक व्यवस्था कहते हैं प्रजापति विराट्रूप वा कश्यप इन सर्व लोकन को उद्देश करके (अभ्यतपत्) ध्यान करता भया तिन ध्यानकरे

हुये लोकन से ऋग्वेद सामवेद यजुर्वेदरूपत्रयी विद्या (संप्रास्रवत्) प्रजापति के मनमें अन्तर्यामी की प्रेरणा से प्रादुर्भाव को प्राप्तभई फिर तिस विद्या को उद्देश कर के पूर्ववत् ध्यान करता भया तिस ध्यान करीहुई वेद विद्या से भूर्भुवःस्वः यह अक्षर प्रादुर्भाव हुये फिर उन अक्षरन को उद्देश करके पूर्ववत् ध्यान करताभया फिर तिन ध्यात अक्षरन से ॐकार प्रादुर्भाव हुआ जैसे पीपल के पत्रकी सूक्ष्म २ धारी करके सर्वही पत्र व्याप्त होते हैं इसीप्रकार ॐकारकरके सर्ववाङ्मात्र व्याप्त है इसवास्ते यह सर्वही प्रपञ्च ॐकाररूप है तात्पर्य्य यह है ॐकार ब्रह्मस्वरूप परावाणी रूप है और अर्थ स्वरूप रूप प्रपञ्च नाम से पृथक् नहीं और नाम सम्पूर्ण वैखरी मध्यमा पश्यन्ती परावाणी से पृथक् नहीं इसवास्ते ॐकार सर्व रूप है और यह ॐकार शवलका वाचकहै और शुद्ध चैतन्य का लक्षक है ॥ परन्तु जो वैखरी वाणी रूप ॐकार है सो भी सर्व वेदके अन्तर्गत होने से परमेश्वरका कार्य्य है ॥ तथाहि ॥ स यथाऽऽर्द्रैधाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या

उपनिषदः श्लोकाःसूत्राण्यनुव्याख्याना नि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि निश्वसितानि॥ बृ० अ० २ ब्रा० ४ कां० १० ॥ अर्थ ॥ उत्पत्ति काल से पूर्वकाल में एक अद्वैत तत्त्वका निश्चय कराते हैं, परमात्मा से सर्व वेदकी उत्पत्ति में दृष्टान्त कहते हैं जैसे (आर्द्र) किञ्चित्गीले (एध) ईन्धन से प्रज्व- लित जो अग्नि तिससे पृथक् धूम प्रादुर्भाव होता है ता- त्पर्य यह है धूमकी उत्पत्ति से पूर्व केवल शान्त अग्नि का स्वरूपही धूमथा पश्चात् उत्पन्न होकर नानाप्रकार से प्रतीत होताहै इसीप्रकार (अरे) मैत्रेयी इस महत् स्वरूप परमात्मा का यह सब वेदरूप प्रपञ्च (निश्वसि- त) विना प्रयत्न से होनेवालाहै जो ऋग् यजु साम अ- थर्वण चारमन्त्ररूप वेदहै और इतिहास १ पुराण २ विद्या ३ उपनिषद् ४ श्लोक ५ सूत्र ६ अनुव्याख्यान ७ व्या- ख्यान ८ यह अष्टप्रकारका ब्राह्मण भागहै सो भी श्वास- वत् विना यत्न से परमात्मा से प्रादुर्भाव होता है ॥ इस श्रुति में सर्व वेदको परमात्माका कार्य्य कहने से ॐकार को भी कार्य्यता सिद्ध होती है जिसमें किसी की कथा होती है सो इतिहासरूप ब्राह्मण भाग वेद होता है और जिसमें जगत्की उत्पत्ति से पूर्व अवस्थाका निरू-

पण होता है सो पुराणरूप ब्राह्मण भाग वेद है और जो नृत्य गीत शास्त्र तथा शिल्पशास्त्र है सो विद्यारूप ब्राह्मण भाग है और जिसमें अत्यन्त गुह्य वस्तुका उपदेश है सो उपनिषद्रूप ब्राह्मणभाग है और जो ब्राह्मणभाग अन्तर्गत मन्त्र हैं सो श्लोकरूप ब्राह्मणभाग है और जो अत्यन्त संक्षिप्त अर्थके बोधक ब्राह्मण भागके अन्तर्गत वचन हैं सो सूत्र हैं और जो ब्राह्मण भाग के अन्तर्गत मन्त्रन के विवरण हैं सो अनुव्याख्यान हैं और जो अर्थवादरूप ब्राह्मणभाग है सो व्याख्यान है ॥ जब उत्पत्ति से प्रथमकाल में रूपप्रपञ्च से अभिन्ननाम प्रपञ्च रूप वेदब्रह्म से तादात्म्य को प्राप्त था तब एक अद्वैत ब्रह्म तिस काल में सिद्ध हुआ ॥ हे भगवन् तिस अक्षर परमात्माकी प्राप्ति कैसे होती है इस शंकाका समाधान गुरुजी कहते हैं ॥ जिवफुरमायेतिवतिवपाहि ॥ फ़ुरमायशब्द फारसी में आज्ञाका वाचक है याते जैसे परमेश्वर धर्मबोधक श्रुति स्मृतिरूप आज्ञा में जीव को साधन सामग्री की आज्ञा करता है तिस तिस साधनों को सेवन करके जीव परमात्मा को (पाहि) प्राप्त होते हैं सो ज्ञानप्राप्ति के साधन (पञ्चपरवाण) इत्यादि सोपान में विस्तार से निर्णीत हैं ॥ जेताकीतातेता

नाउ । विणनावैनाहींकोथाउ ॥ हे शिष्य पूर्व उक्त अक्षररूप परमात्मा ने जो कुछ करा है सो सर्वही नाम रूप है क्योंकि (थाउ) पदार्थमात्र नाम से विना नहीं तात्पर्य यहहै नाम जो वाचक शब्द हैं और तिनके वाच्य जो अर्थ हैं इन दोनों का आपस में तादात्म्य सम्बन्ध है इसीवास्ते स्थूलरूप से अर्थ के अभाव होने से सूक्ष्म अर्थ के साथ नामका सम्बन्ध है क्योंकि जब नाम का उच्चारण होताहै तब अर्थ का बोध होजाता है इसवास्ते नाम से पृथक् अर्थ नहीं प्रकरण में गुरुजीने परमेश्वर की प्राप्ति का प्रकार इसरीति का कहा जोकि पदार्थमात्र प्रपञ्च को नामस्वरूप चिन्तन करके नाममात्र का ॐकार में लय चिन्तन करे फिर ॐकार की मात्राओं के पूर्वउक्त जो अर्थ विराट् हिरण्यगर्भ ईश्वर तत्पदलक्ष्य विश्वतैजसप्राज्ञ त्वंपदलक्ष्य साक्षी हैं इनका अनुसंधान करे तब अपने आपही अक्षरस्वरूप को प्राप्त होता है ॥ कुदरतिकवणकहावीचार । वारिया नजावाएकवार ॥ जोतुधभावैसाईभलीकार । तूसदासलामतिनिरङ्कार १९ ॥ हे शिष्य जिस परमेश्वर ने यह सृष्टि अपने सङ्कल्प से करी है तिसकी (कुदरति) शक्ति कौनसी विचारकर कथन करें और

हमतो तिसपर अनन्तवार अपने आप को निवेदन क-
रते हैं और हे शिष्य तेरे को ज्ञान अथवा वैराग्य व भक्ति
इनमें से जो कुछ (भावै) रुचे सो करना श्रेष्ठहै वास्तव
से तो तू सदा सलामति निरङ्कार स्वरूप है भाव विना-
श रहित निराकार ब्रह्म और तेरा सर्वदा अभेद है ॥

श्रीनिर्मलश्रेणीप्रविष्टसाधुसिंहविरचितश्रुतिसंवलितगुरुग्रन्थप्रदीप
व्याख्यानेजपपूर्वार्द्धसमाप्तिमगात् ॥

ॐतत्सत् श्रीगणेशाय नमः श्रीगुरुभ्यो
नमः ॥ पूर्व सोपान में परमेश्वर की महिमा का नि-
रूपण करते हुए उत्तम अधिकारी प्रति (तू सदासलाम-
ति निरङ्कार) इसप्रकार परमात्मा के अभेद का उपदेश
करा है और अब धर्माधर्म के प्रबन्ध में जो अधिकारी
अत्यन्त करके प्रविष्ट है तिसको दृष्टान्त कथनपूर्वक ति-
नके निवर्तक प्रकारका उपदेश करतेहैं ॥ भरीयैहथ
पैरतनदेह। पाणीधोतैउतरसखेह॥ मूतपलीती
तीकपडहोय। देसाबूणलईयैओहुधोय॥
जव (तन) शरीर के हस्त तथा पाद और (देह) म-
ध्यभाग (खेह) धूली से भरजावे तव जलसे धोनेकर
सो धूली उतरजाती है इसीप्रकार जब वस्त्र मूत्रादि कर
(पलीती) अपवित्र होजावै तब साबन लगाकर सो

वस्त्र धोलेते हैं ॥ भरीयैमतिपापकेसङ्ग । उोहुधो पैनावैकैरङ्ग ॥ पुन्नीपापीआखणनाहि ॥ इन पूर्व्वे उक्तदृष्टान्तोंवत् मतिभी जब पापनके संग भर जाती है तब उसका धोना (नावैकेरंग) परमेश्वर के नामन के अभ्यास में रंगजाने से होता है जैसे हरिद्रा आदिकन के रंगसे वस्त्र रंजित होजाता है तैसे परमेश्वर के नामकर बुद्धिकेरंजित होनेसे तिसकी शुद्धि होती है फिर बुद्धिके शुद्धिहोने पर पुन्नी तथा पापीनाम से नहीं (आखण) कथन होता तात्पर्य यह है नामके अभ्यास करते करते क्रमसे सच्चिदानन्द स्वरूप के प्राप्तहोने से सर्व पुण्य पापरूप बन्धन की निवृत्ति होजाती है ॥ इस अर्थका श्रुतिमें निरूपण किया है ॥ तथाहि ॥ पितृघ्नोमातृघ्नोजारोगुरुहानेककोटियतिघ्नोऽनेककृतपापोयोममषण्णवतिकोटिनामानि जपतेसतेभ्यःपापेभ्यःप्रमुच्यतेस्वयमेवसच्चिदानन्दस्वरूपोभवेन्नाकिम् ॥ हनुमदुक्तरामोपनिषद् । खण्ड २ ॥ यह श्रुति परमभक्त हनुमान् करके इष्ट रामोपनिषद में लिखीहै वहां विभीषण के प्रति श्रीरामभगवान् ने अपने नामका प्रभाव कहा है हे वि-

भीपण जो मेरे चारकर्म शतकोटिनामन का जपकरता है सो जेकर जन्म जन्मान्तर में पिता माताके मारनेवाला हो तथा गुरुकी स्त्री के साथ रमण करनेवाला हो और गुरुके मारनेवाला हो अनेक क्रोड़ संन्यासियों के मारनेवालाहो इनसे आदिलेकर अनेक पापन के करनेवाला भीहोवे तबभी इन पापनसे मुक्त होकर क्या अपनेआप सच्चिदानन्द स्वरूप न होवेगा किन्तु अवश्यही सच्चिदानन्द स्वरूप होजायगा॥ तात्पर्य यह है जब ब्रह्मभावको प्राप्तहुआ तब पुण्यी पापीनाम से तिसका कथन नहीं होता और जो नामके रंगसे वर्जित रागद्वेष के प्रबन्ध में आरूढ़ विहित तथा निषिद्ध कर्मको करते हैं तिनकी दशाका निरूपण करते हैं॥ **करिकरिकरणालिखिलैजाहु। आपेबीजआपेहीखाहु॥ नानकहुकमीआवहुजाहु २०॥** जो पुरुष परमात्मा के नामके अभ्यास से रहित हैं वह सुख भोगके और दुःख भोगके तथा सुख दुःख मिश्रितभोगके हेतु कर्मन को (करिकरि) वारंवार सम्पादन करके (करणा) तिनकर्मन के संस्कारन को अपने अन्तःकरण रूप कागज में लिखकरके कर्म के फल भोगने वास्ते जन्मन को प्राप्तहोते हैं क्योंकि अपनेआप कर्म

रूप बीज बोते हैं और आपही तिसके फल खाते हैं श्री गुरुजी कहते हैं (हुकमी) परमात्माकर प्रेरितहुए पर- लोकसे इस लोक विषे आते हैं और इस लोकसे परलोक में जाते हैं॥ इस स्थान में इतना और भी जानना जैसे जीव आवने तथा जाने में स्वतन्त्र नहीं तैसे कर्म के करने में तथा तिसके फल भोगने में भी स्वतन्त्र नहीं किन्तु ईश्वर परमात्मा के अधीन है॥ अब श्रुतिप्रमाण लिखते हैं। तथाहि ॥ तंविद्याकर्म्मणीसमन्वार भेतेपूर्वप्रज्ञाच ॥ वृ० उ० ब्रा० ४॥ अर्थ ॥ दे- हत्यागकर द्वितीय देह ग्रहणके वास्ते गमनकरनेवाले जीवकेप्रति (विद्या) उपासना तथा कर्म (समन्वारभेते) साथ चलते हैं और (पूर्वप्रज्ञा) पूर्वशरीर कर सम्पादित संस्कारभी साथ जाते हैं। तात्पर्य यह है जिस प्रकारकी जीवने पूर्वशरीरमें उपासना सेवनकरी है तथा शुभाशुभ कर्म करे हैं और जैसे उसके उत्तम मध्यम कनिष्ठ सं- स्कारहैं तिन सर्व को साथलेकर शरीर ग्रहणके वास्ते जाता है॥ एषह्येवसाधुकर्म्मकारयति तंयमे भ्योलोकेभ्यउन्निनीषतएषउएवासाधुकर्म्म कारयति तंयमधोनिनीषतएषलोकपालएष

लोकाधिपतिरेषलोकेश। समआत्मेतिविद्या
त्, कौषी० उ० अध्याय० ३ अर्थ॥ यहसर्वका
प्रेरक परमेश्वरही निश्चयकरके तिससे श्रेष्ठ कर्म्मन को
कराता है जिसको इनलोकन में ऊपर प्राप्त करने की
इच्छाकरता है और यहही निश्चयकरके तिससे असाधु
कर्म्म कराता है जिसको अधोगति को प्राप्तकरने की
इच्छाकरता है और सो परमेश्वरही लोकन का पालक
है तथा सर्व लोकनका अधिपतिहै और लोकेश अर्थात्
सर्व लोकन का नियन्ताहै सो मेरा आत्मा है इस प्रकार
जाने २०॥ हे भगवन् इस संसार से छूटने का उपाय
निरूपण करो जिसको सेवन करके परमानन्द को प्राप्त
होवां इस प्रकारकी शिष्यकी प्रार्थना से सोपान का
आरम्भ करते हैं॥ तीर्थतपदयादतदान। जेको
पावैतिलकामान॥ जो कोई भी मुमुक्षु पुरुष (ति-
लकामान) सर्वविद्याओंका तिलक अर्थात् शिरोमणि
स्वरूप (मान) ज्ञानको पावना चाहता है सो विधिपू-
र्वक तीर्थ सेवनकरे और द्वन्द्व सहनरूप तपकरे और
सर्वजीव मात्रपर दयाकरे तथा (दत) इन्द्रिय निरोध
करे और यथाशक्ति दान करे इन साधनों से जब ज्ञान
प्राप्तहोजाय तब सर्व बन्धकी निवृत्ति होती है॥ सुणि

यामन्नियामनकीताभाउ। अन्तरगतितीर्थिमलनाउ॥ हे शिष्य तू श्रवण मनन और (मनकीताभाउ) निदिध्यासन को संपादन करके (अन्तरगति) परमतत्त्व के (तीर्थ) ज्ञान में (मलनाउ) मलकी निवृत्तिवास्ते स्नानकर, इसस्थान में यह समझना तीर्थ सेवन १ तप २ दया ३ इन्द्रियदमन ४ दान ५ इत्यादिक ज्ञानके बहिरङ्ग साधनहैं और श्रवणादिक अन्तरङ्ग साधन हैं॥ **सभगुणतेरेमैंनाहीकोय। विणगुणकीतेभक्तिनहोय॥** हेशिष्य तेरे स्वरूपभूत परम तत्त्व में सम्पूर्ण गुणहैं और कोई भी नहींहै इसप्रकार के (गुण) ज्ञानके विनाकरे (भक्ति) एकाकारवृत्ति प्रवाह नहीं होता, तात्पर्य यहहै विचारवान् पुरुषको इस प्रकार जानना योग्य है जोकि मेरे स्वरूपमें गुणकार्य प्रपंच के तथा गुणन के होतेही इनका अत्यन्ताभाव है क्योंकि विना ज्ञानरूप दीपक से अन्धकार सदृश गुण तथा तिन के कार्यकी प्रतीति होती है और ज्ञानरूप प्रकाश के होनेपर सर्वकारण कार्यप्रपंचकी गन्ध भी नहीं रहती इसवास्ते गुणनके होतेही मेरे स्वरूप में इनका लेशभी नहीं किन्तु परमातमा निष्प्रपञ्च है सो मेरा स्वरूप है इस प्रकार ज्ञानके हुए पीछे निर्विशेष चैतन्यगोचर भक्तिरूप

वृत्तिप्रवाह होता है और जबतक निर्विशेषका बोध न होवे तबतक निर्विशेषाकार वृत्तिप्रवाहरूप भक्ति होती नहीं॥ **सुअसतिआथबाणीबरमाउ। सतिसुहाणुसदामनचाउ॥** हे गुरो (सुअसति) मेरी कल्याण के वास्ते (बरमाउ) ब्रह्मसंबन्धी वाणीको (आथ) कहो क्योंकि मेरेमन में सदाही सत्स्वरूप परमात्मा में (सुहाण) जो दृश्यकी निवृत्ति तिसका (चाउ) उत्साह रहता है इस प्रश्नका उत्तर देनेवास्ते परमेश्वरकी आश्चर्यमहिमा कहते हैं॥ **कवणसुवेलावखतकवणु कवणथितिकवणवार। कवणसिरुतीमाहुकवणजितहोआआकार॥** जिसको फारसी में वखत कहते हैं ऐसा सो वेला कौनहै और (थिति) तिथिकौन तथा वार ऋतु मास कौन है (जित) जिसमें परमात्मा से (आकार) यह भूत और भौतिकप्रपञ्च हुआ है॥ भाव उसका निश्चय नहीं होता॥ **वेलनपाईयापंडितीजिहोवैलेखपुराणु। वखतनपायओकादीयाजिलिखनलेखकुराणु॥ थितिवारनजोगीजाणैरुतिमाहुनकोई।** सृष्टिके वेलेको पंडितों ने नहीं पाया जेकर सोपाते तब पुराणों में लेखहोता इसीप्रकार

काजीलोकों ने भी उस वखतको नहीं पाया जेकरपाते तब कुरान में लेखको लिखते और योगिजनभी सृष्टि रचना के तिथि वारको तथा ऋतुमासको नहीं जानते ॥ **जाकरतासिरठीकउसाजे आपेजाणेसोई ॥** जो परमेश्वर सृष्टिको (साजे) रचता है सो अपने आपही तिस सृष्टिके कालको जानता है तात्पर्य यह है जब साधारण जीव तिसकी रचनाके कालकोही नहीं जानते तब तिसकी निवृत्ति कैसे करसकते हैं हे भगवन् जेकर सृष्टिके रचना कालको सो परमात्मा अपने आप जानता है तब जानो परन्तु आप तिसका मेरे प्रति उ-पदेशकरो इस प्रकार शिष्यकी जिज्ञासाके होनेपर गुरु कहते हैं ॥ **किवकरआखाकिवसालाहीकिउ वरनीकिवजाणा ॥** हे शिष्य चारप्रकार से वस्तुका उपदेश होता है जाति १ गुण २ क्रिया ३ संकेत ४ रूपसे जैसे यह मनुष्य है और यह श्वेत है और यह पाठकहै और यह देवदत्तहै इस स्थान में मनुष्यत्वजाति श्वेतगुण पठनक्रिया और देवदत्तनाम जोकि पिता आदिकों ने संकेत करा है सो शब्दकी प्रवृत्ति के चारों कारणहैं तैसे परमात्मा के वास्तव स्वरूप में चारों नहीं तब जातिके न होने से कैसे कथनकरों और गुणके न

होने से कैसे तिसकी स्तुतिकरों और क्रियारहित होने से (किउवरनी) कैसे निरूपण करां और संकेत से शून्यहोने से कैसे जानसकते हैं ॥ इस प्रकार जेकर परमात्मा अयोग्यहै तब तिसका ज्ञान नहीं होनाचाहिये इस शिष्य की जिज्ञासाते कहते हैं ॥ **नानकआखणसभकोआखैइकदूइकसियाणा** ॥ श्रीगुरुजी कहते हैं जो एकसे एक (सियाणा) चतुरहै सो संपूर्ण (आखण) उपदेश को (आखै) करते हैं तात्पर्य यह है जातिआदिक शून्यका भी लक्षणा वृत्तिसे बोधकराते हैं, इस कथनसे जो पूर्व शिष्य ने प्रश्नकरा था जोकि सतब्रह्म में से दृश्यकी निवृत्ति को चाहता हूं इसका उत्तर यह कहा कि लक्षणावृत्तिसे तत्पदके लक्ष्यसे त्वंपदके लक्ष्य का अभेद जानकर अखण्ड वस्तुके अनुभव से दृश्यकी निवृत्ति होती है परन्तु सो अखण्ड वस्तुका साक्षात्कार ब्रह्मश्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ गुरुके उपदेश से होता है और विना उपदेश से ब्रह्मका आत्मस्वरूप से ज्ञानशोभा नहीं पाता इस बात का निरूपण करते हैं ॥

वडासाहिबवडीनाईकीताजाकाहोवै ॥ नानक जेको आपो जाणै अगैगया न सोहै २१ ॥

जो (साहिब) सर्वका स्वामीहै सो (वडा) सर्वव्यापी है और (नाई) जो वेदवाणी रूप आवाज है सो भी जिसकी वडी है अर्थात् प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणकर अगम्य अर्थोंकी वोधक होनेसे सर्वसे अधिक है और जिसका (कीताहोवै) सर्व प्रपंच कार्य है ऐसे नानकपद वोध्य पुरुषोत्तमको जो (आपोजाणै) गुरु उपदेश से विना अपने आप जानता है सो (अगैगया) विद्वान् पुरुषों के सन्मुखहोकर शोभा नहीं पाता तात्पर्य यह है लक्षणा के आश्रयण से विना विरोध न दूरहोने से और परमेश्वर की शरणागति के त्यागसे सो स्वयंसिद्ध पुरुष महात्मा की सभा में तिरस्कार को प्राप्तहोता है और जिसको गुरु उपदेश से लक्षणा से वोध होता सो ऐसा जानता है जोकि तरंगका वास्तव रूप समुद्रवत् मेरा वास्तवस्वरूप ब्रह्म है तथापि मैं परमेश्वरका हूं परमेश्वर मेरा नहीं इसीवार्ता को आप्तवाक्य से वोधन करा है ॥ तथाहि ॥ सत्यपिभेदापगमेनाथतवाहंनमामकीनस्त्वं सामुद्रोहितरङ्गः क्वचनसमुद्रोनतारङ्गः १ ॥ अर्थ ॥ हे भगवन् ! विचार से हमारा तथा आपका भेद तो सर्वथा न रहा तबभी हे नाथ ! मैं तुम्हाराहूं और आप मेरे नहीं क्योंकि समुद्रका निश्चय

करके तरङ्ग है कुछ तरङ्गका समुद्र नहीं है॥ २१॥ जो पूर्व सोपान में लक्षणावृत्ति से लक्ष्य बोधन करा है तिस का निरूपण करते हैं॥ पाताळापाताळलक्ष्यआगासाआगास। ओडकओडकभालथकेवेद कहनइकबात। सहसअठारहकहनकतेबाअसलूइकधात। लेखाहोयतलिखीयैलेखैहोय विणास। नानकवडाआखीयै आपेजाणै आप २२॥ हे शिष्य जो लक्ष्यवस्तु है सो पातालों का पाताल है और लक्ष्यही आकाशोंका आकाश है तात्पर्य्य यह है पाताल तथा आकाशनका अधिष्ठान स्वरूप हुआ तिनको अस्ति भाति प्रियरूप से प्रतीति करनेवाला है अर्थात् जब लक्ष्यवस्तुका विवेचन कराजाय तब पाताल और आकाश कुछ दीखते नहीं इसीवास्ते श्रुतिमें लक्ष्यवस्तु भूमाको सर्वत्र विद्यमानता कहा है। तथाहि॥ सएवाधस्तात्सउपरिष्टात्सपश्चात्सपुरस्तात् सदक्षिणतःसउत्तरतःसएवेदꣳसर्वमित्यथातोऽहङ्कारादेश एवाहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं पुरस्तादहंद

क्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदꣳसर्वमिति १ अथातआत्मादेश एवात्मैवाऽधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चादात्मापुरस्तादात्मा दक्षिणतआत्मोत्तरतआत्मैवेदꣳसर्वमिति॥ छा०उ० अ० ७॥ अर्थ ॥ भूमारूप परब्रह्महीं (अधस्तात्) नीचे पातालों का अधिष्ठान है और सोई (उपरिष्टात्) ऊपर सर्व आकाशोंका अधिष्ठान है इसीप्रकार पीछे आगे और दक्षिण उत्तर में भी सर्वका आधार है बहुत क्या कहे सर्व प्रपंच तिसकाही स्वरूप है इसीप्रकार अहंकार करके तथा आत्मा करके जो आदेश नाम उपदेश है सोभी ऐसेही जानना; इस स्थान में भूमा शब्द तथा अहंशब्द और आत्मा शब्द करके लक्ष्य वस्तुको सर्वरूपता बोधनकरा है॥ और सो लक्ष्य वस्तु (ओडक) जो सर्वप्रपंचकी अवधि है तिसकाभी (ओडक) अवधिरूप है, इसीवास्ते श्रुतिमें परमतत्त्व रूप पुरुष को परे से परे बोधनकरा है॥ तथाहि॥ इन्द्रियेभ्यःपराह्यर्थाअर्थेभ्यश्चपरंमनः॥ मनसस्तुपराबुद्धिर्बुद्धेरात्मामहान्परः १० महतःपरमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषःपरः॥ पुरुषान्नपरंकिञ्चित्साका

ष्ठासापरागतिः ११ ॥ कठ० उ० ॥ अर्थ ॥ जो सूक्ष्म भूतोंने अपने प्रकाश करने वास्ते इन्द्रिय आरम्भ करे हैं तिन इन्द्रियों से परे सो सूक्ष्म भूतरूप अर्थ हैं और इन्द्रिय तथा अर्थोंका व्यवहार मनके अधीनहै इसवास्ते अर्थोंसे परे मन है और मनसेपरे बुद्धि और बुद्धिसे परे महत्तत्त्व है तिन महत्तत्त्व से परे अव्यक्तनामक माया तत्त्वहै और अव्यक्त से पुरुषपरहै और पुरुष से पर कुछनहीं सो पुरुष काष्ठा नाम सर्वप्रपंचकी अवधि है और सोई परम गतिरूपहै। इसवास्ते पुरुषरूप लक्ष्यवस्तुही, ओडक ओडकनाम से कथनकरी है ॥ तिस लक्ष्यरूप वस्तुको केवल तर्क करके (भालथके) खोजते खोजते थकित होगये मिला नहीं, परन्तु इकवात, एकता बोधक वचनरूप वेद तिसको लक्षणा से कथन करते हैं शक्ति से नहीं और जिन चौरासी लाख योनिको (कतेवा) कुरान से लेकर सर्व कतेवा अठारह सहस्र गिनती करते हैं वह सर्वही (असलू) वास्तव से (इकधात) एक परमार्थ तत्त्व लक्ष्यरूप है, सो लक्ष्य आप कितने प्रमाण कर युक्त है इस शंका के होने से कहते हैं, लेखा होयत लिखिये, जेकर उसका कुछ लेखामाप तोल प्रमाणहोवे तव लिखाजाय परन्तु सो लक्ष्यवस्तु सर्व प्रकार से माप तोलते रहित है और जे-

कर उसका मापतोल आदिकका लेखा होवेगा तब (वि-णास) विनाशित्वकी प्राप्ति होवेगी क्योंकि जो जो वस्तु माप तोल आदिक के लेखे सहित है सो सो विनाशी है इसवास्ते श्रीगुरुजी कहते हैं लक्ष्यरूप परमतत्त्व को सर्व से वड़ा (आखीये) कथन करिये परन्तु सो अपने आपही अपनी वडियाई को जानताहै २२॥ हे भगवन् जो आपने एकपरमार्थ वस्तु लक्ष्यरूप कहा है सो जेकर सर्वका वास्तव स्वरूप है तब जीवनकी सुखके वास्ते विषयों में प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिये क्योंकि सुख स्वरूप एकतत्त्व उनका वास्तव स्वरूप तिनको प्राप्त है इसप्रकार शिष्यकी शंकाके निरास वास्ते गुरु कहते हैं॥

सालाहिसालाहएतीसुरतिनपाईया। नदीया अतेवाहपवहिसमुंदनजाणीयहि॥ हे शिष्य (सा-लाही) सुखरूपसे श्लाघा के योग्य परमात्माकी आ-नन्दरूप से श्लाघाकर क्योंकि सो परमात्माही सुखरूप है तिसते जो भिन्न वस्तु है सो दुःखरूप है इसीवास्ते श्रुति में परमात्मा से भिन्नको सुखरूप ताका निषेधकरा है तथाहि॥**योवैभूमातत्सुखंनाल्पेसुखमस्ति॥** छां० उ० अ० ७ खण्ड २३॥ अर्थ॥ जो

(भूमा) सर्व से बहुत ब्रह्मतत्त्व रूप वस्तु है सोई सुखरूप है और अल्पपरिच्छिन्न वस्तु में सुख नहीं है किन्तु अल्पवस्तु दुःख से व्याप्त है॥ और जो (एती) सर्वसृष्टि हैं इनको (सुरति) ज्ञान (नपाईया) नहीं प्राप्तहुई यद्यपि सर्वजीव मात्रको सुषुप्ति कालमें आनन्दरूपता अनुभूत है तथापि अज्ञान के प्रभावसे उनको इसप्रकार का बोध नहीं जोकि हम प्रतिदिन आनन्दरूप वस्तु को प्राप्तहोकर उसते उत्थान होती हैं संस्कार के प्रभावसे हमारा पुनः पुनः उत्थान है इसप्रकार भी नहीं जानती; जैसे नदियां और बाहनाम नाले समुद्र से मेघनिमित्त से उत्थान होकर समुद्रमेंही जाकर मिलते हैं परन्तु उन को बोधनहीं जोकि हमारा समुद्रमें प्रवेश तथा समुद्र से उत्थान है॥ **संमुंदसाहसुलतानगिरहासेतीमा लधन। कीडीतुलनहोवनीजितिसमनहुमन वीसरह २३॥** (साह) मंडलेश्वर (सुलतान) चक्रवर्ती राजा जिनके (गिरहासेती) वाणीमात्रसे (मालधन) पशु आदिक धन तथा रत्नसुवर्ण आदिक धन एकत्र होसकता है यह सम्पूर्ण कीडीतुल अर्थात् चींटी की नाईं (समुद्ररूप परमात्मा से जाग्रत तथा स्वप्नमें

उत्थान होकर फिर सुषुप्ति में समुद्ररूप परमात्मा में लीन होतेहैं इसवास्ते परमतत्त्व के अबोध से इनको चींटी तुल्यता है क्योंकि दोनोंको जन्म जन्मान्तर की प्राप्ति में एकता है ॥ परन्तु जेकर तिनको मनसे परमतत्त्व की विस्मृति नहीं तब (न होवनी) चींटी की तुल्यता को नहीं प्राप्त होते किन्तु बहुत अन्तराय हैं) क्योंकि केवल अज्ञान से जन्मोंमें भ्रमेहैं ॥ इसीवास्ते सुषुप्ति अवस्था में सर्व जीवन को ब्रह्मप्राप्ति और ब्रह्मका अज्ञान श्रुति में लिखाहै ॥ तथाहि ॥ सौम्येमाःसर्वाःप्रजाःसति सम्पद्यनविदुःसतिसम्पद्यामहइति ॥ तइह व्याघ्रोवासिंहोवावृकोवा वराहोवाकीटोवाप तङ्गोवादंशोवा मशकोवायद्यद्भवन्तितदाभ वन्ति ॥ छा०उ०अ०६खण्ड९ ॥ अर्थ ॥ हे सौम्य प्रिय श्वेतकेतो ! जो यह सर्व प्रजाहैं सो सत्ब्रह्म में प्राप्त होकर नहीं जानती जोकि हम सत्ब्रह्म को प्राप्त होतीहुई वे सर्वजीव इस जाग्रतकाल में व्याघ्र सिंह वृक वराह कीट पतङ्ग दंश मशक इन से आदि लेकर जिस २ संस्कारविशिष्ट होतेहैं सोई सोई सुषुप्तिकाल में ब्रह्मरूप होकर फिर जाग्रत में होतेहैं ॥ प्रकरण में यह वार्ता

निर्णीत हुई जोकि सर्व जीवमात्र को ब्रह्मकी प्राप्ति होती है परन्तु सो जानते नहीं जोकि सुषुप्तिकालमें ब्रह्मस्वरूप थे अब ब्रह्म से उत्थित हुए हैं इसीवास्ते सुखरूप आत्मा के अज्ञानसे अथवा आत्मरूप सुखके अभिव्यञ्जक होने से विषय में प्रवृत्ति भी बनती है २३ हे भगवन् जिस परतत्त्व के ज्ञान से कीट पतंग की तुल्यता नहीं होती किन्तु ब्रह्मभाव की प्राप्ति होती है सो परमतत्त्व सर्व्वसे बड़ा आपने निरूपण कराहै अर्थात् सर्वप्रकार के भेदसे वर्जितहै यह कहाहै परन्तु सो सर्वप्रकार के भेदसे रहित सम्भवे नहीं क्योंकि आप तिसकी स्तुति करते हैं और जहां स्तुति होती है तहां एक स्तुतिकर्त्ता और एक स्तुति तथा एक स्तुतिके योग्यवस्तु इस प्रकारकी त्रिपुटी होती है इसी प्रकार जब तिसका कथन है तब कथनकर्त्ता १ और कथन क्रिया तथा कथनयोग्य वस्तुरूप त्रिपुटी है इसी प्रकार जीवकी उत्पत्ति में और देनेमें देखने में श्रवणआ-दिकोंमें सर्वत्र त्रिपुटी है जब त्रिपुटी हुई तब सर्वप्रकारके भेदसे रहित कैसे होसकता है इस शङ्का के निरास वास्ते सोपान का आरम्भ करते हैं ॥ अन्त न सिफती कहणि न अन्त। अन्त न करणै देणि न अन्त। अन्त न देखणि सुणनि न अन्त ॥ औपाधिक भेद वास्तव

भेदका साधक नहीं जैसे दीपक और वर्त्तिका तथा तेल- रूप उपाधिके भेदसे अग्निका भेद प्रतीतहोते भी अग्नि एक अद्वैतरूप है इसी प्रकार (सिफती) स्तुति तथा कथन से जो भेद प्रतीत होताहै सो देहादिक उपाधि से है परन्तु सो औपाधिक भेद वास्तव अभेद का बाधक नहीं, इस अर्थ को श्रुति पुष्ट करती है॥ तथाहि॥

अग्निर्यथैकोभुवनंप्रविष्टोरूपंरूपंप्रतिरूपोबभूव॥ एकस्तथासर्वभूतान्तरात्मारूपंरूपंप्रतिरूपोबहिश्च॥ कठ० उ० व० ५ श्रु० ६॥

अर्थ॥ जैसे एकही अग्नि (भुवन) अपने स्थान काष्ठ वर्त्तिकाआदिक में प्रविष्टहुआ (रूपंरूपं) तिस तिस उपाधि के अनुसार से (प्रतिरूप) तिनके सदृश होता है इसीप्रकार एकही सर्वभूतों का अन्तरात्मा तिस तिस उपाधि के अनुसार ते तिनके सदृश होताहुआ भी (बहिश्च) सर्वप्रकार से भेद वर्जित एक रूपहै॥ करण नाम उत्पत्तिका है प्रकरण में जीवकी उत्पत्तिलेनी याते परमात्मा से उपाधिकी उत्पत्ति से जीवकी उत्पत्तिहुए भी कारण कार्यरूप से भेद नहीं क्योंकि परमतत्त्वरूप अधिष्ठान से मायिक चित्तकी उत्पत्ति होने से चित्तोपाधिक जीवकी उत्पत्ति का व्यवहार होताहै वास्तव ते

जीवकी उत्पत्ति नहीं ॥ इस अर्थकी पुष्टिवास्ते श्रुतिप्र-माण लिखते हैं ॥ तथाहि ॥ तदेतत्सत्यंयथासुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिङ्गाःसहस्रशः प्रभवन्तेसरूपाः ॥ तथाक्षराद्विविधाः सौम्यभावाः प्रजायन्ते तत्रचैवापियन्ति ॥ द्वितीयमुण्डक, खण्ड १ श्रु० ॥ अर्थ॥ जैसे अच्छे प्रकार प्रज्वलित पावक से (सहस्रशः) अनन्तप्रकार से (विस्फुलिङ्ग) चिनगारे (सरूपाः) समानरूपवाले (प्रभवन्ते) उत्पन्न होतेहैं तैसे जिस अक्षररूप परब्रह्म से (विविधाः) नानाप्रकार के पदार्थ उत्पन्न होते हैं और उसी में लीन होजाते हैं सो यह वस्तु सत्यहै ॥ इस स्थान में जैसे काष्ठरूप उपाधि का नानात्व भाव होने से अग्निमें नानात्वभाव प्रतीतिमात्र है इसीप्रकार परमतत्त्व की माया उपाधिकेनानात्वभाव होनेसे परमतत्त्व में नानात्वभाव प्रतीत होताहै वास्तव नहीं ॥ और माया उपाधि भी वास्तवभेद का साधक नहीं क्योंकि माया और ब्रह्मका तादात्म्य सम्बन्ध है जिनका तादात्म्य सम्बन्ध होताहै उनका भेद होता नहीं और इसीप्रकार जीवोंके भतिदान करनेसे तथा परमात्मा के ज्ञानरूप देखने से तथा श्रवण करनेसे भी परमात्मामें वास्तव भेदका असम्भव जानना॥

अन्तनजापेकियामनमन्त। अन्तनजापेकी ताआकार। अन्तनजापेपारावार॥ अन्तका रणकेतेबिललाहि। ताकेअन्तनपायेजाहि॥

जो मननकर्त्ता पुरुष है सो मन्तहै तिसका कराहुआ जो (मन) मनन है सो (किया) अर्थात् भेदके सिद्ध करने में असमर्थ हैं इसवास्ते (अन्तनजापे) मंतृमंतव्य भावरूप वास्तवभेद नहीं और जो परमात्मा नें अपने मायिक संकल्प से अवतार आकार कराहै तिससे भी वास्तवभेद सिद्ध नहीं होता और जो पारावार नाम संसार है तिसते भी वास्तव भेद नहीं होता वहुतसे तर्क करनेवाले भेदके सिद्ध करने (कारण) निमित्त से (बिललाहि) विलाप करते हैं परन्तु तिसका वास्तव भेद तिनको प्राप्तहोता नहीं; तात्पर्य यह है (परमात्मा भेदयुक्तः सर्वमन्तृमन्तव्यादि व्यवहारविषयत्वात् शास्त्रप्रतिपाद्यभावाऽऽदिपदार्थवत्) परमेश्वर भेद युक्तहोना योग्य है क्योंकि सर्व प्रकारके मंतृमन्तव्यआदिक व्यवहारका विषयहोने से शास्त्रकरके प्रतिपाद्य भावादि पदार्थवत् इस प्रकार जब तार्किक लोक भेद सिद्ध करते हैं तब तिस भेदका औपाधिक भेद में पर्यवसान होता है वास्तव भेद नहीं बनता।

एहुअन्तनजाणैकोय । बहुताकहीयैबहुता होय ॥ जो कोई अधिकारी अनेक प्रकार से प्रतीत होते भेदको अनुभव में स्थित होकर अखण्ड बोधसे (नजाने) तब तिसको (बहुता कहीयै) सर्वबृहत् जो ब्रह्म है सोई कहना चाहिये क्योंकि सो अखण्ड ब्रह्मका अनुभव करनेवाला आपही (बहुता) ब्रह्मरूप होताहै॥ इस स्थान में गुरुजी ने श्रुतिप्रमाण को सूचन करा है, तथाच श्रुति ॥ सयोहवैतत्परमंब्रह्मवेद ब्रह्मैवभवति ॥ तृतीयमुण्डक, खण्ड २ ॥ अर्थ ॥ (हवै) निश्चय करके जो प्रसिद्ध पुरुष तिस परमब्रह्म को जानताहै सो ब्रह्महीहै ॥ तात्पर्य यहहै अखण्ड साक्षात्कार वालेको कालान्तर में ब्रह्मकी प्राप्ति नहीं होती किन्तु तत्कालही नित्यमुक्त ब्रह्मरूप अपने आपको जानताहै॥ हे भगवन् जो सर्व प्रकारके भेद वर्जित ब्रह्महै सो जाग्रत् स्वप्न तथा सुषुप्ति स्थानवाला है अथवा नहीं इस प्रश्नका उत्तर लिखते हैं॥ वडासाहिबुऊचाथाउ। ऊचेउपरिऊचानाउ ॥ एवडऊचाहोवैकोय। तिसऊचेकउजाणैसोय ॥ जेवडआपिजाणै आपिआपि। नानकनदरीकरमीदाति २४ ॥

हे शिष्य यद्यपि सो ब्रह्म सर्व स्थानों में वास्तव भेद वर्जित है तथापि उसका तुरीय अवस्थारूप सर्व जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति स्थानों से ऊंचा (थाउ) स्थान है ऐसे ऊंचे स्थानवाला (साहिब) सर्वका स्वामी (वडा) व्यापक है। तुरीय अवस्थाका निरूपण श्रुतिमें कराहै। तथाहि॥

अवस्थात्रयाभावाद् भावसाक्षिस्वयंभावरहितंनैरन्तर्यंचैतन्यंयदातदातत्तुरीयंचैतन्यमित्युच्यते । सर्वोपनिषत्सारोपनिषत ॥

अर्थ॥ जिस कालमें अवस्थात्रय के अभावहोने से भावोंकासाक्षी (स्वयं) अपने आप निर्लेप होने से सर्व भावोंसे रहित (नैरन्तर्य) निरन्तर प्रतीत होता है तब तिस चैतन्यको तुरीय कहते हैं। तात्पर्य यह है जिस कालमें केवल चैतन्यभान होता है उसको तुरीय अवस्था कहते है॥ सर्व से ऊंचे तुरीय चैतन्यके (उपरि) तिसका बोधक नाम भी ऊंचा है। तात्पर्य यह है तिस चैतन्यके ओत १ अनुज्ञात २ अनुज्ञा ३ अविकल्प ४ यह नाम है। इन चारों नामोंका निरूपण (ऐसानाम निरंजनहोय) इस पंक्तीके व्याख्यानमें निर्णीतहै तिसका अनुसन्धान करलेना॥ जो कोई इतना वडाऊंचा होता है सो तिस ऊंचेको जानता है तात्पर्य यह है तिस ऊंचे

को जानेविना इतनाऊंचा होता नहीं इस वास्ते जितना बड़ा (आप) परमेश्वर है उतनो व्यापक (आपि) अन्तःकरण में (आपि) अपने साक्षिस्वरूप आत्माको (जाणै) अनुभव करे श्रीगुरुजी कहते हैं जिसको (नदरी) गुरुकी (करमी) जगतरूप कर्म्मवाले परमेश्वर की कृपासे साधन सामग्री की प्राप्तिरूप दात होती है सो तुरीय वस्तु को अनुभव करता है॥ इस कथन से ईश्वरगुरु तथा अपनी सावधानता रूप आत्मकृपा ज्ञान की प्राप्तिमें पुष्कल सामग्री बोधनकरी जाननी २४ हे गुरो पूर्व सोपान में परमेश्वरको आपने करमीनाम से कहा है तब तिसके कर्मका निरूपण करिये और तिसकी दातका स्वरूप निरूपण करना योग्य है क्या उसकी दात जीव के संसार की निवर्त्तकही है अथवा संसार में भ्रमण का हेतुभी तिसकी दातहै इस प्रकारकी जिज्ञासा से उत्तर सोपान का आरम्भ करते हैं ॥ **बहुताकर्म्म लिखियानजाय । वडादातातिलनतमाय ॥**
हे शिष्य तिसका जो जगत रूप कर्म्म है सो सृष्टियोंको अनन्त होने से लिखा नहीं जाता क्योंकि एक ब्रह्माण्ड की रचनाही विशेष करके अचिन्त्य है और परमेश्वर के संकल्पमें कोटानकोट ब्रह्माण्डहै कहांतक निरूपणकरिये

इसवास्ते लिखे नहीं जाते। और सो परमात्मा सर्व से वड़ादाता है क्योंकि हिरण्यगर्भ आदिकनको भी सर्व विद्याओं की शिरोमणि वेदविद्याको देता है इतना वड़ा दानदेकरभी (तिल) किञ्चिन्मात्रभी (तमायत्त) इच्छा नहीं करता क्योंकि अपूर्णकामको देकर इच्छा होती है। और परमेश्वर पूरणकाम है तिसको इच्छाका लेशभी नहीं है॥ अब जो परमेश्वरकी सर्वप्रकारकी दातहै तिसको किसी२ कार्यका नाम लेकर निरूपणकरतेहैं॥ **केतेमंगहिजोधअपार। केतियागणतनहीबीचार। केतेखपतुटहिवेकार॥** जोधनाम तपका है याते (केते) अनेक पुरुष अपार तप करके सकाम होने से तिसके फलको मांगते हैं और परमात्मा देता है और जिनकी गणत नहीं ऐसे कितनेही निष्काम धर्मकरके विचार को मांगते हैं और परमेश्वर उनको विचार की दात करता है और (केते) अनेकही रजोगुण तथा तमोगुण से युक्त पुरुष विषयों में (खप) खचित होकर (वेकार) मरणरूप विकार को प्राप्तहुए (तुटहि) एक शरीर को छोड़कर दूसर शरीरको प्राप्त होते हैं जैसे जैसे जीवन के कर्म्महैं तैसे २ फलकी दात परमेश्वर करता है॥ **केतेलैलैमुकरपाहि। केतेमूरखखाहीखाह॥**

केतियादूखभूखसदमार। इहिभिदाततेरीदा तार॥ अनेकही रजोगुण और तमोगुणकरयुक्त करज ले २ कर हमने नहीं लीना इसप्रकार (मुकरपाहि) फिर जाते हैं अनेक (मूरख) व्यवहार परमार्थ ज्ञानसे रहित जीव (खाहीखाह) विषय भोगकोही परमपुरुषार्थ मानते हैं अनेक जीवनको (दूख) मनमें दुःख होताहै प्राणों में भूख पियास होती है और (सदमार) बालकपन में माता पिताकी ताड़ना तरुणपन में चोरी आदिकर राजा की ताड़ना और वृद्ध अवस्था में पुत्रआदिक की झि-ड़कना रूपी ताड़ना और मरण काल में यमकी ताड़ना हे दातार यह भी आपकी दात है॥ तात्पर्य्य यह है शुभफलवत् अशुभफलभी जीवनको कर्म्मानुसार हे भ-गवन् आपसेही मिले हैं॥ इसी वास्ते श्रुति में लिखा है॥

यथाकारीयथाचारीतथाभवतिसाधुकारी सा धुर्भवतिपापकारी पापोभवति पुण्यः पुण्येन कर्म्मणा भवति पापः पापेन॥ बृह० उप० अ० ६ ब्रा० ४॥ अर्थ॥ जैसे कर्त्तव्य और जैसे आचारकरके युक्तहोताहै तैसाही होता है श्रेष्ठ कर्म्म करने वाला श्रेष्ठ होता है और पापकर्म्म करनेवाला पाप

योनिको प्राप्त होता है क्योंकि पुण्यकर्म्मकरके पवित्र योनिको प्राप्त होता है और पापकर्म्म करके पापात्मा होता है॥ हे गुरो संसार बन्धकी निवृत्तिका जो उपाय है तिसका निरूपण करो इसप्रकारकी शिष्यकी जिज्ञासा से कहते हैं॥ **बन्धखलासीभाणैहोय। होर आखनसकैकोय॥ जेकोखायकुआखणपाहि। ओहुजाणैजेतीयामुहिखाय॥** हे शिष्य (बन्धखलासी) जो बन्धकी निवृत्ति है सो केवल (भाणैहोय) स्वस्वरूपभूत ब्रह्म के भान होने से होती है (होर) तिससे भिन्न कर्म्म को अथवा देवता ध्यान को कोई भी नहीं कहसकता जेकर कोई ज्ञानसे भिन्नको बन्धका निवर्त्तक (खाय) स्वीकार करे तब सो पुरुष (कुआखण) कुत्सित कथनको (पाहि) प्राप्तहोवेगा अर्थात् तिसके कथनको युक्ति प्रमाणहीन होनेसे खोटा कहेंगे और (जेतीयामुहि) जितनीयां मुखपर सत्पुरुषों कर कथित तर्कों को (खाय) अंगीकार करेगा उनको (ओहुजाणै) सोई जाणैगा दूसरा नहीं जाणेगा। तात्पर्य यह है बन्धनिवृत्ति का कारण केवल ज्ञान है दूसरा नहीं। क्योंकि आरोपित बन्धकी निवृत्ति अधिष्ठान के साक्षात्कार से होतीहै प्रकारान्तरसे होती नहीं॥ जैसे प्र-

काशसेही तमकी निवृत्तिहोती है अनन्तही दूसरेउपाय सेवनकरिये परन्तु विना प्रकाशसे तमकी निवृत्ति होती नहीं। तैसे ज्ञानरूप प्रकाशसेही आरोपित बन्धरूप तम की निवृत्तिहोती है॥ ज्ञानसे ही बन्धकी निवृत्तिहोती है इस अर्थ के बोधक स्मृति वचनभी हैं॥ तथाहि॥ कर्म्मणाबध्यतेजन्तुर्विद्ययाचविमुच्यते। तस्मात्कर्म्मनकुर्व्वन्तियतयःपारदर्शिनः १ अज्ञानमलपूर्णत्वात् पुराणोमलिनःस्मृतः। तत्तत्क्षयाद्भवेन्मुक्तिर्नान्यथाकर्मकोटिभिः २॥ अर्थ॥ कर्म्म करके जीव बन्धन को प्राप्त होता है और विद्याकरके विमुक्त होता है इसीवास्ते संसार से पर पार-ब्रह्मके देखनेवाले यत्नशील पुरुष कर्म्म नहींकरते क्योंकि अज्ञानमल से पूर्णहोने से (पुराण) परमात्मा मलिन चिन्तन करा जाता है और तिस अज्ञान मलके नाशसे मुक्तिहोती है और प्रकार से चाहे कोटानकोट कर्म्म करें मुक्ति होती नहीं। तात्पर्य यह है अज्ञान और ज्ञानकाही परस्पर विरोध है कर्म्मोंसे अज्ञानका विरोधही नहीं इस वास्ते केवल ज्ञानसे अज्ञानरूप बन्धकी निवृत्ति होती है। इसीसे गुरुजी ने (होरआखनसकैकोय) इसप्रकार से बन्धका निवर्त्तक जो ज्ञान तिससे भिन्न साधन का

निषेध करा है ॥ हे भगवन् जिस ज्ञानसे बन्धकी निवृत्ति होती है सो ज्ञान गुरु कैसे शिष्य को देते हैं इस शंकासे कहते हैं ॥ **आपेजाणैआपेदेइ । आखहिसिभिकेईकेइ ॥ जिसनोबखसेसिफतिसालाह । नानकपातिसाहीपातिसाहु २५ ॥** हे शिष्य सो ज्ञानीपुरुष (आपेजाणै) गुरुकी शरणहोकर अपने स्वरूपभूत साक्षिको सर्व का अधिष्ठान ब्रह्मरूप जानते हैं और इसीप्रकार (आपेदेइ) अपने आपको शिष्य के प्रति देते हैं तात्पर्य यह है जिस प्रकार उन्होंने गुरोंकी शरणलेकर स्वरूप का अनुभवकराहै तिसी प्रकार अपने शिष्यको अनुभव कराते हैं जब अपने आपको अनुभव कराते हैं तब अपने आपके देनेवाले कहाते हैं परन्तु जो इसप्रकार अपने आपको शिष्यके प्रति (आखहि) कथनकरके समर्पण करते हैं (सिभिकेईकेइ) सोभी कोई कोई हैं अर्थात् बहुत विरले दुर्लभ हैं इसीको स्पष्ट करते हैं। जिस किसीको (सिफति) सिफतों से (सालाह) सलाहन योग्य ज्ञान (बखसे) देते हैं श्री गुरुजी कहते हैं सो पातसाहों का भी पातसाह है। तात्पर्य यह है ब्रह्मरूप से सर्व का अधिपति है ॥ अब इस अर्थ में प्रमाण का निरूपण करते हैं ॥ **मनुष्या**

णांसहस्रेषुकश्चिद्यततिसिद्धये ॥ यततामपि सिद्धानांकश्चिन्मांवेत्तितत्त्वतः ॥ गी० अ० ७ श्लो० ३ ॥ अर्थ ॥ सहस्रेषु अनन्त मनुष्योंके मध्य कोई एक मनुष्य चित्तशुद्धिद्वारा ज्ञानकी उत्पत्ति वास्ते यत्न करता है और यत्न करनेवाले साधकों के मध्य कोई विरलाही (तत्त्वतः) अपने साक्षीरूप आत्मा को ब्रह्मरूप जानता है ॥ सवाएषमहानजआत्मा योऽयंविज्ञानमयःप्राणेषुयएषोऽन्तर्हृदयआकाशस्तस्मिञ्छेते सर्वस्यवशीसर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः सनसाधुनाकर्म्मणाभूयान्नो एवासाधुनाकनीयान् एषसर्वेश्वरएषभूताधिपतिरेषभूतपालः॥ बृह०उप०अ० ६ब्रा०४॥ अर्थ ॥ सो यह आत्मा महान् और अज है जो प्राणों के मध्य में यह बुद्धि उपाधिक है जो यह अन्तर हृदय आकाश है तिसमें शयन करता है सो वास्तव से सर्व का वश करनेवाला है और सर्व का (ईशान) नियन्ता है और सर्वका अधिपति है तथा साधुकर्म करके बड़ा नहीं होता और असाधु कर्म से छोटा नहीं होता यह सर्व का ईश्वर है और यहही भूतन का अधिपति है और

यहही भूतन का पालक है ॥ तात्पर्य यहहै ज्ञान के होने से इसप्रकार से आत्मा को ब्रह्मभावकी प्राप्ति होती है ॥ इसीवास्ते गुरुजी कहते हैं। जिसनो बखसे सिफति सालाह। नानकपातसाही पातसाहु २५ अब जिस ज्ञान के प्रभाव से विद्वान् राजराजेश्वर कहाता है तिस ज्ञान को तथा ज्ञानकी जनक सामग्रीको तथा तिस ज्ञान के फल को और तिसके विषय को अपूर्वतारूप अमोलकता कहते हैं॥ **अमुलगुणअमुलवापार। अमुलवापारीयेअमुलभण्डार॥ अमुलआवहि अमुललैजाहि। अमुलभायअमुलासमाह॥ अमुलधरमअमुलदीबाण। अमुलतुलअमुलपरवाण॥** हे शिष्य जो पूर्वउक्त ब्रह्मज्ञान अन्तःकरण की वृत्तिस्वरूप कहा है सो गुण नाम से कहा जाता है इस से वह गुण (अमुल) अमोलक है अर्थात् अत्यन्त अपूर्व है क्योंकि सो वृत्तिज्ञान अपने आप मिथ्या भी है परन्तु सत्य वस्तु का बोधक है और अविद्या का कार्य्य हुआ भी अविद्या का नाशक है और अविद्या का नाशक हुआ भी अविद्या का कार्य्य होने से अपने आप को भी नाश करता है जैसे कतकरज जलके मलको निवृत्त करती हुई अपने आपको

भी निवृत्त करदेती है। इसवास्ते सो ज्ञान अपूर्व है और वापार नाम ज्ञानके जनक गुरु उपदेश का और शिष्य के श्रवण का है सो दोनोंप्रकारका व्यापार (अमुल) अत्यन्त अपूर्व है क्योंकि गुरुका कथनरूप उपदेश अवाच्य वस्तुका कथनहै इस वास्ते अपूर्व है इसीप्रकार जाति गुण क्रिया वर्जित का जो श्रवण है सो भी अमोलक है। और (वापारीये) कथन तथा श्रवणरूप व्यापार वाले वक्ता और श्रोता भी (अमुल) अत्यन्त अपूर्वहैं, क्योंकि सो विद्वान् ब्रह्मका वक्ता अविद्या रहित भी प्रारब्ध कर्म्म की विचित्रता से अविद्यायुक्त अज्ञवत् सर्व क्रिया का कर्त्ता प्रतीत होता है और दुर्लभ होने से श्रवणरूप व्यापारवाला भी अत्यन्त अपूर्व है इसीवास्ते श्रीभगवान् ने सहस्र मनुष्यों के मध्य में बिरलाही ज्ञान की प्राप्तिवास्ते यत्न करता है यह कहाहै और (भंडार) ज्ञान के रहने का स्थान जो अन्तःकरणहै सो भी (अमुल) अत्यन्त अपूर्व है, क्योंकि निर्वासन वैराग्यादि सम्पन्न संशय विपर्य्यय रहित अन्तःकरण दुर्लभ है इस से अमोलक है और जो गुरुकी शरण में आते हैं वह भी (अमुल) अपूर्व हैं इससे (अमुल) अपूर्व वस्तु रूप ज्ञान को लेजाते हैं और जो ज्ञानरूप वृत्ति से नि-

रावरण ब्रह्मभान होताहै सो भाय है इससे तिस अत्यन्त अपूर्व वस्तु में जो विद्वानों का (समाह), जल में जलवत् समाना है सो भी सर्व दुःख वर्जित होने से अत्यन्त अपूर्व है और जो चित्तकी शुद्धिद्वारा ज्ञान का जनक धर्म है सो भी दुःसम्पाद्य होने से अपूर्व है और जो निष्काम धर्म के विचार करने की विद्वज्जनों की सभारूप दीवाण है सो, भी (अमुल) अपूर्व है क्योंकि जिससे उन सत्पुरुषों की (तुल) तुल्यता परस्पर वि-वाद से रहित होना (अमुल) अपूर्व है और (परवाण) निष्काम धर्मका बोधक जो प्रमाण है सो भी (अमुल) अमोलक है, प्रमाण के अपूर्व होने से तुल्यता की अ-पूर्वता और तुल्यता के अपूर्व होने से सभा की अपूर्व-ता जाननी, इसवास्ते पूर्व २ की सिद्धि में उत्तर २ हेतु हैं॥ अमुलवखसीस अमुलनीसाण। अमु लकरमअमुलफुरमाण॥ अमुलोअमुलआ खियानजाय। आखआखरहेलिवलाय॥

हे शिष्य निष्काम धर्म का प्रमाण से निश्चय करके जव पुरुष सेवन करता है तव परमात्मा की करीहुई जो चित्तशुद्धिरूपी वखसीस है सो भी (अमुल) वहुत अपूर्व है क्योंकि वहुत से पुरुष प्रतिवन्धों की वहुलता

से चित्त शुद्धिको नहीं प्राप्तहोते और जो चित्तकी शुद्धि का (नीसाण) चिह्नहै सो भी अपूर्व है क्योंकि जब नित्यानित्य विवेक अत्यन्त दृढ़ होता है तब चित्तशुद्धि जानीजाती है सो विवेक स्वसंवेद्य होनेसे अत्यन्त अपूर्व है और शुद्धचित्त करके जो (करम) कर्तव्य श्रवण मननादि हैं वहभी अपूर्व हैं और जो श्रवणआदिकों की कर्तव्यता बोधक (फुरमाण) वेद वचनहैं वह भी अपूर्व हैं क्योंकि द्रव्य आदिकों की कामना के त्याग से विना अप्राप्य होने से जैसे बृहदारण्यक के चतुर्थ अध्याय में याज्ञवल्क्य ऋषि ने सर्वथा द्रव्य की कामना रहित और आत्मा की कामना सहित अपनी मैत्रेयी स्त्री को जानकर श्रवण आदिकों का उपदेश करा है ॥ तहां यह प्रसंग है जब याज्ञवल्क्य ऋषि ने गृहस्थआश्रम का त्याग करनेका विचारकरा तब अपनी बड़ी मैत्रेयी स्त्री से कहा जो कि हे मैत्रेयि मैं इस गृहस्थआश्रम से दूसरे संन्यास आश्रम को जानेकी इच्छा करता हूं और मेरा यह सङ्कल्पहै जो कि तेरा इस कात्यायनी से धनका विभाग करदेवों क्योंकि मेरे पीछे तुम्हारा दोनों का विवाद न होवे जब इसप्रकार याज्ञवल्क्य ने कहा तब मैत्रेयी ने कहा हे भगवन् जेकर

यह सर्वही पृथिवी वित्त करके परिपूर्ण मेरे पास होवेगी तब मैं इस करके क्या अमृतत्वरूप मोक्षको प्राप्त होऊंगी अथवा न होऊंगी फिर याज्ञवल्क्य ने कहा जैसे भोगकी सामग्री से सम्पन्न पुरुषों का जीवन होताहै तैसे तेराभी सुख पूर्वक जीवन होवेगा और अमृतत्वकीतो वित्त करके आशा नहीं है॥ तब मैत्रेयी ने कहा जब इस वित्त से अ-मृतत्व की प्राप्ति नहीं तो मैं इस धनकोक्याकरों जो आप अमृतत्वकी प्राप्तिका साधन जानतेहो सोई मेरेको कहो तब याज्ञवल्क्यने श्रवण मनन तथा निदिध्यासनके बोधक वेदवचन को कहा है और तिस वेदवचन को लिखकर तिसका व्याख्यान भी (नानकएवै जाणीयै सभआपे सचियार) इस पंक्तिके व्याख्यानमें लिखाहै जानलेना॥ हे शिष्य पूर्व उक्तप्रकार से जिस परमेश्वर के ज्ञान के साधन अत्यन्त अपूर्व है तिन अपूर्वों से भी परमात्मा अत्यन्त अपूर्व है इदंता से नहीं कहाजाता किन्तु सर्वा-धिष्ठान सर्वका नियंता और सर्वका प्रकाशक अपने में आरोपित सर्व स्वरूप रूपसे कथन कराजाता है इस प्रकार कथनकर २ बहुत से महात्माजन तिसमें (लिव) चित्तकी वृत्ति प्रवाहको लगायरहे हैं तात्पर्य यह है संसार को असार जानकर सहज समाधि में स्थितहोकर

विक्षेप शून्य होगये हैं॥ हे भगवन् इसप्रकार जिसमें विद्वान् लोकोंकी स्थिति है और शरणप्राप्त जिज्ञासु जनों को जिसका उपदेश करते हैं तिसमें प्रमाण क्या है इस शंकाके होनेपर कहते हैं॥ आखहिवेदपाठपुराण। आखहिपडेकरहिवखियाण। आखहि बरमेआखहिइंद। आखहिगोपीतैगोविन्द। आखहिईसर आखहिसिद्ध॥ उस परमात्मा को (वेदपाठ) उपनिषद्विद्या और पुराण यह सर्वही कथन करते हैं और जो वेदको पठनकर तिनके व्याख्यान करते हैं वह सर्वही अपने इतिहास स्मृति आदिक ग्रंथन से परमतत्त्व को कथन करतेहैं और ब्रह्माण्डों के स्वामी जो अनेक (बरमे) ब्रह्माहैं वह सर्वही अपने २ शिष्यों के प्रति कथनकरते हैं और इसी प्रकार इन्द्र भी कथन करते हैं और (गोपीतै) गोपन की कन्यायों के प्रति गोविन्द भी परमतत्त्व को कथन करते हैं और (ईसर) शिवजी भगवती पारवती के प्रति परमतत्त्वको कथन करते हैं इसी प्रकार कपिलआदिक सिद्ध भी देवहूति अपनी माताके प्रति तथा अन्य शिष्यों के प्रति परमात्माको कथन करते हैं॥ आखहिकेतेकीतेबुद्ध।

आखहिदानवआखहिदेव । आखहिसुरनर मुनिजनसेव ॥ और जिन ज्ञानी पुरुषों ने (केते) कितनेही (कीते) करे हैं (बुद्ध) विवेकयुक्त वह भी परमात्मा को कथन करते हैं और दानव जो प्रह्लादादिकहैं और सूर्य चन्द्र आदिक देवता और (सुर नर) किन्नर जो देवता विशेष हैं अर्थात् किन्नर उसको कहते हैं जिसका अश्वका मुख और नरवत् शरीर है अथवा नरकामुख है और अश्वका शरीर है और (मुनि) मननशील पुरुष और (जन) चारोंवर्णों के मनुष्य परन्तु यह सर्वही तिस परमतत्त्व को ध्यानादिकन से सेवन करके कथन करते हैं॥इसीवास्ते श्रुति में देवता ऋषि तथा मनुष्योंको सर्वात्मभावकी प्राप्ति ब्रह्मबोधसे लिखीहै॥ तथाहि ॥ तद्योयोदेवानांप्रत्यबुध्यतसएवतदभवत्तथा ऋषीणांतथामनुष्याणाम्। बृह० उप० अ० ३ का० १० ब्रा० ४॥ अर्थ ॥ जो जो देवता तथा ऋषि और मनुष्य इनके मध्यमें तिस परमतत्त्वको जानता हुआ सो सो सर्वात्मभाव को प्राप्तहोता भया॥ केतेआखहिआखणिपाहि । केतेकहि कहिउठिउठिजाहि॥ एतेकीतेहोरिकरेहि।

ताआखनसकहिकेईकेइ ॥ जेवडभावैतेवड होय। नानकजाणैसाचासोय ॥ जेकोआखै बोलविगाड। तालिखियैसिरगावारागावार २६॥ हे शिष्य (केते) वहुत से विद्वान् (आखहि) तिस ब्रह्मको जिज्ञासुजनोंके प्रति कथन करते हैं और (आखणिपाहि) पुनः पुनः कथन मेंही पड़े रहते हैं और कितनेही कथन कर २ के तिसमें विक्षेपमानकर तिस उपदेश करने को त्याग करके चलेजाते हैं परन्तु जो परमात्मा के उपदेश को करते हैं वह नियम से लक्षणासे कथन करते हैं क्योंकि जेकर (एते) पृथिवी आदिक तत्त्व परमेश्वर के कठिनादि स्वभाव से करेहुये (होरिकरेहि) अन्यथा कोमल आदि स्वभाववाले कर देवे तव भी (केईकेइ) कोई भी गुणक्रिया जाति रहित का शक्तिवृत्ति से नहीं कथन करसक्ता इसवास्ते गुरुउपदिष्ट आत्मतत्त्व को जितना वड़ा भावना करे तितना वड़ा सो पुरुष आप होताहै क्योंकि श्रीगुरुजी कहते हैं (सोय) सो अधिकारी पुरुष अपने आपको (साचाजाणै) सतरूप परमात्मा जानता है और जो पुरुष अभेदबोधक (वोल) वचन को (विगाड़) किसीतरह

खैंचसे नाश करके अन्यथा कथन करे तब उसको गं- वारांके मध्य (सिर) शिरोमणी (गंवार) मूरख लिखना योग्यहै तात्पर्य यहहै बहुत से श्रुति के तात्पर्य को न जानकर (तत्त्वमसि) इत्यादि अभेदबोधक वाक्यों में तस्यत्वं अर्थात् तिस परमेश्वर का तू दास है इत्यादि प्रकार से भेदको सिद्ध करते हैं परन्तु उनका कथन श्रुति के अज्ञानमूलक है क्योंकि श्रुतिके पूर्वापर के देखने से तिसमें अखण्ड चैतन्य की प्रतीति होतीहै॥ तथाहि॥

एतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो॥ छा० उप० अ० ६॥

अर्थ॥ यह जो स्पष्टनामरूप स्वरूप प्रपंच है सो (एत दात्म्यम्) सर्व जगतका जो सद्ब्रह्मरूप आत्माहै तिस से अभिन्नहै जैसे जलमें कल्पित बरफ़ककर आदिकजल से अभिन्न है तैसे सतरूप ब्रह्ममें आरोपित नामरूप प्रपंच ब्रह्मस्वरूपहै और सो सतवस्तु सत्य अर्थात् नाश वर्जित अविनाशीहै और सोई सर्वजगतका अन्तरात्मा है तात्पर्य यह है जो समष्टि व्यष्टिरूप पिण्डब्रह्माण्ड है तिस सर्वका अन्तरात्मा सद्ब्रह्म है और हे श्वेतकेतो सोई तू है॥ अब इस स्थानमें यह विचारणीयहै जेकर तत्त्वमसि इस वाक्य में भेदकी प्रतीतिवास्ते (तस्यत्वम्) इत्यादि

कुत्सित कल्पना करेंगे तब (सआतमा) इस वाक्यका अर्थ भेद में सर्वथा असङ्गत होगा क्योंकि इस वाक्य में समासकी गन्ध भी नहीं और सर्वजगत् का अन्तरात्मा जो समष्टि व्यष्टिजीवहैं तिनका सद्ब्रह्मसे अत्यन्त अभेद बोधन कराहै सो भेदवादमें असंगत होवेगा। इस वास्ते जो अभेदके बोधक वाक्यों में कुत्सित कल्पना करता है सो महामूरख जानना योग्य है और जो महावाक्यों में आधुनिक बाह्यमुखी दयानन्द की कल्पना है सो सत्यार्थ विवेक के द्वितीय प्रकरण में विस्तारसे निरस्त है इच्छाहोवे देखलेना॥ प्रकरण में इसदुष्ट कल्पना करने वालेकोही। सिरगाधारांगावार रूप से गुरुजी ने लिखा है २६॥ पूर्वोक्त प्रकार से ज्ञेयका स्वरूप निर्णयकरा है अब जो उपासक पुरुषों करके ध्यानकरने को योग्य साकार सगुणब्रह्महै तिसका निरूपण करनेवास्ते शिष्य का प्रश्न दिखाते हैं॥ सोदरकेहासोघरकेहाजि तबहसर्वसमाले॥ हे भगवन् जब आप सत्यलोक में विद्यासंप्रदायकी प्रवृत्ति के वास्ते परब्रह्म के पासगये थे तिस परब्रह्मका सो (दर) द्वार (केहा) कैसा है और तिसका (सोघर) सभास्थान कैसा है (जितबह) जिस स्थान में बैठकर (सर्वसमाले) सर्व जीवनको स्मरणकर

तिनकी पालना करताहै ॥ इसप्रश्नका उत्तर लिखते हैं ॥ **वाजेनादअनेकअसंखाकेतेवावणहारे ॥** वाजे अनेक नाद असंखा इसप्रकारका अन्वयकरना । उस परब्रह्मकेद्वार में अनेक विलक्षण से विलक्षण बाजे हैं और उनके नाद नाम ध्वनिभी (असंख) संख्या से रहित अनंत हैं और (केते) कितनेही अर्थात् अनंतही (वावणहारे) बजानेवाले हैं तात्पर्य्य यह है तिसकेद्वारका ऐश्वर्य्य सबसे उत्तम है ॥ इसरीति से तिसके द्वारका अद्भुत ऐश्वर्य निरूपण करके अब तिसकी सभाका ऐश्वर्य दिखाते हैं ॥ **केतेरागपरीसिउकहीअन केतेगावणहारे । गावहितुहनोपउणपाणीबैसंतरगावैराजाधर्मदुआरे । गावहिचितगुप्तलिखजाणहिलिखलिखधर्मवीचारे ॥** (परीसिउ) रागणी के सहित (केतेराग) अनंतराग उस सभामें (कहीअन) कथनकरे जाते हैं और (केते) अनंतही उन भैरवादि रागन के गावणहारे हैं और (तुहनो) तिस परब्रह्म के वायु तथा जल और अग्नि के अधिष्ठातृ देवते गुणोंको गातेहैं और धर्म के द्वारका राजाधर्मराजभी तिसके गुणोंको गायन करता है और जो योगबल से जीवन के अदृष्टों को लिखने को जान

नेवाला चित्रगुप्त है सोभी परमात्मा के गुणोंको गायन करता है और सो चित्रगुप्त पुनः पुनः लिखकर धर्मोंका धर्मराज के सामने विचार करताहै॥ गावहिईसरबरमादेवीसोहनसदासवारे। गावहिइन्दइन्दासणवैठेदेवतियादरनाले। गावहिसिद्धसमाधिअन्दरगावनसाधवीचारे॥ शिव और ब्रह्मा और (देवी) इनकी शक्ति जोकि सदा परमात्मा के (सवारे) तिस तिस ऐश्वर्य में स्थापन करेहुए शोभते हैं सो सर्वही परमात्मा के गुणों को गायन करते हैं और देवन के (दर) दलके सहित अपने इन्द्रासनपर बैठकर अनेक इन्द्र परमात्मा के गुणोंको गायन करते हैं और सिद्धपुरुष समाधि में स्थितहुए परमात्मा को गायन करते हैं और (साध) साधनचतुष्टय संपन्नपुरुष विचार करतेहुए परमात्मा को गायन करते हैं॥ गावनजतीसतीसंतोषीगावहिवीरकरारे। गावनपंडितपडनारिषीसर जुगजुगवेदानाले। गावहिमोहणीयामनमोहनिसुरगामछपइयाले। गावनरतनउपायेतेरेअठसठतीर्थनाले। गावहिजोधमहाबलसूरागावहिखाणीचारे। गावहिखंड

मंडलवरभंडाकरकररखेधारे॥ जो संतोष को धारण करके (सती) सद्रूपब्रह्म के ज्ञाता (जती) संन्यासी हैं वह भी परमात्मा को गायन करते हैं और जो करारे अत्यन्त तीव्र भैरवआदिक वीरहैं वह भी परमेश्वर को गायनकरते हैं और शास्त्रन के पठन करनेवाले जो पण्डित हैं और (जुगजुग) चार वेदन के साथ वर्त्तमान जो ऋपीश्वर हैं वह भी परमेश्वरको गाते हैं और जो सर्व के मनको मोहनकरनेवाली मोहणी स्त्री हैं वह भी परमेश्वर के गुणोंको गाती हैं और स्वर्ग (मछ) मनुष्य लोक (पइयाल) पाताल इनके अधिष्ठातृ देवता भी परमेश्वर के गुणों को गाते हैं अथवा जो इन स्वर्गादि लोकन को मोहन करनेवाली मोहणी हैं वह परमात्मा के गुणोंको गाती हैं और (अठसठ) मुख्य तीर्थन के सहित जो हे शिष्य आपके इष्टदेवके पैदाकरेहुए (रत्न) मुख्यपदार्थ सर्व जातिमें वर्त्तमान हैं वह सर्वही परमात्माको गायन करते हैं और जो बलसे अत्यन्त शूर महायोद्धा हैं और चारखाणी और नवखंड (मंडल) द्वीप (वरभंडा) ब्रह्माण्ड इनके अधिष्ठातृ देवते जो परमात्मा ने उत्पन्न कर करके धारन करे हैं वह सर्वही परमेश्वर के गुणोंको गायन करते हैं॥ इस स्थान

में मुख्य तीर्थ आदिकों से परमेश्वरका गायन करना यद्यपि उनको जड़ होने से असम्भव है तथापि गुरु जीका उनके अधिष्ठातृ देवनके बोध में तात्पर्य है इसी वास्ते (चन्दसूर्य्यजाकेतपतरसोई बैसंतर जाकेकपरेधोई) इस वचन में अधिष्ठातृ देवताओं को रावणकी अधीनता लिखी है जेकर चन्द्र सूर्य तथा अग्निका स्वरूपही उसकी कैद में मानेंगे तब चन्द्र सूर्य का सर्वलोक में प्रकाशका अभाव होना चाहिये और अग्नि से वस्त्रोंका धोनाही असंभव होवेगा और देवता- ओं के पंच २ स्वरूप बोधन करे हैं ॥ तथाहि ॥ विग्रहो हविषांभोगऐश्वर्य्यंचप्रसन्नता । फलप्रदान मित्येतत्पञ्चकंविग्रहादिकम् ॥ अर्थ ॥ विग्रह १ और आहुतियों का भोग २ ऐश्वर्य अर्थात् प्रेरणाशक्ति ३ प्रसन्नता ४ फलप्रदान अर्थात् भक्तजनोंको फल देनेवाला स्वरूप ५ तात्पर्य यह है देवनके अपने २ स्थानमें स्थित स्वरूपको विग्रह कहते हैं और कोई स्वरूप हविके भोगने वास्तेहै और कोईस्वरूप प्रेरणाशक्ति युक्तहै और कोईस्व- रूप अपने भोगनमें प्रसन्नता युक्तहै और कोई स्वरूप फल के देने वास्ते फलही देताहै इस रीतिसे एक एक देवता

पांच २ स्वरूप है ॥ और वास्तव से देवनको अनेक रूपके बनाने की सामर्थ्य है इस वास्ते अपने २ लोक में वर्त्तमान हुएही किसी स्वरूप से परब्रह्मकी सभामें भी गाते हैं. इसी वास्ते इस ग्रन्थकी भूमिका में निर्णीत सारङ्ग अष्टपदी में, अनिक ब्रह्मे जाके बेद धुनि करहि। अनिक महेश बैस ध्यान धरहि ॥ अनिक पुरुष अंशा अवतार। अनिक इन्द्रऊ भे दरबारि ॥ इत्यादि प्रकार से परब्रह्म की विभूति का निरूपण कराहै ॥ **सेईतुधनो गावहिजोतुध भावनरतेतेरेभक्तरसाले। होर केतेगावनसेमैंचित्तनग्रावनिनानकुकियावी चारे** ॥ पूर्व अनेक प्रकार के गानेवाले निरूपण करे परंतु हे भगवन् जो भक्तजन (रसाले) भक्ति रसके स्थानहैं और आपके गुणानुवाद में (रते) रँगेहुये हैं सोई आपको गाते हैं जो आपके स्वरूपकी (भावन) भावना करते हैं इनसे विना और कितने गाते हैं सो मेरे चिन्तनमें नहीं आते और जेकर चिन्तन करें तबभी हम नानक कहते हैं कितना विचार करें क्योंकि परमात्मा की विभूतिका अन्त नहीं आता ॥ इसी वास्ते गीता में परमेश्वर की विभूति को अनंतता निरूपण कराहै ॥ तथाहि ॥ **नान्तोस्तिममदिव्यानांवि**

भूतीनांपरन्तप । एषतूद्देशतः प्रोक्तो विभूते विंस्तरोमया ॥ गी० अ० १० । श्लो० ४० ॥
हे परन्तप अर्जुन मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं यह तो (उद्देशतः) एकदेश करके मैंने विभूति का विस्तार कहाहै ॥ हे भगवन् जिसके दरका तथा घरका आपने निरूपणकराहै सो आप एकदेशी होकर विनाश को प्राप्त होनेवाला भजन करने को योग्य ईश्वर स्वरूप सर्व शिव ब्रह्मा आदिकों करके उपासनीय कैसे होसक्ता है क्योंकि यह नियम है जो एकदेश में वर्त्तमान क्रिया से प्राप्य होताहै सो विनाशी अवश्य होताहै इसी वास्ते सो निरूपण करने को योग्य नहीं इस शंका से कहतेहैं ॥

सोईसोईसदासचसाहिब साचासाचीनाई । हैभीहोसीजायनजासी रचनाजिनिरचाई । रंगीरंगीभातीकरकर जिनसीमायाजिनिउपाई ॥ हे शिष्य जो सर्व कालमें सत्यरूप और सत्यनामों के सहित साचा साहिब है (सोईसोई) जो हमने निरूपण कराहै सो तिसी का स्वरूप है तात्पर्य्य यह है सर्व व्यापी परमात्मा का अपनी इच्छा से भक्तजनोंपर अनुग्रह वास्ते एकदेश में अवस्थानहै परन्तु सोभी प्रतीति

मात्र हैं वास्तवसे सो सर्वव्यापी है, और जो (है) वर्त्तमान कालका प्रपंच (भी) भूतकालका प्रपंच (होसी) भविष्यत् कालका प्रपंच यह सर्वही (जाय) उत्पन्न होताहै और (नजासी) नहीं उत्पन्न होता जिसने अनन्त प्रकारके रंगों से भांति भांतिकी रचना रची है और मायाशब्द इन्द्रजाल का वाचकहै याते इन्द्रजालवत् मिथ्याभूत सृष्टि अनेक प्रकारकी पुनः पुनः करके महत्तत्त्व अहंकार पंचभूत रूप जिनसोसे (उपाई) उत्पन्न करी है॥ एकही परमेश्वर अपने अनेक प्रकार के रूपों को प्रकट करताहै यह श्रुति में कहाहै तथाहि॥

एकोवशी सर्वभूतान्तरात्मा एकंरूपंबहुधा यःकरोति। तमात्मस्थंयेऽनुपश्यन्ति धीरा स्तेषांसुखं शाश्वतन्नेतरेषाम्॥ कठ० उप० व० ५ श्रु० १२॥ अर्थ॥ एक परमात्मा (वशी) सर्वको वशकरनेवाला सर्वभूतों का अन्तरात्मा हुआही अपने एक रूपको जो उपाधि के भेदसे बहुत प्रकार से करता है तिस अपने शरीर के अन्तर हृदयाकाश में चैतन्यरूपसे वर्तमान को जो देखते हैं वह धीर हैं और तिनको नित्यआत्मानन्दस्वरूप सुख होताहै और जो बाह्य बुद्धि हैं तिनको नित्यप्राप्त सुखभी नहीं प्राप्तहोता॥ इतने

प्रबन्ध से यह निरूपण हुआ जोकि सगुण स्वरूप तथा सर्वगुण वर्जित दोनों एकरूप हैं इसी वास्ते (निर्गुण आप सगुणभी ओही कलाधार जिनसगलीं मोही ॥ इस गुरु वचन में निर्गुण सगुण एकरूप बोधन करे हैं ॥ **करकरवेखैकीताआपणा जिवतिसदीवडियाई।जोतिसभावै सोईकरसी हुकमन करणा जाई ॥** महत्तत्त्व अहंकार आदिसृष्टिको पुनःपुनः रचना करके अपने करेहुए कार्य्य को देखता है (जिव) जैसे तिसकी (वडियाई) अपरिच्छिन्नता बनीरहे तात्पर्य्य यहहै दृश्यका भेद द्रष्टामें भेदका कारण नहीं जैसे स्वप्नकाल में प्रतीयमान दृश्यद्रष्टाका भेदकरने में समर्थ नहीं इसी प्रकार प्रतीयमान कार्य्य ईश्वर साक्षिरूप द्रष्टा के भेदका हेतुनहीं और जो तिसका संकल्प है तिसके अनुसार सोई करता है कुछ तिसपर हुक्म नहीं करा जाता जोकि सृष्टिको सुखदायक क्यों नहीं करी दुःखदायक क्यों करी ॥ **सोपातसाहुसाहापातसाहिब नानकरहणरजाई २० ॥** सो परमात्मा (पातसाहु) सर्वका स्वामी है और जो सर्वजगत् के (पातसाहा) हिरण्यगर्भ आदिक ईश्वर हैं तिनकाभी (सा-

हिन) बड़ास्वामी है श्रीगुरुजी कहते हैं तिसकी (र-
जाई) आज्ञामें अग्नि आदिक देवता (रहण) रहते
हैं । इसीवास्ते श्रुतिमें सूर्य्य आदिकों को परमात्मा का
भय दिखाया है ॥ तथाहि ॥ यदिदंकिञ्चजगत्सर्वं
प्राणएजतिनिःसृतम् । महद्भयंवज्रमुद्यतंय
एतद्विदुरमृतास्तेभवन्ति २ भयादस्याग्नि
स्तपतिभयात्तपति सूर्य्यः । भयादिन्द्रश्च
वायुश्चमृत्युर्धावतिपञ्चमः ३ ॥ क० उप०
व० ६ ॥ अर्थ ॥ जो यह सर्व प्रपंच है सो प्राण शब्द
बोध्य परमात्मा से (निःसृतं) उत्पन्न होकर । प्राण-
शब्द बोध्य परमात्मा के भय से (एजति) कांपता है
सो परमेश्वर उद्यतवज्रवत् बहुत बड़ा भयरूप है तात्पर्य
यह है जैसे वज्रयुक्त स्वामी को देखकर तिस के भृत्य
नियम से तिसकी आज्ञाका पालन करते हैं तैसे पर-
मात्माकी आज्ञा में नियम से सूर्य आदिक जगत् वर्त्त-
मान है इस से जो पुरुष इसको अपने से अभिन्न करके
जानते हैं वह मोक्षको प्राप्त होते हैं और तिसके न जाने
से सर्वज्ञ देवता अग्नि आदिक भी कांपते हैं इसवास्ते
तिस परमेश्वर के भय से अग्नि तपति है और भय से

सूर्य तापक्रिया को करता है और भय से इन्द्र तथा वायु और पंचम मृत्यु भी भय से चलताहै तात्पर्य यह है अ-ग्नि आदिकों की जो नियम से प्रवृत्ति है सो भय हेतु परमात्मा को जनाती है॥ इसवास्ते गुरुजी ने लिखा है जोकि। नानकरहुए रजाई २७॥ **दूषितोऽपिचरेद्धर्म्मंयत्रतत्राश्रमेरतः। समः सर्वेषुभूतेषुनलिङ्गंधर्मकारणम् मनु॥** अर्थ॥ (दूषित) किसी प्रकार से आरोपित दोषयुक्त पुरुषभी श्रद्धा से धर्म्म को आचरण करे जिस किसी भी आश्रम में प्रीतियुक्त होकर और सर्वभूतों में समदृष्टि युक्त होकर केवल अन्तरीव धर्मयुक्त होना उचित है क्योंकि वाह्यलिङ्ग धर्मका कार-ण नहीं॥ इस मनुस्मृति के अनुसार वाह्य चिह्नोंको निषेध करतेहुए श्रीगुरुजी अन्तर्गत धर्मों का उपदेश करते हैं॥ **मुंदासंतोषसरमपतझोलीध्यानकीकरहिविभूति। खिंथाकालकुआरीकायाजुगतिडंडापरतीति॥** हे शिष्य जो तृष्णा क्षयरूपसे निर्णीत संतोषहै सोई अन्तरीव मुद्रा धारण करनी और (सरमपत) सुखका पात्रनाम स्थान जो तुरीयहै सोई अन्तरीव झोली है सरम नाम सुखका है और पतनाम पात्रका है॥ और (ध्यान) जो तिस तुरीय चेतनका

चिन्तन है सोई विभूति है और कालके साथ जिसका विवाह नहीं हुआ सो कालकुआरी (काया) अर्थात् जो कालकृत परिच्छेद से वर्जित अखंड चैतन्य स्वरूप देह है सो (खिंथा) कंथा है अर्थात् सो ऊपर लेनेवाली गोदड़ी है और जो मनन की साधक युक्तियों की प्रतीति है सोई दंड है तात्पर्य्य यह है जैसे दण्ड से पशु आदिकों का निवारण कराजाता है तैसे युक्तिरूप दण्ड से दुराग्रहयुक्त नर पशुओंका निराकरण होता है॥

आईपंथीसगलजमाती मनिजीतैजगजीत। आदेसातिसैआदेस। आदिअनीलअनादि अनाहतिजुगजुगएकोवेस २८॥ हे शिष्य जो ज्ञानमार्गरूपपन्थवाले (आ) सर्वतरफ से (ई) प्राप्त हुए हैं वह सर्वही हमारी जमात है और उन विचारवान् पुरुषों के सम्बन्ध से जो मनको जीतना है सोई जगत् की जीत है और जो परमेश्वर सर्वका (आदि) कारण है और नीलरूपवत् जो तम है तिससे वर्जित है और (अनादि) आप दूसरे कारण से रहित है और (आहति) जो मिथ्या प्रपंच है तिससे भिन्न है और सर्व युगों में एकरूप है (तिसै) तिसका जो (आदेस) उपदेश है सोई हमारी (आदेस) नामवाली नमस्कार है॥

तात्पर्य्य यह है जैसे गोरक्षनाथ की संप्रदायवाले अपने आइपंथी नामक पंथकी जमात बांधकर जगत्को जीतना मानते हैं और आपस में आदेस आदेस करते हैं तैसे हमभी विचारशील पुरुषों से मिलकर मनको जीत कर ब्रह्मका उपदेशरूप आदेस करते हैं॥ उन बाह्य साधनों से जो अन्तरीव साधन हैं सो अत्यन्त श्रेष्ठ हैं इसी अर्थ में गुरुजीका तात्पर्य है क्योंकि अन्तरीवसाधनही कल्याण के जनक हैं २८॥ **भुगतिज्ञानदयाभण्डारणिघटघटवाजहिनाद। आपनाथनाथीसभजाकीरिधिसिद्धिअवरासाद। संजोगविजोगदुइकारचलावहिलेखेआवहिभाग। आदेसातिसैआदेसआदिअनीलअनादिअनाहतिजुगजुगएकोवेस २९॥** हे शिष्य अपने स्वरूपभूत आनन्द के अज्ञान से विषय में सुख के भ्रमसे जो विषय सुखकी तृष्णा तिसका निवर्तक होने से स्वरूप आनन्द का जो ज्ञान है सोई (भुगति) भोजन है और तिस ज्ञानरूप भोजनका सम्पादक जो दयासहित दमदान दयारूप मुख्यसाधन सोई (भण्डारणि) हमारे भण्डारा बनानेवाले हैं।और सर्वघटों में परा पश्यन्ति

मध्यमा वैखरी वाणीरूप नाद वजरहाहै इस से पृथक् जो काष्ठआदि का नाद है सो बाह्य चिह्न परमार्थका अनुपयोगी होने से ग्रहण के योग्य नहीं है ॥ और आप जो अपनास्वरूप आत्मा है सोई (नाथ) सर्वका स्वामी है क्योंकि (जाकी) जिसका सभ में (नाथी) स्वामित्व है और अन्नका तोटानहोना रूप जो ऋद्धि और जो अणिमाआदिक अष्टसिद्धि हैं तिनका (अवरा) अनात्मदर्शी पुरुषों को (साद) स्वाद होता है तृष्णा शून्य पुरुष तिनको तुच्छ मानता है हे शिष्य इष्ट पदार्थ का संयोग और अनिष्ट पदार्थका वियोग यह दोनों हमारी कारके चलानेवाले कारवारी हैं क्योंकि जो कुछ प्रारब्ध में भला बुराभाग लिखा है सो अवश्य आता है आगे की दोपंक्ति का अर्थ पूर्वउक्त जानना २६ ॥

एकामार्याजुगतिवियाईतिनचेलेपरवाण। इकसंसारीइकभण्डारीइकलाएदीवाण। जिव तिसभावैतिवैचलावैजिवहोवैफुरमाण। ओहुवेखैओहनानदरि न आवैबहुताएहुविडाण। आदेसतिसै आदेसआदिअनीलअनादिअनाहतिजुगजुगएकोवेस ३०॥ एकजो परमात्मा (मायी)

सर्वशक्तियुक्तहै सो (जुगति) फलदेने के सन्मुख जो जीवन के अदृष्टों का योगहै तिससे सो एक मायारूप परमतत्त्व (वियाई) महत्तत्त्व आदिक सृष्टिको पैदा करता भया तिस सृष्टि में ब्रह्मा विष्णु महेशरूप तीनचेले (परवाण) प्रमाण सिद्धहैं इसी वास्ते पुराण में॥ ब्रह्मविष्णुशिवाब्रह्मन्प्रधानाब्रह्मशक्तयः॥ यह लिखा है पुराण वचन का यह अर्थ है हे ब्रह्मन् ब्रह्मा और विष्णु तथा शिवरूप ब्रह्मकी प्रधान शक्तियां हैं॥ इन सर्व में एक संसार को उत्पन्न करताहै और एक पालना करता है और एक (दीवाण) सभाको लगाता है अर्थात् सर्व प्रपंच को लीन करताहै जैसे एक परमतत्त्व को (भावै) रुचता है (तिवैचलावै) तैसेही जगत्कार को चलाते हैं क्योंकि जैसा उसका (फुरमाण) फुरणाभाव आज्ञा होती है उसीप्रकार की कारवाई ब्रह्माआदिक करते हैं॥ और (एहुविडाण) यह आश्चर्यरूप परमात्मा जिस वास्ते (वहुता) सर्व से वड़ाहै इस वास्ते (ओहु) परमात्मा सर्व को वेखताहै और (ओहना) ब्रह्माआदिकों को सो परमात्मा इतनाहै इस प्रकार से नदर नहीं आता॥ इसी वास्ते सारङ्गअष्टपदी में, अपना कीया जाने आप॥ इस रीति से अपने कर्त्तव्य को आपही जानताहै यह लिखा

है तात्पर्य यहहै उस परब्रह्म के अंशावतार ब्रह्माआदिक तिसके प्रभावको नहीं जानते॥ और जैसे कनफटे योगी पार्वती को एकमायी मानते हैं इसीप्रकार हम एकमायी परमतत्त्व को मानते हैं २०॥ **आसणलोयलोयभंडार। जोकिछुपायासोएकावार॥** हे शिष्य बैठने के स्थानको आसन कहते हैं सो (लोय) प्रकाश रूप जो स्वयंज्योति आत्मा है सोई स्थितिका हेतु होने से आसन है और ज्ञानरूप भोजन के होनेकी जगह जो लोय प्रकाशरूप अन्तःकरणहै सोई भंडाराहै॥ और जो कुछ ज्ञानरूप भोजनहै सो एकवारही पायाहै पुनः पुनः तिसकी केवल दृढ़ताही होती है वारंवार प्राप्ति नहीं होती॥ क्योंकि वारंवार प्राप्ति में ज्ञातवस्तु में होने से प्रमापना नहीं होवेगा॥ **करिकरिवेखैसिरजणहार। नानकसचेकीसाचीकार। आदेसतिसै आदेस आदिअनीलअनादिअनाहतिजुगजुगएकोवेस २१॥** हे शिष्य जिनको एकवार स्वरूप ज्ञान हुआहै सो तिस स्वरूप ज्ञानसे अपने आत्मा को पुनःपुनः (सिरजणहार) परमात्मरूपता सम्पादन करके देखते हैं॥ तात्पर्य यह है अपने साक्षिस्वरूप चैतन्यको

ही जगतकी उत्पत्ति तथा स्थिति और लयकी आधारता का पुनःपुनः अनुसंधान करते हैं॥ इस अर्थकोही श्रुति बोधन करती है तथाहि॥ मय्येवसकलंजातंमयि सर्वंप्रतिष्ठितम्। मयिसर्वंलयंयातितद्ब्रह्माद्वयमस्म्यहम्॥ कैवल्य० उ० खण्ड १॥ अर्थ॥ सर्व प्रपंच मेरेस्वरूप अधिष्ठानमें से उत्पन्न हुआ है और मेरेमेंही स्थितहै और इसी प्रकार मेरे स्वरूप में लीन होताहै सो अद्वैतब्रह्म मैंहूं॥ श्रीगुरुजी कहते हैं स्वरूप ज्ञानवान सचेपुरुषकी जितनी (कार) कर्तव्य परिचर्या है सो सर्वही सांची है तात्पर्य यह है माया अनृत वर्जित तिसका व्यवहारहै इस अर्थकोही श्रुति कहती है तथाहि॥ तेषामसौविरजोब्रह्मलोकोनयेषुजिह्ममनृतंनमायाचेति,प्रश्न, उ० प्र० १॥ अर्थ॥ तिन पुरुषों कोही सो, रजोगुण आदिक उपद्रव रहित ब्रह्मलोक प्राप्त होताहै जिनमें (जिह्म) कुटिलता और मिथ्याभाषण तथा माया नहीं है जो मन में कुछ औरही रखकर बाहरसे अन्यथा कहताहै सो मायाहै॥ जैसे योगीआदिक पूजाको कार कहते हैं और जगत् में विचर कर कारलेते हैं तैसे सचे विचारशीलका जो मिथ्या

व्यवहारसे रहित होनाहै सोई पूजाहै और सोई कर्तव्यरूप कारहै ३१ हे भगवन् जिस ज्ञानसे सर्वथा सत्य व्यवहार और दम्भ दर्पआदिक आसुरी सम्पत्तिका त्याग होताहै तिस ज्ञानकी प्राप्तिका देश और कालके अनुसार और श्रुति सम्मत सुगम उपायकहो इसप्रकार शिष्यकी जिज्ञासाते उपदेश करते हैं॥ **इकदूजीभौलखहोहिलखहोव हिलखवीस। लखलखगेडाआखीयहिएक नामजगदीस। एतराहिपतिपवडीयाचडीयै होयइकीस॥** हे शिष्य जो अत्यन्त उत्साहपूर्वक प्रेमसे परमेश्वरके नामका उच्चारणहै सो परमेश्वरकी प्राप्ति का कारणहै परन्तु इसप्रकारका उत्साह चाहिये जो कि एक जिह्वा से मेरी लाख जिह्वा होवे और वह लाख फिर वीस लाख होवें तब इतनी जिह्वासे लाख लाख वार एक परमेश्वर के नामको उच्चारण करो इस प्रकार के (राहि) रस्ते से (पति) प्रतिष्ठित ज्ञानकी भूमिकारूपी पवड़ियों पर चढ़कर (इकीस) एक ईश्वरस्वरूप होताहै॥ नामके प्रभाव का बोधक वेदवाक्य (ओहथोपै नावैकैरंग) इस पंक्तिके व्याख्यानमें लिखाहै देखलेना और ज्ञानकी भूमिकाओंका निरूपण (पंचपरवाण) इत्यादि सोपानमें कराहै देखलेना॥ **सुणगलाआकासकीकीटाआ**

ईरीस। नानकनदरीपाईयेकूडीकूडैठीस३२॥
हे शिष्य बहुतसे बाह्यमुखी पुरुष कीट तुल्य अत्यन्त तुच्छ (आकास) परमेश्वरकी बातें सुनकर ब्रह्मनिष्ठ विद्वानोंकी रीसकरके यह कहते हैं जो कि हम को कुछ कर्तव्य नहीं इस से नामउच्चारण से क्याहै श्रीगुरुजी कहते हैं उन (कूडै) कपटी पुरुषोंकी जो (ठीस) निष्कर्तव्यता बोधकवाणी है सो कूडीहै॥क्योंकि (नदरी) यथार्थ ज्ञानी होनेपर (पाईयै) परमतत्त्वकी प्राप्ति होती है॥इस वास्ते यथार्थ ज्ञानकी प्राप्ति वास्ते उनको श्रवण आदिक कर्तव्यहैं।इसी वास्ते सुरेश्वर वार्तिक है॥त्वंप दार्थविवेकायसंन्यासःसर्वकर्म्मणाम्। श्रुत्येहविहितोयस्मात्तत्त्यागीपतितोभवेत्॥ अर्थ॥ जिससे जीव चेतनके विवेक वास्ते सब कर्म्मोंका त्याग श्रुति ने विधान कराहै इस वास्ते तिस विवेक जनक श्रवणादिकों के त्याग करनेवाला अपरिपक्व ज्ञानी पतित होता है ३२॥ आखणजोरचुपैनहजोर। जोरनमंगणदेणनजोर॥ जोरनजीवण मरणनहजोर। जोरनराजिमालिमनिसोर॥ जोरनसुरतीज्ञानवीचार। जोरनजुगतीछुटै

संसार ॥ जिसहथजोरकरवेखैसोय। नानक उत्तमनीचनकोय ३३ ॥ हे शिष्य (जोर) ब्रह्म विद्यारूप सामर्थ्य अनेकशास्त्रोंके (आखरा) कथनसे नहीं प्राप्त होती इसी प्रकार (चुपै) आकार मौन तथा काष्ठ मौन आदिकों से भी ब्रह्मविद्यारूप सामर्थ्य की प्राप्ति नहीं होती और सो सामर्थ्य किसी से मांगने से और किसी के देनेसे भी नहीं प्राप्त होती और बहुत से दीर्घ जीवनसे तथा मरजानेसे भी नहीं प्राप्त होती और मनके (सोर) अत्यन्त अहंकार के कारण जो राजमालहैं इन से भी तिस सामर्थ्य की प्राप्ति नहीं होती और (सुरती) योगध्यान (ज्ञानवीचार) सांख्यशास्त्र की रीति से तत्त्वों के विचारसे भी ब्रह्मविद्यारूप बलकी प्राप्ति नहीं होती और जिस विद्यारूप बलसे संसार छूटताहै सो बल शुष्कतर्करूप युक्तिके अनुसंधान से नहीं प्राप्त होता किन्तु जिस किसी पूरणभागी के हाथ में विद्यारूप बल है सो (कर) अपने हस्तगत वस्तुवत् अपने स्वरूप को देखता है उस ज्ञान के प्रभावसे श्री गुरुजी कहते हैं तिसकी दृष्टि में न कोई उत्तम है और न कोई नीच है॥ तात्पर्य्य यहहै अपने पुरुषार्थसे विद्यारूप बलकी प्राप्ति होती है क्योंकि इस जीव को जो देह

आदिक अनात्मा में आत्मत्व भ्रमहै सो निरंतर आत्म-भावना से निवृत्त होताहै इसी वास्ते श्रुतिमें लिखाहै ॥ आत्मनाविन्दते वीर्य्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम् ॥ केनउप० खण्ड २ ॥ अपने आत्माकरके (वीर्य्य) विद्यारूप सामर्थ्य को प्राप्त होताहै और विद्या करके अमृतत्वरूप मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ जिस ज्ञान दृष्टि से उत्तम तथा नीचको नहीं देखता तिसका गीता में निरूपण कराहै तथाहि ॥ विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणेगविहस्तिनि । शुनिचैवश्वपाकेचपण्डिताःसमदर्शिनः॥गी० अ०५ श्लो० ७॥ अर्थ॥ ब्रह्मविद्या तथा निरहंकारता करके सम्पन्न जो ब्राह्मण है इस प्रकार अत्यन्त सात्त्विक में तथा (गवि) संस्कारहीन राजसयोनि में और हस्ति श्वान श्वपाक रूप चण्डाल इन करके उपलक्षित तामसयोनिमें समरूप जो सर्वत्र पूरण ब्रह्महै तिसके दर्शन शील जो विवेकी पुरुषहैं वह पण्डित हैं॥ तात्पर्य्य यह है गंगाजल और तालाव का जल तथा मूत्रआदि रूपजल इनमें जो सूर्य्य का प्रतिविम्बहै सो जलके गुण तथा दोष से वर्जित है इसी प्रकार सात्त्विक राजस तामस योनिरूप उपाधि में

वर्तमान ब्रह्मतत्त्व सर्व के गुण दोष वर्जित एकरस है तिसका सर्वदा अनुसंधान करनेवाले जीवन्मुक्ति सुख का अनुभव करते हैं इसी वास्ते गुरुजी ने लिखा है नानक उत्तम नीच न कोय ३२ जिस तत्त्वके ज्ञान से विषमदृष्टिकी निवृत्ति होती है तिस तत्त्वका निरूपण करते हैं॥ **रातीरुतीथितीवारपवणपाणीअगिन पातालु॥तिसविचधरतीथापरखीधरमसाल॥** रात्रि तथा दिन और ऋतु तिथि वार इनसे आदि लेकर यावत्काल तथा कालके जनक सूर्य्य चन्द्र और पवण जल तथा अग्नि और पाताल उपलक्षित आकाश तथा पाताल और (धरती) धर्मकी शालारूप पृथिवी तिस परमतत्त्वमें ही स्थित है तात्पर्य यहहै जितना काल तथा तिसके जनक सूर्य चन्द्रआदिक और पवण आदिक हैं वह सर्वही परमात्मामें आरोपितहैं अरोपित जलका अधि-ष्ठान मरुस्थलवत् इन सर्वका परमात्मा अधिष्ठान है इस वास्ते तिसके ज्ञान से विषमदृष्टिकी निवृत्ति होती है॥ **तिसविचजीयजुगतिकेरंग। तिनकेनामअनेकअनंत।करमीकरमीहोयबीचार।सचाआपसचादरबार॥** और (जुगति) उपाधिके योगसे जिन

जीवनमें (रङ्ग) राग और तिस करके उपलक्षित द्वेष काम आदिक हैं वहभी (तिसविच) तिस परमतत्त्वमें स्थितहैं और तिन जीवों के रागी द्वेषी कामी क्रोधी आदिक अन्त वर्जित अनेक नामहैं और जिन जीवों ने (करमी) परमात्मा में अपने कर्मों को समर्पण कराहै इस वास्ते सो कर्मी कर्मी नामसे कहे जाते हैं क्योंकि वह परमात्मा में समर्पण कर्मवाले हैं जब उन्हों ने परमेश्वर में कर्म्मों का समर्पण कराहै इससे उनको यह विचार होता है जोकि अपना आप जो आत्मा है सो (सचा) सत्यरूप त्रिकालावाध्यहै और (दरबार) जो सर्व प्रपंचका अधिष्ठानत्वकरके उपलक्षित शुद्ध चैतन्यहै सोभी सत्यरूप त्रिकालावाध्य है इस वास्ते मेरा स्वरूप शुद्ध चैतन्यरूप है इस प्रकार का विचार जन्य ज्ञान परमात्मा में समर्पित कर्मवालेको होताहै ॥

तिथैसोहनिपंचपरवाण । नदरीकरमिपवैनीसाण ॥ कचपकाईओथैपाय । नानकगयाजापैजाय ३४॥ (पंच) विस्तृत स्वरूप जो परहै तिस के वाणरूप जो ध्यानी पुरुषहैं वह (तिथै) तिस अद्वैत निष्ठामेंही (सोहनि) शोभते हैं ॥ तात्पर्य यह है उपनिषद् विद्यामें ब्रह्मको लक्ष्यरूप से निरूपण किया है

और आत्माको बाणरूप निर्णय कराहै इस वास्ते सर्व से विस्तृतरूप पर शब्द से बोध्य परमात्मा के स्वरूप में जिन्हों ने अपने आत्माको ध्यानसे लीन कराहै वह ध्यानी पुरुष अद्वैत निष्ठामें शोभा पाते हैं॥ इसमें श्रुति प्रमाणहै तथाहि॥ प्रणवोधनुःशरोह्यात्माब्रह्मत लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेनवोद्धव्यंशरवत्तन्म योभवेत्॥ मुण्डक। उप० द्वि० खण्ड २॥ अर्थ॥(प्रणव) ॐकार धनुषहै औरशर अर्थात् बाण जीवात्मा है और तिस व्यापक ब्रह्मको लक्ष्य कहते हैं विषय तृष्णा आदिक प्रमादरहित पुरुष करके ब्रह्मरूपलक्ष्य वेधने को योग्यहै इस वास्ते शरवत् ब्रह्मस्वरूप अपने आपको देखे। जैसे लक्ष्यमें प्रविष्ट शर लक्ष्य से पृथक् नहीं रहता तैसे ध्यान करनेवाला ब्रह्मरूप अपने आत्मा को करताहै इसप्रकार के ध्यानीकी अद्वैतनिष्ठा में शोक मोहकी निवृत्तिरूप शोभाहै॥ इसी अर्थको श्रुति कहती है। तथाहि॥ यस्मिन्सर्वाणिभूतान्यात्मैवाभू द्विजानतः। तत्रकोमोहः कः शोकएकत्वम नुपश्यतः॥ ईशावास्य। मं० ७॥ अर्थ॥जिस एकत्व ज्ञानकालमें ज्ञातापुरुष के सर्वभूत आत्मस्वरूपही

होगये तिस काल में क्या मोह तथा क्या शोकहै॥ और (नदरी) ज्ञानी तथा तिसके कर्म्म और ज्ञाननिष्ठ के (नीसाण) चिह्न तथा अदृढ़ दृढ़ज्ञानरूप (कचपकाई) कचापका ज्ञान तिसमें आरोपित हैं परन्तु श्रीगुरुजी कहते हैं। सो ब्रह्मरूप (जाय) जगा गुरुकी शरण में (गया) जाने से (जापै) दीखती है॥ अथवा (नदरीकरमि) अर्थात् जो ज्ञानी को कर्तव्य तत्त्वज्ञा-नाभ्यास और मनोनाशाभ्यास तथा वासनाक्षयाभ्यास है तिससे (नीसाण) जीवन्मुक्तिका चिह्न (पवै) प्राप्त होताहै तिस जीवन्मुक्ति के चिह्नका वशिष्ठ ग्रन्थ में राम-चन्द्र और वशिष्ठजीके संवादसे निरूपणकराहै तथाहि॥

एवंस्थितेहिभगवञ्जीवन्मुक्तस्यसम्मतः।
अपूर्वोतिशयःकोऽसौभवत्यात्मविदांवर १॥

अर्थ॥ इस प्रकार अनेक साधनों के अभ्यास से जब जीवन्मुक्त हुआ तब तिसका हे भगवन् अपूर्व अतिशय सर्वको सम्मत क्याहै हे आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठगुरो आप कहो १॥ वशिष्ठउवाच॥ नास्यकस्मिंश्चिदं-वांशेभवत्यतिशयेनधीः। नित्यतृप्तःप्रशा-न्तात्मासआत्मन्येवतिष्ठति २ मन्त्रसिद्धैस्त

पःसिद्धैर्योगसिद्धैश्च भूरिशः। कृतमाकाशयानादि तत्र कास्यादपूर्वता ३ एक एव विशेषोऽस्य न समो मूढबुद्धिभिः। सर्वत्रास्थापरित्यागः सदा निर्वासनं मनः ४ एतावदेव खलु लिङ्गमलिङ्गमूर्त्तेः संशान्तसंसृतिचिरभ्रमनिर्वृतस्य। तज्ज्ञस्य यन्मदनकोपविषादमोहलोभापदामनुदिनं निपुणं तनुत्वम् ५॥ अर्थ॥ वशिष्ठ जी कहते हैं इस जीवन्मुक्त विद्वान्की किसी भी अंशमें अतिशय करके युक्त बुद्धि नहीं तात्पर्य यह है जो कि इसकी बुद्धि में किसी भी पदार्थकी उत्कृष्टता नहीं भान होती क्योंकि यह प्रशान्तात्मा और अपने आपमें नित्य तृप्त आत्मामेंही स्थित है २ मन्त्रसिद्ध और तपःसिद्ध तथा योगसिद्ध पुरुषोंने बहुतप्रकार से आकाश में गमन करनेवाले यानकरे हैं तिनमें क्या अपूर्वताहै इस प्रकार से सो विद्वान् जानताहै ३ परन्तु एकही इसमें विशेषताहै जो कि यह विद्वान् मूढबुद्धि पुरुषों के सम नहीं क्योंकि सर्वत्र पदार्थनमें (आस्था) स्थिरता का परित्याग और सर्वदा इसका मन निर्वासन होता है ४ अलिङ्ग मूर्त्ति विद्वानका इतनाही निश्चित लिङ्ग है जो कि संसार में

चिरकाल भ्रमकी शान्तिसे (निर्वृत्त) आनन्दित वि- द्वान्को (मदन) काम और क्रोध (विषाद) जड़ता (मोह) विपर्यय लोभरूप आपदोंका नित्यं प्रति (नि- पुण) ठीक ठीक (तनुत्व) सूक्ष्मता होनाही फलहै ता- त्पर्य यहहै काम क्रोध विपर्यय मोह लोभ इनकी जो अत्यन्त सूक्ष्मताहै यहही जीवन्मुक्तकी विलक्षणताहै ५ पुनः पुनः जो तत्त्वका अनुसंधानहै सो तत्त्व ज्ञानाभ्यास है और मैत्र्यादि वासनाकी वृद्धिसे जो पुनः पुनः राग द्वेषादि वासनाकी निवृत्ति है सो वासना क्षयाभ्यास है मैत्री आदिकोंका प्रमाण से (सोचैसोचनहोवई) इस पंक्तिके व्याख्यान में निरूपण कराहै जानलेना और चित्तवृत्तिके निरोध से मनोनाश होताहै तिस निरोध समाधिका अभ्यासही मनोनाशाभ्यासहै ॥ इनींके अ- भ्याससे अदृढ़ता विशिष्ट कचाज्ञान पकता है इसवास्ते (ओथै) उस ज्ञानी के कर्तव्य साधनों में (कच पकाई) कचेका पकना (पाय) प्राप्त होताहै परन्तु इस जीवन्मु- क्तिकी (जाय) जगह अर्थात् स्थान श्रीगुरुजी कहतेहैं (गयाजापै) जीवन्मुक्त गुरुकी शरण में गयेसे दीखता है ३४ ॥ **धरमखण्डकाएहोधरम। ज्ञानखण्ड काआखहुकरम** ॥ हे भगवन् गुरुकी शरण जाकर

श्रवण आदिसे तत्त्व मिथ्याका विवेचनसे लेकर जीवन्मुक्तिके साधन अनुष्ठान पर्यन्त जो आपने पूर्व वर्णन कराहै यह सर्वही (धरम) स्वभाव। धरमखण्डका है अर्थात् निष्काम कर्म विशेषरूप जो धरमखण्ड हैं तिससे गुरु उपपत्ति पूर्वक श्रवण आदिक साधनों से लेकर जीवन्मुक्तिके सुखतक पहुंचताहै यह मैंने जानाहै परन्तु अब आप अपनी कृपासे ज्ञानखण्डका जो करमहै तिसको आखहु अर्थात् कथनकरो तात्पर्य यहहै जब पुरुषको स्वरूपका यथावत् साक्षात्कार होताहै, त व तिससे किस कार्यकी सिद्धि होतीहै क्या ज्ञानसे अज्ञान की निवृत्ति होनेसे तिसका देह पतन होजाता है अथवा अज्ञान के संस्काररूप जो लेशा विद्याहै तिससे शरीर किंचित्काल प्रारब्धके क्षयको देखता है जेकर प्रारब्ध और अज्ञानके संस्कार से शरीर रहता है तब सो विद्वान् प्रपंच को कैसे देखता है इस गूढ़ अभिप्राय से शिष्य का प्रश्न है ॥

केतेपवणपाणीबैसंतरकेतेकानमहेस। केतेबरमेघाडतघडीयहि रूपरंगकेवेस॥ केतीयाकरमभूमी मेरुकेतेकेतेधूउपदेस। केते इन्दचन्दसूर केते केते मण्डलदेस॥ के

तेसिद्धबुद्धनाथकेतेकेतेदेवीवेस । केतेदेवदा नवमुनिकेतेकेतेरतनसमुंद । केतीयाखाणी केतीयाबाणी केते पातनरिंद । केतीयासुरती सेवक केते नानक अन्त न अन्त ३५॥

हे शिष्य विद्वान् का इसप्रकारका निश्चय होता है जोकि मेरे ब्रह्मस्वरूप आत्मा में (केते) अनंतही वायु जल अग्नि हैं और अनंतही (कानमहेस) विष्णु शिवहैं और अनन्तब्रह्म जगतकी (घाडत) रचनाको (घडी-यहि) करते हैं परन्तु इनसर्वका (वेस) स्वरूप रूप रङ्ग-वतहै अर्थात् जैसे रूप्यमें रांगाभ्रम सिद्ध है इसी प्रकार अधिष्ठान चेतन में पवन आदिक आरोपितहैं और अ-नंतही कर्म्मभूमी और मेरुहैं और अनंतही (धू) ध्रुव हैं जिननारद आदिकों ने उपदेशकरा है सो भी अनन्त हैं और अनन्त इन्द्र चन्द्र सूर्यहैं और अनंतही सूर्यमण्ड-ल के समीप देशमें वर्त्तमान बुद्ध शुक्र आदिक नक्षत्रहैं और अणिमा आदिक अष्टसिद्धियुक्त तथा बुद्धअवतार और प्रजाकेनाथ दक्षआदिकभी तिसअधिष्ठानमें अनंत हैं और लक्ष्मी पारवती सरस्वती आदिक देवियोंके (वेस) स्वरूपभी अनंतहैं और (देव) सात्त्विकी और दनुकेपुत्र

दानवजो देवताओंके विरोधीहैं वहभीअनंतहैं और मनन-शील मुनि और रत्नोंयुक्तसमुद्र भी तिस अधिष्ठान में अ-नंत हैं और अण्डज जेरज स्वेदज उद्भिज्जआदिक खाणी भी अनंत हैं और परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरी वाणी भी अनंतहैं और अनंतही (पातनरिंद) सिंहासनपति हैं और अनंतही (सुरती) शोभन भक्तिवाली स्त्री हैं और अनं-तही (सेवक) भक्तजन हैं परंतु श्रीगुरुजी कहते हैं सर्वप्रपंचके निषेध की अवधिरूप जो अन्तहै तिसमें (अन्त) भेदनहीं तात्पर्य यह है अखण्ड साक्षात्कार संपन्न विद्वान्का यह निश्चयहै जोकि मेरेस्वरूपमें पूर्वउक्त अनंतपदार्थ कल्पि-तहैं परन्तु मेरेस्वरूपमें गुणदोषको करनेमें समर्थ नहींहैं इसीवास्ते विद्वानका ऐसा अनुभव है॥ विशुद्धोऽस्मि विमुक्तोऽस्मिपूर्णात्पूर्णतमाकृतिः । असंस्पृ-श्यमस्मात्मानंसन्तुब्रह्माण्डकोटयः॥ अर्थ॥ मैं विशेषकरके शुद्ध तथा मुक्तहों पूर्ण जो आकाशादिक हैं तिनसे भी अत्यन्त पूरणहों मेरेस्वरूप आत्माको न स्पर्श करके कोटानकोट ब्रह्माण्ड होवें तबभी क्या हानि है॥ प्रकरण में गुरुजी ने यह उत्तर कहा जोकि हे शिष्य इस प्रकार स्थितिका अनुभव होनाही ज्ञानका कर्तव्यहै ३५॥ ज्ञानखण्डमहिज्ञानप्रचण्ड । तिथैनादविनो

दक्रोडअनन्द ॥ हे शिष्य (ज्ञानखण्डमहि) ब्रह्म ज्ञानका जनक जो उत्तरकाण्डरूप वेद है तिसमें प्रचण्ड ज्ञानका निरूपणहै दृढ़बोधका नाम प्रचण्डज्ञानहै क्योंकि (तिथै) तिस प्रचण्ड ज्ञानके निरूपणवास्ते (नाद)उपदेशकराहै जिस उपदेशकी (विनोद) उत्साह पूर्वक धारणासे (क्रोड अनन्द) क्रोड अर्थात् अप्रमित आनंद होताहै सर्वप्रकारकी कल्पना वर्जित ब्रह्मस्वरूप आनन्द को अप्रमित आनन्द कहतेहैं॥ अब प्रचण्ड ज्ञानके स्वरूपका बोधक उपदेश वाक्य लिखतेहैं, तथाहि॥ अथयत्रदेवइवराजेवाहमेवेदछं सर्वोऽस्मीतिमन्यते सोऽस्यपरमोलोकः बृह० उ० अ० ६। का० २० ॥ अर्थ ॥ (यत्र) जिस ज्ञानकी दृढ़ स्थितिकाल में जैसे जन्मपर्य्यन्त अपने में देवभावना करनेवाले को तथा चक्रवर्त्ति राजाको जाग्रत्काल में दृढ़ अभ्यास के प्रभाव से स्वप्न में भी देवोऽहम् राजाहम् ऐसी प्रतीति होती है तैसे जिस विद्वान् ने जाग्रत्काल में (इदंचैतन्यमहंसर्वोऽस्मीति) यह चैतन्यरूप आत्मा मैं सर्वरूप हूं, इसप्रकारकी दृढ़भावना से जब स्वप्न में भी अपने आत्माको मैंही सर्वस्वरूपहूं इसप्रकार मानताहै सो सर्वात्मभाव इसका परमलोकहै अर्थात् स्वाभाविक है किसी

से जन्य नहीं तात्पर्य यहहै जवी स्वप्न में सर्वात्मभाव अ-पने में देखता है तवी दृढ़बोध कहाजाता है इसदृढ़बोध से महानन्दकी प्राप्तिहोतीहै इसी अर्थकी वोधकश्रुतिहै ॥ तथाहि ॥ एषास्यपरमागतिरेषास्यपरमासम्पदेषोऽस्यपरमोलोकएषोऽस्यपरमआनन्दएतस्यैवानन्दस्यान्यानिभूतानि मात्रामुपजीवन्ति ॥ बृह० उप० अ० ६ का० ३२॥ अर्थ ॥ यह सर्वात्मभावही इस विज्ञानउपाधिक जीवकी परमगतिहै और यहही इसकी परम (सम्पद्) विभूति है और यहही इसका परमलोक है यहहीं इसका परम आनन्द स्वरूप है इस आनन्द की (मात्रा) लेशको अन्य सर्वभूत भोक्ते हैं॥ सरमखण्डकीबाणीरूप । तिथैघाडतघडीयैबहुतअनूप॥ ताकीयांगला कथीयानजाहि । जेकोकहैपिच्छैपछुताय ॥ हे शिष्य) जो सरमखण्ड है अर्थात् तिस तिसजीव को प्राप्त जो सरमखण्डरूप सुखहै तिसकी वोधक वाणी के रूप सुन (तिथै) तिस सुख विशेष में (अनूप) उपमारहित वहुतप्रकार की (घाडत) कल्पना विशेष (घडीयै) करीजाती है और जो महानन्दस्वरूप परमात्माहै तिस-

की (यांगला) वार्त्ता नहीं कथन करीजाती जेकर कोईकहे तब पुनःपुनः पश्चात्ताप करेगा॥ तात्पर्य यहहै जो परमात्मस्वरूप सुखकालेश आनन्दहै सो मनुष्यानन्दसे लेकर हिरण्यगर्भ पर्यन्त गिनती कराहै और जो महानन्दस्वरूप परमतत्त्व है तिस में वाणीकी गति नहीं यदिकोई वाणी से कहेगा तब वाच्यत्व दृश्यत्व अतिशय सहितत्व आदिकोंकी प्रसक्तिसे पश्चात्ताप करेगा। यद्यपि॥ लेशरूप आनन्द का स्वरूप तैत्तरीयश्रुति प्रमाण से (मन्नेकी गतिकहीं न जाय) इस पंक्तिके व्याख्यान में निर्णीतहै॥ तथापि॥ श्रोतापुरुषोंके दर्शन वास्ते बृहदारण्यक श्रुतिसेभी निरूपण करतेहैं। तथाहि॥

सयोमनुष्याणाछंराद्धः समृद्धोभवत्यन्येषामधिपतिः सर्वैर्मानुष्यैर्भोगैः सम्पन्नतमः समनुष्याणांपरमआनन्दः ॥ अर्थ ॥ जो प्रसिद्ध पुरुष मनुष्यों के मध्य (राद्ध) समग्र अवयव से संपन्न (समृद्ध) भोगके उपकारण युक्त है अपने समान जातिवाले सर्व जीवनका अधिपति है अर्थात् चक्रवर्त्ति राजाहै और सर्व मनुष्यों के भोगों करके अत्यंत संपन्न है सो मनुष्यों के मध्यमें परम आनन्द है अर्थात् सो

मनुष्यानन्द की परमअवधि है॥ अथयेशतंमनुष्याणामानन्दाः सएकः पितॄणांजितलोकानामानन्दः॥ अर्थ॥ और जो मनुष्योंके शत आनन्द हैं सो श्राद्धादि कर्म्म करके जिनों ने पितृलोक जीता है ऐसे पितरों का एक आनन्द है॥ अथयेशतंपितॄणां जितलोकानामानन्दाः सएकोगन्धर्वलोकआनन्दः॥ अर्थ॥ और जो शत जितलोक पितरों के आनन्द हैं सो एक गन्धर्वलोक में आनन्द है अर्थात् शतगुणित पितरों का आनन्द एक गन्धर्वानन्द है॥ अथयेशतंगन्धर्वलोकआनन्दाः सएकःकर्म्मदेवानामानन्दो येकर्म्मणादेवत्वमभिसम्पद्यन्ते॥ अर्थ॥ जो गन्धर्वलोक में शत आनन्द हैं सो एक कर्म देवोंका आनन्द है जो अग्निहोत्रादि कर्म करके देवत्व भावको प्राप्त होते हैं सो कर्म्म देव हैं॥ अथयेशतंकर्म्मदेवानामानन्दाः स एकआजानदेवानामानन्दोयश्च श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतः॥ अर्थ॥ जो उत्पत्ति से देवस्थान में उत्पन्न हुए हैं वह आजानदेव हैं जो कर्म देवनके शत

आनन्द है सो आजानदेवों का एक आनन्द है और जो श्रोत्रिय अर्थात् अधीतवेद (अवृजिन) पाप वर्जित है और (अकामहत) आजानदेवों से पूर्वपर्यायगत आनन्द में तृष्णा वर्जित है तिसको भी आजान देवों के समान आनन्द होता है इस स्थान में अधीत वेदत्व) और निष्पापत्व और अकामहतत्वरूप तीन साधन हैं परन्तु अधीतवेदत्व निष्पापत्व तो सर्वत्र मनुष्यानन्दादि युक्तों में तुल्य हैं तृष्णा राहित्य रूप जो अकामहतत्व है सोई उत्तर २ सुखका कारण है ॥ अथ

येशतमाजानदेवानामानन्दाःसएकःप्रजापतिलोकआनन्दोयश्चश्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतः

॥ अर्थ ॥ जो शत आजानदेवों के आनन्द हैं सो एक विराट् रूप जो प्रजापति है तिसके लोक में आनंद है और जो श्रोत्रिय अवृजिनअकामहत है तिसको भी प्रजापतिके समान आनंद है ॥ अथ **येशतंप्रजापतिलोकआनन्दाःसएकोब्रह्मलोकआनन्दोयश्चश्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतोऽथैषएवपरमआनन्दः** बृह० ६ उ० ३ ब्रा० ६ ॥ अर्थ जो शत प्रजापतिलोकमें आनन्द हैं सो एक ब्रह्मलोक में आनन्द है

और सोई अकामहतनिष्पाप विद्वान को आनन्द है और जहां विभाग नहीं जो मन वाणी का अविषय है सोई परमानन्दरूप आत्मा है॥ **तिथै घडीयै सुरति मति मनि बुद्धि॥ तिथै घडीयै सुरा सिद्धा की सुद्ध ३६॥** हे शिष्य तिस ज्ञानखण्ड में (सुरति) श्रवण (मति) मनन और (मनि) निदिध्यासन रूप मन की वृत्ति (बुद्धि) साक्षात्कार ज्ञान के वास्ते (घडीयै) विधान करे जाते हैं तात्पर्य यह है साक्षात्कार ज्ञान को उद्देश करके श्रवण मनन निदिध्यासन विधान करे हैं॥ तथाहि॥ **नवा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियम्भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियम्भवत्यात्मावा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनोवा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्॥ बृह० उप० अ० ४॥ अर्थ॥** याज्ञवल्क्य कहते हैं अरे मैत्रेयि सर्व वस्तु की कामना नाम प्रयोजन तिसके वास्ते सर्व वस्तु प्रिय नहीं होती किन्तु अपने प्रयोजन वास्ते सर्व प्रिय होती है इसप्रकार जब आत्माही प्रेम का विषय होने से प्रिय है तब आत्मा देखने को योग्य है परन्तु प्रथम तिस दर्शन के साधन श्र-

वण मनन निदिध्यासन कर्तव्य है अरे मैत्रेयि आत्मा के दर्शन श्रवण मनन विज्ञान करके यह सर्व विदित होता है और (तिथै) तिसी ज्ञानखण्ड में सुरासिद्धा की कहीये सात्त्विकी पुरुषोंमें ज्ञातपुरुषोंकी (सुद्ध) ज्ञात (घडीये) परीक्षा पूर्वक निश्चयकरीजाती है तात्पर्य यह है जिस ज्ञाननिष्ठा से पुरुषों को मुक्तिरूपफल की प्राप्तिहोती है तिसका भी निरूपण कराजाता है॥ तथाहि॥ अथाकामयमानोयोऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामः। नतस्यप्राणाउत्क्रामन्तिब्रह्मैवसन् ब्रह्माप्येति॥ तदेषश्लोकोभवति यदासर्वेप्रमुच्यन्ते कामायेऽस्यहृदिश्रिताः। अथमर्त्योऽमृतोभवत्यत्रब्रह्मसमश्नुतइति॥ तद्यथाहिनिर्ल्वयनीवल्मीकेमृताप्रत्यस्ताशयीतैवमेवेदंशरीरंशेतेऽथायमशरीरोमृतःप्राणोब्रह्मैवतेजएव॥ बृह० उप० अ० ६॥

अर्थ॥ जो अकामयमान अर्थात् कामना रहित है तिस के प्राण देह ग्रहणवास्ते नहीं उत्क्रमण करते किन्तु ब्रह्मस्वरूप हुआही ब्रह्मको (आप्येति) प्राप्तहोता है अकामयमान अकामहोने से है अर्थात् सर्व प्रकारकी कामना

वर्जित होनें से अकामयमान है और सर्व कामना वर्जित निष्काम होने से है और आप्तकाम होनें से निष्काम है तात्पर्य्य यह है जो पूर्णकाम है सोई नि- ष्काम होताहै और पूरणकाम आत्मकाम होनेसे है जिसको आत्मासे अतिरिक्तकी कामना नहीं सो (पूरण काम है तात्पर्य यह है जो विद्वान् नित्यप्राप्त आत्मा से भिन्न वस्तुको नहीं देखता सोई पूरणकाम होताहै क्योंकि कामनाका विषय आत्मा तिसको प्राप्त है जब पूरणकाम होनें से निष्काम हुआ तब अकाम होने से अकामय- मान होगया और इसी अर्थका बोधक श्लोक नाम मन्त्र है जिसकाल में इसके अन्तःकरण में वर्तमान सर्वकाम- ना निवृत्त होती हैं (अथ) तिसी काल में मर्त्यअमृत होता है (अत्र) इस शरीर में वर्त्तमानही ब्रह्मको प्राप्त होता है तिसमें यह दृष्टान्त है जैसे सर्पकी (निर्ल्व- यनी) त्वचा (वल्मीके) सर्पकी स्थिति के स्थान में (मृता) अनात्मभाव करकेत्यक्त (प्रत्यस्ता) फेंकीहुई (शयीत) वर्तमान है तात्पर्य यह है जब सर्पने अना- त्मभाव करके अपनी त्वक्का त्यागकरा तब सर्प उसी स्थान में प्रतिदिन निवास करताहुआ भी फिर उस त्वक् में आत्मभावना नहीं करता इसी प्रकार अज्ञानकाल में

आत्मभावना से स्वीकार करे शरीर को जब ज्ञान से स-
हित कार्य्य के अज्ञान के बाधित होनेपर अनात्मभाव से
शरीर त्यक्तहुआ तिस त्यक्तशरीर को तिसमें वर्तमान
भी फिर आत्मभाव से नहीं स्वीकार करता और सो
विद्वान् प्राणका प्राणब्रह्म तेज अर्थात् प्रकाशरूप स्वयं
ज्योति अमृत स्वरूप है इसी से अशरीर है ॥ प्रकरण में
वार्त्ता यह सिद्धहुई जो सात्त्विकी विद्वान्की यहांतक
जीवन्मुक्तिका कारण पूरीज्ञात है इसका ज्ञानखण्ड में
प्रतिपादन करा है ॥ इसीवास्ते गुरुजी कहते हैं (तिथै
घडीयै सुरतिसिद्धाकी सुद्ध ३६) करमखण्डकीबाणी
जोर । तिथैहोरनकोईहोर ॥ तिथैजोधमहाब
लसूर । तिनमहिरामरहियाभरपूर ॥ हे शिष्य
जो (करमखण्ड) अर्थात् करमकाण्ड की बाणी है तिस
में केवल जोरकाही निरूपण करा है जोरनाम सामर्थ्य
का है सो दो प्रकारकी है एक तो सकाम कर्म्म से जन्य
भोगका हेतु सामर्थ्य है दूसरी निष्काम ईश्वर में समर्पि-
तकर्म्मोंका फलरूप सामर्थ्य चित्तकी शोधकहै और हे
शिष्य (तिथै) तिस कर्म्मकाण्ड में (होर) शुद्धजीव
ईश्वर के स्वरूपका निरूपण नहीं तथा (कोईहोर) तिन
दोनोंकी एकताका निरूपण भी नहीं है परन्तु तिसकर्म

काण्ड में कोई कोई कर्म्म ऐसा है जिससे क्रम से ब्रह्म लोककी प्राप्तिद्वारा मोक्षभी होतीहै जैसे (तिथै) तिस कर्म्मकाण्ड में युद्ध करनेवाले जो महाबलवान् शूर हैं अर्थात् तिनका जो धर्म्मयुद्ध में मरणा है (तिनमहि) तिसधर्म्मयुद्ध में जो मरण है तिसकाफल तो भरपूर रामही (रहिया) स्थापन करा है ॥ तथाहि ॥ द्वाविमौपुरुषौलोकेसूर्य्यमण्डलभेदिनौ ॥ परिव्राड्योगयुक्तश्चयुद्धेचाभिमुखोहतः १ ॥ अर्थ ॥ दो यह पुरुष लोकमें सूर्य्यमण्डल को भेदन करनेवाले ब्रह्मलोक में प्राप्त होवेंगे एक तो चित्तवृत्ति के निरोधयुक्त (परिव्राड्) विरक्त पुरुष और दूसरा युद्ध में सन्मुखमरा हुआ ॥ तिथैसीतोसीतामहिमामाहि । ताकेरूपनकथनेजाहि ॥ नाउोहिमरहिनठागेजाहि। जिनकेरामवसैमनमाहि ॥ तिस कर्मकाण्ड में जो पतिव्रत धर्मरूप कर्महै तिसका क्रम मुक्तिफलहै इसवास्ते तिसमें सीताकी महिमा (माहि) तिस महिमा में वर्त्तमान (सीतो) सीताके तुल्य स्त्रियोंका निरूपण कराहै सीतो पद सीता तुल्यका वाचकहै (ताके) तिनके (रूप) स्वरूप अर्थात प्रभाव नहीं कथन करजाते क्योंकि नतो

(ओहि) वह पतिव्रत धर्मवाली स्त्री अज्ञजीववत् पुनः पुनः मरती हैं और न विषय वासना में ठगी जाती हैं जिनके मनमें रामनिवास करताहै तात्पर्य यहहै वह पतिव्रत धरमवाली स्त्री अपने पतिको रामका स्वरूप जानकर सर्वथा मनमें धारणा करे हैं विशेष करके तिनका प्रभाव इतिहास पुराणों में निरूपण कराहै। इस प्रकार कर्मकाण्डका भावार्थ निरूपणकरके अब उपासनाका स्वरूप दिखातेहुए तिसके फलका निरूपण करते हैं॥ तिथै

भगतिवसहिकेलोय। करहिअनंदसचामनिसोय। सचखण्डवसैनिरंकार॥ करिकरिवेखैनदरनिहाल। तिथैखण्डमण्डलवरभण्ड॥ जेकोकथैतअन्तनअन्त। तिथैलोयलोयआकार॥ जिवजिवहुकमुतिवैतिवकार। वेखैविगसैकरिवीचार॥ नानककथनाकरडासार॥३७

हे शिष्य जो उपासनाका फल सच खण्डहै जिस सच खण्डकी महिमा पूर्व सोदरकी सोपान में कहीहै (तिथै) तिस सच खण्ड में भक्तजन (लोय) उपासनारूप वृत्ति को (के) करके (वसहि) निवास करते हैं उस स्थान में आनन्दका अनुभव करते हैं क्योंकि तिनके मनमें

(सोय) वह सत्य है और तिसी सत्य खण्डमें (निरंकार) परमात्मा सगुणरूप निवास करताहै जिसका सारङ्ग अष्टपदी में॥ मितिनाहिंजाकाविसथार। सोभाताकीअपरअपार। अनिकरंगजाकेगनेनजाहि। सोगहरखदुहहूमहिनाहि॥ इत्यादि प्रकार से निरूपण कराहै तिसको प्राकृत आकारों से रहित होनेसे भक्तजन निरंकार कहते हैं पुनः पुनः तिसकी भक्तिरूप नदर अर्थात् वृत्तिको करके देखते हैं और (निहाल) कर्तव्यों से रहित होते हैं तिथै तिस सत्य खण्डमें (खण्ड) नवखण्ड (मण्डल) आर्य्यावर्तादि देश (वरमण्ड) ब्रह्माण्ड जेकर इनको कोई कथनकरे तब भी (अन्त) सर्वके अधिष्ठान में (न अन्त) भेद नहीं तात्पर्य यहहै जैसे खाण्डके खलोने खाण्ड से भिन्न नहीं तैसे सचखण्ड में वर्त्तमान पदार्थ परमात्मा से भिन्न नहीं और तिस स्थान में जो आकार हैं सो आप (लोय) प्रकाशरूप हुये इतरों को (लोय) प्रकाशकरते हैं जैसे जैसे परब्रह्मका (हुकम) आज्ञा है तैसे तैसे कार करते हैं और वह भक्तजन विचारकरके स्वरूप को देखते हैं और (विगसै) आनन्दित होते हैं परन्तु श्रीगुरुजी कहते हैं तिस (सार) आनन्द स्वरूप परमतत्त्व का कथन

करना कठिन है ॥ तात्पर्य यहहै तिसकी महिमा अद्भुत है ३७ पूर्वउक्त प्रकारसे अनन्तरीति करके वेदप्रतिपाद्य अर्थका निरूपण करा है अब सारग्राही अधिकारी के प्रति संक्षेपसे रूपक अलंकार करके अनुष्ठान योग्य अर्थ का निरूपण करते हैं ॥ जतपहाराधीरजसुनिया र। अहरणमतिवेदहथीयार॥ हे शिष्य जो (जत) जितेन्द्रियता है सो पहाराहै गहना बनानेका जो सुवर्णकारका स्थान है जिस में गहने बनानेकी सामग्री रक्खी रहती है तिसको पहारा बोलते हैं और तत्त्वज्ञान रूप गहना बनानेकी जगह जितेन्द्रियता है जो जितेन्द्रियता है तिसीको संन्यास कहते हैं तिसका स्वरूप दशमगुरुजीने लिखा है ॥ रेमनऐसोकरसंन्यासा। बनसेसदनसभैकरसमझोमनहीमाहउदासा॥ इसीवास्ते जितेन्द्रियका लक्षण स्मृतिमें कराहै॥ तथाहि॥

श्रुत्वादृष्ट्वातथास्पृष्ट्वाभुक्त्वाघ्रात्वाचयोनरः।
नहृष्यतिग्लायतिवासविज्ञेयोजितेन्द्रियः १

अर्थ॥ जो पुरुष श्रवण तथा दर्शन और स्पर्श तथा भोजन और गन्धग्रहण इन सर्व क्रियायों को करके भी हर्ष तथा ग्लानि से रहितहै तिसको जितेन्द्रिय जानना

चाहिये, इसीको उदासीनता कहते हैं इस उदासीनता कोही दशम गुरुजी ने संन्यास मानाहै ॥ इसी उदासीनता का गीता में निरूपण करा है ॥ तथाहि ॥

अनपेक्षःशुचिर्दक्षउदासीनोगतव्यथः । सर्वारम्भपरित्यागीयोमद्भक्तःसमेप्रियः ॥ योनहृष्यतिनद्वेष्टिनशोचतिनकाङ्क्षति । शुभाशुभपरित्यागीभक्तिमान्यःसमेप्रियः ॥ गी० अ० १२ श्लो० १६ । १७ ॥ अर्थ ॥ अनपेक्ष अर्थात् दैवयोग से प्राप्त सर्वभोग सामग्री में इच्छारहित और (शुचि) वाह्य तथा अन्तरीय शौचकरके सम्पन्न और उदासीन अर्थात् पक्षपातवर्जित और (गतव्यथः) परकृत अपराध से पीड़ावर्जित और सर्व प्रकारके आरम्भों को त्यागकरनेवाला ऐसा जो मेरा भक्तहै सो परमेश्वर कहते हैं मेरेको पियारा है और इष्ट प्राप्ति में हर्षसे रहित तथा अनिष्ट प्राप्तिमें द्वेष से वर्जित है और प्राप्तइष्टके वियोग में शोच वर्जित है और अप्राप्तइष्ट की आकांक्षा नहीं करता ऐसा जो शुभ तथा अशुभका त्यागी भक्तिमान् है सो मेरेको पियारा है ॥ और जो सात्त्विकी धृतिकरके उपलक्षित सन्तोषादि गुणहैं तिनकरके युक्त

जो अधिकारी है सो ज्ञानरूप गहने का जनक होनेसे सुनियार नामसे कहाजाताहै, सात्त्विकी धृतिका लक्षण गीतामें लिखा है, तथाहि॥ धृत्यायया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः॥ योगेनाऽव्यभिचारिण्या धृतिःसा पार्थ सात्त्विकी॥ अ० १८॥ अर्थ॥ हे पार्थ अर्जुन जिस चित्तवृत्ति के निरोधरूप योग से अव्यभिचारी धृति से मन प्राण इन्द्रियों की क्रिया को पुरुष धारण करता है तात्पर्य यह है जिस धृति से अशास्त्रीय प्रवृत्तिको रोकाजाताहै सो धृति सात्त्विकी है॥ और जो सात्त्विकी (मति) बुद्धिहै सो अहरणहै और गुरु उपदिष्ट वेद वचनका विचार (हथीयार) हथोड़ा है तात्पर्य यह है जैसे हथोड़े से सुवर्णकार भूषण बनाताहै तैसे सात्त्विकी धृतियुक्त सम सन्तोषादि साधन सम्पन्न अधिकारी भी गुरु उपदिष्ट वेद वचन के विचार से सात्त्विकी मतिरूप अहरणमें ज्ञानरूप भूषणको बनाताहै॥ सात्त्विकी बुद्धिका लक्षण गीता में कहा है॥ तथाहि॥ प्रवृत्तिंच निवृत्तिंच कार्याकार्ये भयाभये। बन्धंमोक्षञ्चयावेत्ति बुद्धिःसा पार्थ सात्त्विकी॥ अ० १८॥ अर्थ॥ हे पार्थ हे अर्ज्जुन प्रवृत्तिनाम कर्म्म

मार्ग को निवृत्तिनाम संन्यास को और प्रवृत्तिमार्ग में कर्म्मके कर्तव्य को तथा निवृत्तिमार्ग में (अकार्य) कर्म्मों के अकर्तव्य को और प्रवृत्तिमार्ग में जन्ममरणरूप भय स्वरूप बन्धको और निवृत्तिमार्ग में अभयरूप मोक्षको जिस बुद्धिकरके जानताहै सो सात्त्विकी है॥ भउखलाअगनितपताउ। भाण्डाभाउअमिततित ढाल। घडीयैसबदसचीटकसाल। जिनकउ नदरकरमतिनकार। नानकनदरीनदरिनिहाल ३८॥ जो जन्ममरण जराव्याधि आदिकों का (भउ) भय है सो खला है जिनसे गहने बनानेवास्ते अग्नि तेजकरी जातीहै तिनको खला कहते हैं प्रकरण में जन्मादिकों का त्रासही खला है और अग्निका जो ताउ नाम तेजहोना है सो (तप) ततपदार्थ का और त्वंपदार्थ का आलोचनहै तात्पर्य यहहै शुद्धतत्त्वंपदार्थ जाने विना अखण्ड साक्षात्कार होता नहीं इसवास्ते पदार्थ शोधनही अग्निकी तेजी है और भाण्डानाम सुनारकी कुठियालीका है सो भाण्डानाम वर्तन प्रकरण में (भाउ) अवस्था त्रयका साक्षी चैतन्य है (तित) तिसमें (अमित) तत्पदलक्ष्य चैतन्यको (ढाल) वि-

चारसे देखकर डालदेना चाहिये फिर (सचीटकसाल) अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी शाला में (सबद) शब्दजन्य अखण्ड साक्षात्कार (घडीयै) उत्पन्न कराजाताहै परन्तु यह (कार) काररवाई तिनको प्राप्तहोती है जिनको (नदरकरम) ज्ञान के उत्पादक निष्काम कर्म्म भगवन्नामों के उच्चारणआदिक प्राप्त होते हैं पश्चात् श्रीगुरुजी कहते हैं (नदरी) ज्ञानी पुरुष (नदरि) ज्ञान से (निहाल) कर्त्तव्य शून्य जीवन्मुक्त होते हैं ॥ अब इस स्थान में श्रुति प्रमाण से त्वंपद लक्ष्यार्थ और तत्पदलक्ष्यार्थ के निरूपण पूर्वक शुद्ध चेतन का निरूपण करते हैं तथाहि ॥ **सर्वोपाधिविनिर्मुक्तसुवर्णघनवद्विज्ञानचिन्मात्रस्वभाव आत्मा यदावभासते तदा त्वं पदार्थःप्रत्यगात्मेत्युच्यते ॥ सर्वोपनिषत्सारोपनिषद्** ॥ अर्थ ॥ सर्व उपाधि रहित सुवर्ण घनवत् केवल विज्ञानरूप चिन्मात्र स्वभाव जब आत्मा प्रतीत होताहै तब शोधित त्वंपदार्थ प्रत्यगात्मा नामसे कहते हैं, जैसे सुवर्ण घनवस्त्वन्तर के मेलसे रहित होताहै तैसे उपाधि लेशवर्जित चिन्मात्र स्वरूप आत्मा त्वं पद का लक्ष्यार्थ है ॥ **सत्यंज्ञानमनन्त**

मानन्दं ब्रह्म सत्यमविनाशिनामदेशकालव स्तुनिमित्तेषु विनश्यत्सु यन्न विनश्यति तद विनाशिज्ञानामिति उत्पत्तिविनाशरहितं चैत न्यंज्ञानमित्यभिधीयते। अनन्तंनाममृदादिका रेषु मृदिव सुवर्णविकारेषु सुवर्णमिव तन्तुका र्येषु तन्तुरिव । अव्यक्तादिसृष्टिप्रपञ्चेषुपूर्वं व्यापकं चैतन्यमनन्तमित्युच्यते। आनन्दो नाम सुखचैतन्यस्वरूपोऽपरिमितानन्दसमु द्रः । अविशिष्टसुखस्वरूपश्च आनन्दइत्यु च्यते । एतद्वस्तुचतुष्टयंयस्यलक्षणंदेशका लनिमित्तेष्वव्यभिचारिसतत्पदार्थः परमा त्मापरंब्रह्मेत्युच्यते । त्वंपदार्थादौपाधिकात् तत्पदार्थादौपाधिकाद् विलक्षण आकाशव त सूक्ष्मः केवलःसत्तामात्रस्तत्पदार्थस्यात्मे त्युच्यते ॥ सर्वोपनिषत्सार ॥ अर्थ ॥ त्वं पदके ल- क्ष्यार्थ का निरूपणकरके अव तत्पद के लक्ष्यार्थका नि- रूपण करने वास्ते तत्पदार्थ के स्वरूप लक्षणका निरूपण करते हैं सत्य ज्ञान अनन्त आनन्द यह ब्रह्मके स्वरूप

लक्षणहै अविनाशीका नाम सत्यहै जो देश काल तथा वस्तु निमित्तोंके नाश होनेमें नहीं नाश होता सो अविनाशीरूप सत्यहै जो उत्पत्ति विनाशरहित चैतन्य है सो ज्ञाननाम से कहते हैं जो मृत्तिकाके विकारों में मृत्तिकावत् और सुवर्ण के विकारों में सुवर्णवत् तन्तु कार्यों में तन्तुवत् अव्यक्त आदिसृष्टि प्रपंचों में सर्वसे पूर्व वर्तमान व्यापक चैतन्यहै सो अनन्त है जो सुखरूप चैतन्य अपरिमित आनन्द समुद्र स्वरूप मनुष्यानन्द आदि कल्पना का अधिष्ठान होनेसे अविशिष्ट सुखरूपहै अर्थात् विषय विशिष्ट नहीं सो आनन्द कहा जाता है सत्य १ ज्ञान २ अनंत ३ आनन्द ४ यह चार वस्तु जिसके स्वरूप लक्षण हैं सो देशकाल निमित्तोंमें अव्यभिचारि शोधित तत्पदार्थ है तिसको परमात्मा परब्रह्म इन शब्दों से कहते हैं और जो औपाधिक त्वं पदार्थ से तथा औपाधिक तत्पदार्थ से विलक्षण आकाशवत् व्यापक सूक्ष्म केवल सत्तामात्र है सो तत्पदार्थका आत्मा अर्थात् शुद्धब्रह्म कहाजाताहै इस कोही अखण्ड चैतन्यरूपसे विद्वान् अनुभव करते हैं इसीके ज्ञानसे नदरी होकर नदर से कृतकृत्य होताहै ३८ सलोक॥ पवणगुरूपाणीपितामाताधरतिमहत। दिवसरातिदुइदाईदायाखेलैसगलजगत॥ चं

गियाईआबुरियाईआवाचैधरमहदूरि। कर मीआयोआपणीकेनेडैकेदूरि॥ जिनीनामधिआइआगएमसकतघालि। नानकतेमुखउजलेकेतीछुटीनाल १॥ अब गुरु अङ्गदजी महाराज श्रीगुरुनानक देवजी से ब्रह्मविद्या को श्रवणकर अत्यन्त प्रफुल्लितहुये गुरु महाराजजी की एक श्लोक से स्तुति करते हैं पवन तथा पानीके तुल्य श्रीगुरुजी हैं क्योंकि जैसे वायु जगत् की दुर्गन्धको निवृत्तकरके पवित्र करता है तैसे गुरु भी अपनी शरण प्राप्त शिष्यों के अज्ञानरूप मलको निवृत्तकरके शुद्ध ब्रह्मभावको प्राप्त करते हैं और जल जैसे जीवनको शीतलकरके तिनकी तृषाको दूरकरताहै तैसे गुरु भी अपने उपदेश से शिष्यों को शान्त करतेहुये तिनकी तृष्णाको निवृत्त करते हैं इसी प्रकार गुरु पितारूपहैं क्योंकि जैसे पिता पुत्रके शरीरको उत्पन्नकर तिसकी पालना करताहै तैसे गुरु भी अजर अमर ब्रह्मरूप शरीरको अपने उपदेश से सिद्धकर अज्ञान से परपार प्राप्त करतेहुये पालना करते हैं॥ इसीवास्ते प्रश्न उपनिषद में भारद्वाज आदिक षट् ऋषि पिप्पलाद गुरु को पिता नामसे कथन करतेहुये स्तुति करतेहैं तथाहि॥

ते तमर्चयन्तस्त्वंहि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसीति । नमः परमऋषिभ्यः ॥ अर्थः ॥ भारद्वाज आदिक शिष्य तिस पिप्पलाद गुरुको पुष्पाञ्जली नमस्कार से पूजन करते हुये कहते हैं आप हमारे पिताहैं क्योंकि जो आप हमारे अजर अमर ब्रह्मरूप शरीरको पैदाकर अविद्या से पार पर वस्तु को प्राप्त करते हैं इस से इस ज्ञानसम्प्रदायप्रवर्त्तक परमऋषियों के अर्थ नमस्कारहो ॥ और गुरु माता स्वरूपहैं क्योंकि जैसे माता पुत्रपर दयाकर हितका उपदेश करतीहै तैसे गुरु आप्तकामहुये भी शिष्योंपर दयालुतासे हितका उपदेश करते हैं इसीप्रकार गुरु धरतीवत् हैं क्योंकि जैसे पृथिवी सर्व प्रकारसे जीवनकी पुष्टि वास्ते अपने में दिव्य ओषधि समूहको धारण करती है इसी प्रकार गुरुभी सर्वके उद्धार वास्ते दिव्य वैराग्य आदि गुणोंको धारण करते हैं, और गुरु (महत) आकाश तुल्यहैं क्योंकि जैसे आकाश सर्व वस्तुओं में पूर्ण हुआभी सर्व के गुणों से लिपायमान नहीं तैसे गुरुभी सर्वजीवों में वर्त्तमान भी असंग रहते हैं और गुरु दिवसवत् है क्योंकि जैसे दिन अपनी समीपता से जीवोंकी निद्रा निवृत्तकरके इष्टकार्य में प्रवृत्त करताहै तैसे गुरुभी अपनी समीपता से जीवों

की आलस्यरूप निद्रा को निवृत्तकरके अपने इष्ट श्रवण मनन में प्रवृत्त करते हैं और (रातिदुइ) गुरु दोनों प्रकारकी रात्रि के तुल्यहैं क्योंकि जैसे शुक्ल रात्रि तापको शान्त करती है और कृष्ण रात्रि श्रमको निवृत्त करती है इसीप्रकार श्रीगुरु जीवोंकी तृष्णारूप तापको निवृत्त करके सकाम कर्म्म में प्रवृत्तिरूप श्रमको निवृत्त करते हैं और गुरु दाई और दाया के तुल्यहैं क्योंकि आसुरी सम्पत्तिरूप कंटकों से निरोधकरने से दाईरूप हैं और दैवी सम्पत्ति के गुणरूप बगीचेका सैर कराते हैं इसवास्ते दायारूप हैं। और सर्व जगत्के जीवों के उद्धार वास्ते (खेलै) लीला करते हुये। चंगापन तथा बुरेपन को कथन करते हैं अर्थात् गुण तथा दोषोंको विवेचन करते हैं (धरमहदूर) धर्म्मके सन्मुख करनेवास्ते क्योंकि गुण दोषके विवेचन करे विना जीवोंकी गुण के ग्रहणवास्ते और दोषों से निवृत्त होने वास्ते प्रवृत्ति नहीं होती इस वास्ते गुरु जीवोंको धर्म्म के (हदूर) सन्मुख करने के अर्थ गुण तथा दोषोंका विवेचन करतेहैं ऐसे गुरु अपने अपने कर्म्म अनुसार किनी उत्तम संस्कार युक्त पुरुषों को निकट हैं और किनी मलिन संस्कार युक्त पुरुषोंको दूरहैं इसवास्ते जिन उत्तम संस्कारयुक्त पुरुषों ने (नाम)

गुरु उपदिष्ट वाक्य से परमतत्त्व का ध्यान करा है वह पुरुष (मसकतघाल) प्रयत्नकरके (गए) परमधामको प्राप्त हुये हैं श्रीगुरुजी कहते हैं जो विवेक वैराग्य आदि गुण सम्पन्न हैं (ते) वह पुरुष (मुख) सर्वमें प्रधान हैं और अज्ञान को निवृत्त करके (उजले) निर्मल हुये हैं उनपुरुषों के (नाल) संग करके (केती) कितनीही प्रजा (छुटी) मुक्तहोगई और आगे होवेगी ॥ प्रथम गुरुजी के स्थान में जो जो वैठते थे सो सर्वही गुरुगोविन्द सिंहजीसे विना अपनी वाणी में नानक नामही रखते थे। नानक शब्दका अर्थ भूमिका ग्रन्थ में लिखा है तिसका अनुसन्धान सर्वत्र करलेना । इसवास्ते गुरु अङ्गदजी ने अपने श्लोक में परम मङ्गल पुरुषोत्तम का वाचक नानकही नाम लिखा है॥ ॐतत्सत् ॥ गङ्गातीरंसमाश्रित्य राजघाटाख्यसुस्थलम् ॥ अकारिसाधुसिंहेन गुरूणांतुष्टिसिद्धये १ वेदसारसमुद्धृत्यजपव्याख्यामनुत्तमाम् ॥ममश्रमंसुसफलं कुर्वन्तुसमबुद्धयः २ ॥ अर्थ॥ वेद के सार अर्थको (समुद्धृत्य) निकालकरके नहीं है दूसरा उत्तम व्याख्यान जिस से ऐसे सर्वोत्तम व्याख्यान को

मैंने साधुसिंह नामक साधु ने राजघाट शोभन स्थान गङ्गातीर का आश्रय करके गुरुमहाराज की तुष्टिकी सिद्धिवास्ते करा है॥

इति श्रीगुरुदित्तसिंहकृपाप्राप्तनिर्मलधर्मपण्डितसाधुसिंहविरचि तश्रुतिसंवलितजपव्याख्याने, उत्तरार्द्धं समाप्तम्।

संवत् १९५२ फाल्गुनकृष्ण॥

ग्रन्थगुरुनानकशाह नागरी में बिला
जिल्द क़ीमत ५) पुख़्ता
जिल्दबँधीहुई कपड़े विलायती
क़ीमत ५॥) पुख़्ता

काग़ज़ सफ़ेद गुन्दा जिसमें गुरुनानक की तसवीर भी है इस ग्रन्थ में दश महल्ले नीचे लिखेहुये हैं (१) गुरुनानककी बानी (२) श्रीगुरुअंगद जी (३) श्रीगुरुअमरदासजी (४) श्रीगुरुराम-दास (५) श्रीगुरुअर्जुनजी (६) श्रीगुरुहरगो-विन्दजी (७) श्रीगुरुहररायजी (८) श्रीगुरुकृ-ष्णजी (९) श्रीगुरुतेगबहादुर (१०) श्रीगुरुगो-विन्दसिंहजी इन सब महात्माओंकी बानी का यह ग्रन्थहै और भी कबीरदास, रैदास इत्यादि महात्मा-ओंकी इसमें बानी हैं इस ग्रन्थकी बड़ाई व बुज़ुर्गी मुल्क पंजाब में बवजह श्रेष्ठ होने बानी महात्माओं के बहुत गिनी जाती है अवश्य इस ग्रन्थ में वेदा-न्तकी बहुतसी अच्छी अच्छी बानी लिखी हैं जिस के पढ़ने से मनुष्य मार्ग परमेश्वर के पहचानका अच्छी तरहसे पहचान सक्ताहै ॥